In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1279

औषधि-विज्ञान ।

(Indian materia medica)

प्रकाशक—

चिकित्सक पं० विश्वेश्वरदयालुजी वैद्यराज

सम्पादक अनुभूत योगमाला

बरालोकपुर, इटावा

यू० पी० ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

All India Ayurvedic Congress,
"Dhanwantari Bhavan,"
... Panchkuian Road, New Delhi 110055

औषधि-विज्ञान।

(Indian materia medica)

प्रथम भाग

आयुर्वेद विद्यार्थियों के पठनपाठन के लिये,

लेखक—

पं० धर्मदत्त विद्यालंकार, सिद्धान्तालंकार

(गुरुकुल, आयुर्वेद भूषण मद्रास आयुर्वेदिक कालेज)

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन
श्री शंकर दाजी शास्त्री पदे स्मारक पुस्तकालय

प्रकाशक—

चिकित्सक पं० विश्वेश्वरदयालुजी वैद्यराज

सम्पादक 'अनुभूत योगमाला,

बरालोकपुर, इटावा

यू० पी०।

प्रथमवार ५००	संवत् १९९० वि० सन् १९३४ ई०	मूल्य २)

पं० विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज के प्रवन्ध से श्रीहरिहर प्रेस

बरालोकपुर इटावा में मुद्रित।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Vaidyaraj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No. L.x.3
Book No. 152N34
No......

000062

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भूमिका

अनेक उत्तमोत्तम निघन्टु ग्रन्थों के होते हुए भी उनके द्रव्योंके गुणों के अति संक्षिप्त प्रकारसे लिखे होने के कारण आयुर्वेद प्रारम्भ करने वाले विद्यार्थियों को उनके द्रव्य गुण विषय का उचित ज्ञान नहीं होता। इस लिए आयुर्वेद विद्यार्थियों के लिए एक ऐसी पुस्तक कि जिसमें प्रति दिन काम में आने वाली प्रसिद्ध २ औषधियों के गुणों का वर्णन हो—आवश्यकता चिरकाल से अनुभव हो रही है। सन् १६२८ में गुरुकुलीय आयुर्वेद महाविद्यालय की प्रथम कला को द्रव्य गुण विषय पर जो व्याख्यान मैंने दिए थे, अन्य विद्यार्थियों के लिए भी वे उपकारक होसकें, इस उद्देश्य से उन्हीं का संग्रह इस समय पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। इस प्रकार के प्रथम भाग में प्रसिद्ध २ वानस्पतिक औषधियों और दूसरे भाग में पार्थिवजान्तव आदि अन्य औषधियों का वर्णन किया गया है। इससे आयुर्वेद विद्यार्थियों का कुछ भी उपकार हुआ तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा।

१० दिसम्बर १६३४
गुरुकुलकांगड़ी

धर्मदत्त

चौखम्भा विश्वभारती
(चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी-२२१००१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण-दोष-विपाक तथा प्रभावकी व्याख्या

गुण—निर्गुण या निर्वीर्य औषधि शरीर में कुछ कार्य नहीं करती, इसी लिए औषधि शरीर में जो कार्य करती है, वही उसका गुण या वीर्य कहाता है। उदाहरणतः जो औषधि शरीर को उत्तेजित करती, अर्थात् आमाशय पक्वाशय स्थित अग्नि को उत्तेजित कर क्षुधा पिपासा बढ़ाती, त्वचा को उत्तेजित कर स्वेद लाती, धातुओं में होने वाली पाकात्मक प्रक्रियाओं को उत्तेजित कर शरीर की ऊष्मा को बढ़ाती तथा शरीर में दाह उत्पन्न करती, मस्तिष्क को उत्तेजित कर मनोविभ्रम तक कर देती है। वह "उष्ण गुण" या उष्णवीर्य कहाती हैं। इसके विपरीत जो शरीरकी उत्तेजनाको शान्त कर बढ़ी हुई पाचकाग्नि को घटाकर क्षुधा पिपासा को कम करतीं, धातुओं में बढ़ी हुई पचनात्मक प्रक्रियाओं से उत्पन्न दाह को शांत करतीं, उत्तेजित त्वचा को शान्त कर स्वेदको सुखातीं शरीर के उत्तेजित अवयवों में से बहते हुए श्लेष्मा रक्त आदि भिन्न २ प्रकार के स्रावों को रोकतीं, उत्तेजित मस्तिष्कको शांत कर मनोविभ्रम प्रलाप मूर्च्छा आदि लक्षणोंको हटातीं, तथा चित्त को प्रसन्न करती हैं, वह औषधियां "शीतगुण" या शीतवीर्य कहाती हैं।

जो औषधियां शरीर के अवयवों में स्निग्धता उत्पन्न करतीं, पोषकरस को बढ़ातीं, अंगों को बलवान करतीं, त्वचा को मृदु करतीं, शरीर के वर्ण को बढ़ातीं हैं वह "स्निग्धगुण" कहाती हैं। परन्तु जो शरीर के पोषक रसको सुखाकर शरीरमें बहने वाले द्रवों को न्यून कर धातुओं तथा त्वचा पर शुष्कता या रूखापन उत्पन्न करती हैं, वह रूक्ष 'गुण' कहाती हैं।

जो औषधियां शरीर के पोषक रसको बढ़ा शरीर की रचनात्मक प्रक्रियाओं को अधिक कर शरीर की वृद्धि बृंहण और तर्पण करतीं और इस प्रकार शरीर में गुरुता उत्पन्न करती हैं वह "गुरुगुण" कहाती हैं। इसके विपरीत जो शरीरकी अनुचित वृद्धिको घटातीं और बढ़े हुए पोषक रस से उत्पन्न मलों का लेखन करतीं शोथ व्रण आदि से बहते हुए मलों को सुखा उनको रोपण करतीं और शरीर को निरालस्य और क्रियाशील बनाती हैं, वह "लघु" गुण कहाती हैं।

जो औषधियां पोषकरसको बढ़ा बल गौरव और जीवन शक्ति को बढ़ातीं, विशेषतः शरीर के अवयवों, अस्थियों और सन्धियोंमें परस्पर जुड़नेके भावको उत्पन्न करती हैं, वह 'पिच्छिल' गुण वाली कहाती हैं। इसके विपरीत जो अवयवोंकी पिच्छिलता को हटा उनमें पृथक्ता या शोषण उत्पन्न करें, शरीर के क्लेद को सुखा व्रणों के स्रावों को सुखा उनका रोपण करें वह विशद गुण वाली कहाती हैं।

जो औषधियां शरीर की पाकात्मक प्रक्रियाओं को तीव्र करें दाह उत्पन्न करें शरीर के स्रावों को उत्तेजित करें वह "तीक्ष्णगुण" वाली कहाती हैं। जो पाकात्मक क्रियाओं को मन्द करे वह "मंद" गुण या "मृदु" गुण वाली कहाती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जो औषधियाँ शरीर को निर्बल करें सर्वांग या किसी अंग में चलना उत्पन्न करदें वह "चल गुण" तथा इसके विपरीत जो शरीर को बलवान् कर उसको वाह्य आघात और उद्वेगों के सहन करने की शक्ति को बढ़ा कर स्थिरता उत्पन्न करें वह "स्थिर गुण" वाली कहाती हैं।

जो औषधियां अवयवों और भिन्न २ श्रोतसों में क्लेद सान्द्रता तथा द्रवता उत्पन्न करे वह "द्रव गुण" और जो द्रवता को सुखाये वह "स्थूल गुण" वाली कहाती हैं।

जो अवयवों में खटना उत्पन्न करें, वह खट गुण और जो श्लक्ष्णता उत्पन्न करें, वह श्लक्ष्णगुण वाली कहाती हैं। इसी प्रकार जो मलोका सारकहो वह षटगुण जो बन्धकहो वह बन्धगुण इत्यादि भिन्न २ कार्यों के अनुसार औषधियों में भिन्न २ गुण पाये जाते हैं।

दोषः—

वात—वात, पित्त, कफ को शरीर के धारक होने के कारण धातु और रक्त मांस आदि को दूषितकर रोग जनक होनेके कारण दोष कहते हैं। शरीरकी वात नाड़ियों द्वारा सारे अवयवों में व्याप्त हुई शरीरकी मूलभूत जीवनी शक्तिको वात कहते हैं। तारों में बहने वाली विद्युत का जिस प्रकार गति द्वारा अनुमान किया जाता है, उसी तरह शरीर के अवयवों में होने वाली गति से ही इस "वात" का अनुमान किया जाता है।

"वा गतौ" धातु से इस शब्दकी उत्पत्ति हुई है और चिरकाल से व्यावहारिक भाषा में इसी को "वाइटल फोर्स" या "वाइटेलिटी" नाम से पुकारते आते हैं। विद्युत् के समान ही यह भी एक भौतिक तत्त्व है। आकाश और वायु इन दो प्रकृति तत्त्वों से इसकी उत्पत्ति वर्णन की जाती है। "रूत्वबहुलमाकाशम्" "रजोबहुलो वायुः"। इन सुश्रुत के वाक्यों के अनुसार इसमें रजोगुण की प्रधानता मानी जाती। और इसीलिये यह शरीरकी गति आदि रजोगुणी भावों का कारण होता है। वात की यह शक्ति शरीर की भिन्न २ इन्द्रियों और अंगों में भिन्न २ रूपों में प्रकट होती है।

जब शरीर की यह मौलिक शक्ति निर्बल हो जाता है, तो शरीर में शारीरिक और मानसिक नाना प्रकार की निर्बलता के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। वायु की निर्बलता को वात प्रकोप तथा इन लक्षणोंको वात प्रकोप के लक्षण कहते हैं। निर्बलता के कारण शरीर में लघुता-रूक्षता-खरता-चलता सूक्ष्मता और विशदता आदि जिन गुणोंका वर्णन ऊपर किया गया है, उत्पन्न हो जाते हैं। शारीरिक निर्बलता में शरीर की ऊष्मा भी घट जाती है। जिससे एकांग या सर्वांग में उपर्युक्त इन गुणों के साथ शैत्य का गुण भी उत्पन्न हो जाता है। इन लक्षणोंको देखकर वातप्रकोपका अनुमान किया जाता है। और इन गुणों को बढ़ाने वाले द्रव्य या उपाय वात प्रकोपक कहाते हैं। वात प्रकोप के कारण ही रोगी का मुख या त्वचा देखने में रूक्ष खुरदरी किञ्चित कालिमा युक्त वर्ण हीन होजाती है। उसके बाल गिरने लगते, नखभंगुर खुरदरे हो जाते, शरीर के अंगों और आशयों में स्फुरण-कम्पन-चलन आक्षेप-उद्वर्त-आवर्त उद्वेष्टन-संकोचन-स्तम्भ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

खञ्जता, कुब्जता आदि होने लगते था स्फुटन तोद-भेद आदि नाना प्रकार के शूल होने लगते या किसी एक अंग या आधे शरीर में आघात हो जाता है। अथवा कोई अंग निर्बल होजाता, उदाहरणतः पाचकाग्नि मंद हो जाती, हृदय निर्बल हो जाता, वाक्शक्ति-श्रवणशक्ति दृष्टिशक्ति-घ्राणशक्ति-और पुंस्त्वशक्ति मंद हो जाती है आमाशय, गर्भाशय, गुदा आदि आशय निर्वल और शिथिल हो जाते हैं। शरीर को रोगों से बचाने वाली शरीर की स्वाभाविक क्षमा शक्ति या सहन शक्ति घट जाती है। मस्तिष्क में रूक्षता लघुता आदि गुणों के उत्पन्न हो जाने से स्वभाव में भीरुता और दीनता आजाती है। चित्त उदासीन खिन्न विषण्ण सा रहता, चित्त वृत्ति अधीर और अस्थिर होजाती है। ऐसे निर्बल मन वाले व्यक्ति को काम, क्रोध, भय, मोह, आदि के मानसिक आवेश सहज में ही उत्पन्न होने लगते हैं।

वात प्रकोप के लक्षण रूप शरीर की लघुता को शान्त करने के लिए गुरुगुण द्रव्य, शैत्य के लिए उष्णगुण, बलता के लिए स्थिर गुण, रूक्षता के लिए स्निग्ध, गुण, द्रव्य विशदता के लिए पिच्छिल गुण, खरता के लिए श्लक्ष्ण गुण द्रव्य लेने चाहिए। इन गुणों वाले द्रव्योंके देनेसे शरीर दृढ़ बलवान् स्थिर रोगक्षम होता है और उसका प्रकुपित हुआ वात शांत होता है। इन गुणों वाले द्रव्य अधिकतया पृथ्वी और अप्तत्व के संयोग से बने होते, और स्वाद में विशेषतः मधुर रस और कुछ २ अम्ल लवण रस के होते हैं। इसी लिए रस के ज्ञान से भी स्वल्पांशतक द्रव्य के गुण का अनुमान किया जा सकता है। इन गुणों को बढ़ाने वाले सब अन्य उपाय भी वात प्रकोप शामक होते हैं।

पित्त—शरीर के अवयवोंमें होने वाली पाकात्मक या पचनात्मक प्रक्रिया के प्रवर्तक तत्व को 'पित्त' कहा है। यह शरीर के स्वाभाविक ताप का कारण है। इस लिए "तप संतापे" धातु से इस शब्द की उत्पत्ति हुई। इसे विशेषतया प्रकृति के अग्नितत्व से उत्पन्न हुआ है। इसी लिए उष्ण तीक्ष्ण गुण कहा जाता है। यह आमाशय पक्वाशय में होने वाली अन्न पाचक प्रक्रिया तथा रक्त मांस आदि धातुओं के सूक्ष्म २ अवयवों में होने वाली "धातुपाक" प्रक्रिया का मूल हेतु है। इस लिए इसे धात्वग्नि और अन्तरग्नि आदि नाम दिए गए हैं। "सत्व रजो बहुलो अग्निः", इस सुश्रुत के वाक्य के अनुसार इस अग्नेय पित्त तत्व में सत्वगुण के लक्षण विशेष पाए जाते हैं। सत्व गुण प्रकाशात्मक होता है। इस लिए शरीर के प्रकाशात्मक भाव अर्थात् शरीर पर पाई जाने वाली स्वाभाविक प्रभा, कान्ति आंखों में पाए जाने वाली ज्योति, दृष्टि, शक्ति तथा मस्तिष्क के प्रकाशात्मक भाव अर्थात् मेधा निर्मल बुद्धि, चित्त में रहने वाली प्रसन्नता, पाप और अन्याय को न सहन करने वाली असहन शक्ति, तथा स्वभाव में पाई जाने वाली तीक्ष्णता कभी भी भय से पीछे न हटने वाली शूरता और बहादुरी इस पित्त के कारण ही होती हैं।

पाक प्रक्रिया के संचालक इस पित्त, के वि-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कृत होने पर शरीरकी उष्णता बढ़ जाती, दाह और ज्वर होजाते हैं। स्वेद अधिक आता है। शरीर के किसी प्रदेश में रक्त अधिक मात्रा में संचित होजाता है। जिससे वहां लालिमा और दाह से युक्त शोथ होजाता है। फिर उस शोथ में पाक दुर्गन्धित स्राव शोथ और अंगदरण तक भी होजाता है। इसी प्रकार से कर्ण, नेत्र, नासा, ओष्ठ, मुख, दन्तमांस, तालु, जिह्वा,और कंठ आदि में शोथ और पाक हो जाते हैं। आमाशय में ऐसी शोथ होजाय तो अम्लपित्त, आंतों में शोथ हो जाय तो अतिसार, आन्त्र-पुच्छ में शोथ होजाय तो पित्तगुल्म आदि रोग हो जाते हैं। मस्तिष्क में अति रक्त के संचित हो जाने से शिरोभ्रम-प्रलाप-मूर्च्छाके लक्षण हो जाते हैं। रक्त में पचनात्मक प्रक्रिया तीव्रता से हो और रक्त अधिक टूटने या नष्ट होने लगे तो शरीर पांडु वर्ण [कामल] हो जाता है। रक्तके जमने या छिछड़ा बनने की शक्ति क्षीण होजाती है, जिससे शरीर के किसी मार्ग से रक्त पित्त या रक्तस्राव होजाता है। रक्त के टूटने से रक्त मल में से उत्पन्न होने वाला मलभूत पित्त अधिक मात्रा में उत्पन्न होने लगता है। जिससे इस मल मूत्र पित्त के रक्तमें फैल जाने से नानाप्रकार के विकार होने लगते हैं। और इसी कारण मुख का स्वाद भी कड़ुवा सा रहता है।

इस लिए उष्णता, तीक्ष्णता, विस्रगंधता किंचित्स्निग्धतायुक्त द्रवता, पांडुता, मुख में कटु-रसता ये सभी पित्त प्रकोप के सूचक लक्षण हैं। पित्त प्रकोप को शान्त करने के लिए इन गुणों के विपरीत शीत गुण, मृदुगुण तथा पिच्छिल गुण द्रवों का प्रयोग करना चाहिए। पृथ्वी, अप, वायु और आकाश इन चार भौतिकतत्वों से उत्पन्न द्रवों का प्रयोग लाभदायक कहा जाता है। मधुर रस द्रव्य प्रायः पृथ्वी अप तत्वों से उत्पन्न होते और शीत गुण होते हैं, कषायरस पृथ्वी वायु तत्वोंमें उत्पन्न होते हैं और रूक्ष शीत गुण होते हैं तथा तिक्तरस द्रव्यवायु आकाशतत्वोंसे उत्पन्न होते और वेभी रूक्ष शीत गुण होते हैं। इसलिए प्रायः इन तीन रसों वाले द्रव्य पित्त प्रकोप शामक होते हैं। शरीर में सञ्चित हुए मलरूप पित्तको बाहर निकालनेके लिए स्रंसक और रेचक द्रव्य दिए जाते हैं।

श्लेष्मा—शरीर के रचनात्मक कार्यों के प्रवर्तक तत्व को श्लेष्मा कहते हैं। यह अवयवों को जोड़जोड़कर शरीरको बढ़ाता है। इसलिए "श्लिष आलिंगने" इस धातु से इस शब्द की उत्पत्ति हुई है। इसे विशेषतः पृथ्वी और अप् इन दो तत्वों से उत्पन्न हुआ माना जाता है। श्लेष्मा के कारण ही पृथ्वी तत्व के गुरु, स्थिर, स्थूल, सान्द्र, मृदु आदि गुण तथा अप् तत्व के द्रव, स्निग्ध, शीत, मृदु, पिच्छिल बन्ध अर्थात् अवयवों का परस्पर जोड़ने के गुण शरीर में उत्पन्न होते हैं। "सत्वतमोबहुलाआपः" "तमोबहुलापृथ्वी" इन शास्त्र वाक्यों के अनुसार प्रकृति का तमोगुण अर्थात् जगत् में पाए जाने वाला स्थिरता का गुण श्लेष्मा में विशेष पाया जाता है। इसलिए श्लेष्मा ही शरीर की स्थिरता-उपचय वृद्धि, गुरुता-स्निग्धता-शैत्य-मृदुता आदिका कारण है। इसी के कारण हैं। इसी के कारण उत्साह

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

धैर्य-सन्तोष आदि मानसिक दृढ़ता के लक्षण उत्पन्न होते हैं। और बुद्धि की अभिवृद्धि होती है। यही बाहर के आक्रमण करके उत्पन्न होने वाले रोगोंसे शरीर की रक्षा करता है। शरीर रोगक्षय शक्ति का उत्पादक होने के कारण इसे या इसके किसी भेद रूप तत्व विशेष को 'ओज" कहते हैं।

श्लेष्मा के विकृत होने पर शरीर के रचनात्मक कार्य विकृत होजाते हैं किसी अवयव या अंग में गुरुता और अतिवृद्धि आदिके लक्षण हो जाते हैं, परन्तु प्रायः कर श्लेष्मा के विकृत होने पर शरीर के अवयवों का पोषक रस मलरूप में शरीरके किसी द्वार से निकलने लगता है। नासिका, नेत्र, कर्णमुख, आमाशय पक्वाशय, मूत्रमार्ग, श्वासमार्ग, त्वचा आदि किसी द्वार से शरीर का पोषकरस मलरूप में निकलता हुआ नानाप्रकार के श्लेष्म रोगों को उत्पन्न करता है। सर्वाङ्गमें मलरूप श्लेष्मा बढ़ जाय तो सर्वाङ्ग गौरव-अंगस्तब्धता-आलस्य-क्षुधानाश-तृषानाश-तन्द्रा मुखमाधुर्य-शैत्य आदि लक्षण उत्पन्न होजाते तथा भिन्नभिन्नशरीर छिद्रों त्वचाओं और झिल्लियों आदिसे निकलनेवाले द्रव्य में श्वेतिमा-स्निग्धता-क्लेद,उपलेप, पिच्छिलता श्लक्ष्णता तथा पित्तकी तीक्ष्णता के स्थान पर मृदुता और दाह के स्थानपर शैत्य होता है।

शरीरकी श्लेष्म प्रकोप जन्य गुरुताको हटाने के लिए लघुगुण और स्निग्धता, पिच्छिलताको हटाने के लिए रूक्षविशद गुणद्रव्य दिएजाते हैं। शरीरकी मन्दता,मृदुता, शैत्य आदिको हटानेके लिए शरीरोत्तेजक अग्निदीपक उष्णऔर तीक्ष्ण गुण द्रव्य दिए जाते हैं। जिन विधियोंसे शरीर में लघुता रूक्षता, विशदता, उष्णता आदि गुण उत्पन्न हों वे सभी श्लेष्म प्रकोपहर कहाती हैं। इन गुणोंवाले द्रव्यप्रायः आकाशवायु और अग्नितत्वों के बाहुल्यसे उत्पन्न हुए होतेहैं और स्वादमें कटु तिक्त कषायरस होते हैं। इसलिए इन तीनों रसोंवाले द्रव्य प्रायः कफ प्रकोप हर हुआ करते हैं।

विपाक—जठराग्नि द्वारा परिपाक हो जाने पर द्रव्य का जो परिणामी रस उत्पन्न होता है, वह उसका "विपाकी रस" कहाता है। सुश्रुत ने कहा है कि पार्थिव और आप्य द्रव्यों का विपाकीरस मधुर,और तैजस वायव्य नाभ से द्रव्योंका विपाकीरस कटु होताहै। अर्थात् मधुर अम्ल लवण रस द्रव्यों का विपाकी रस मधुर और और तिक्तकटु कषाय रस द्रव्यों का विपाकीरस कटु होता है। चरक ने कहा हैकि मधुर और लवण रस द्रव्यों का विपाक मधुर, अम्लरस द्रव्योंका अम्ल,और कटुतिक्त कषाय रस द्रव्योंका कटुहोता है। प्रायः मधुरपाक द्रव्य, गुरुगुण, कफ प्रकोपक, अम्लपाक पित्त प्रकोपक, और कटु पाक द्रव्य वात प्रकोपक होते हैं।

प्रभाव—औषधियों का शरीर के भिन्न भिन्न अंगों पर जो विशेष असर होता है, वह उनका प्रभाव कहलाता है। द्रव्यों के गुण तो सर्वाङ्ग में न्यूनाधिक प्रकट होते हैं, परन्तु उनके प्रभाव विशेष अंगों में ही दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरणतः हरीतकी शरीर में रूक्ष गुण उत्पन्न करती परन्तु आंतों पर उसका रेचक प्रभाव होता है। इसी प्रकार कुटज का आंतों पर प्रवाहिका हर, तुवरक का कुष्ठहर, गुडूची का

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विषम ज्वरहर तथा अन्यान्य औषधियों के अपने २ विशेष प्रभाव होते हैं। इन प्रभावों के उत्पादक औषधियों में कुछ विशेष तत्व होते हैं। जो रसायनिक विधियों से प्रथक् भी किए जा सकते हैं। औषधियों के विशेष प्रभाव के कारण भून ये औषधि तत्व मुख्यतया निम्न लिखित हैं।

औषधियों के क्षारीयतत्व (Olkalaids) अनेक औषधियों में उनका एक विशेष श्वेत सा तत्व होता है, जो पानी में घुल कर क्षार के सदृश लाल लिटमसपत्र को उसमें भिगोने से नीला कर देता है। उसे उस औषधि का क्षारीय तत्व कहते हैं। इस तत्व को लवणाम्ल आदि अम्लों से मिलाया जाय तो एक प्रकार का लवण सदृश योग बन जाता है जो जल में अति शीघ्रता से घुल जाता है। ये औषधियों के पञ्चाङ्ग में होते हैं परन्तु उनके बीजों में अधिक होते हैं। ये स्वाद में प्रायः कड़वे होते हैं। वनस्पति के क्षारीयतत्व को पृथक् करने के लिए उनके पत्र या बीज को ऐसी मद्यसार जिसमें तार्तरिकाम्ल या टाटरी मिलाई हो,४-५ दिन डाल बन्दकर रक्खें। उस औषधि का क्षारीयतत्व उस तार्तरिकाम्ल या तिन्तड़ीकाम्ल से मिल तार्तरित (टार्टरेट) बन जाता है। और मद्यसारमें घुला रहता है, मद्यसार को छानकर पृथक् करलें तो उसके साथ ही छन जाता है। इसे तिर्यक् पातनयंत्र में डालकर अग्नि दें तो मद्यसार उड़ जाती है। और तिर्यक् पातनयन्त्र में एक रसक्रिया सी रह जाती है। इसे फिर जल में घोल दें तो क्षारीयतत्व का तार्तरित जलमें घुल जाता है। और अन्य द्रव्य जलके नीचे बैठ जाते हैं। ऊपर से नितरे हुए जल को ले उसमें सर्जक्षार डाल दें तो सोडियम तार्तरित बनकर जलमें घुला रहता है। और औषधिका क्षारीय तत्व पृथक् होकर नीचे बैठ जाता है। क्योंकि प्रायः क्षारीयतत्व जल में अघुलनशील होते हैं। यदि यह ईथर-मद्यसार-क्लोरोफार्म आदि किसी द्रव में घुल जाता हो तो फिर इसे उसमें घोल कर हल्की अग्नि पर द्रव को गाढ़ा कर एकान्त में रख दें तो क्षारीयतत्व के स्फटिक से बनकर नीचे बैठ जाते हैं। यदि द्रव में कोई मैलापन सा हो तो उस द्रवको पहिले अस्थियों के कोयलों में से गुजार कर स्वच्छ कर लिया जाता है। कुटज आदि औषधियों के प्रभाव का कारण उनका क्षारीय तत्व ही होता है।

ग्लूकोसाइड—कई औषधियों में एक विशेष प्रकार का तत्वहोता है, जिसे उस औषधि का ग्लूकोसाइड कहते हैं। इस तत्व को हलके अम्ल या क्षार से मिलाकर गरम करें तो यह ग्लूकोज (अंगूरी खांड़) तथा एक गोंद सदृश पदार्थ या वानस्पतिक अम्ल के रूप में फटजाता है, इसी लिए इसे ग्लूकोसाइड कहते हैं। औषधियों के ग्लूकोसाइड जल में विलेय होते हैं। इन्द्रायन का ग्लूकोसाइड विरेचन का कारण होता है। स्वर्णपत्री के विरेचन का कारण भी उसका विशेष ग्लूकोसाइड होता है। तृवृत, मधुयष्टी आदि में भी ग्लूकोसाइड होता है।

तैल—अनेक औषधियों में प्रभाव के कारण उसमें विद्यमान तैल होते हैं, जो स्थिर और अस्थिर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दो प्रकार के होते हैं। स्थिर तैल वनस्पतियों के बीजोंसे उनके छिलके हटा गरम कर पानी या मशीन में पीसकर निकाले जाते हैं। बाकुची, दन्तीबीज, राजिका आदि के तैल ही प्रभाव जनक होते हैं। सौंफ, सोया, इलायची, लवंग आदि सुगंधित द्रव्योंमें अस्थिर या उड़नशील तैल होते हैं, जो इनके प्रभाव के कारण होते हैं। ये जल में नहीं घुलते केवल उसे अपनी गंध दे देते हैं। मद्यसार-तैल-घृत-वसा वैसलीन आदि में घुल जाते हैं। इन औषधियोंका अर्क निकाला जाय तो वह अर्क दुधियाला सा होता है। और थोड़ी देर पड़े रहने के पीछे अर्क के ऊपर उस औषधिका सुगन्धित तैल इकट्ठा होजाता है। इन औषधियों के सुगन्धित तैलों को पृथक् करने के लिए "सौक्स लेट" यन्त्र (Soxhlet) विशेषतः प्रयुक्त होता है। इस यंत्र के निचले भाग में ईथर-मद्यसार आदि कोई द्रव डाला जाता है, नीचे हल्की अग्नि देने से यह द्रव गरम होकर ऊपर उड़ता है। और यन्त्र के ऊपर के भाग में पड़े जल से ठंडा होकर बीच के पात्र में जिसमें सुगन्धित औषधि पड़ी होती है, गिरती है, उसमें से तैल का बहुत सा अंश लेकर फिर यह द्रव यंत्र के निचले भाग में आजाता है। गरमी से फिर यह उड़कर पूर्वोक्त क्रम से औषधि युक्त पात्र में पहुँच तैल लेकर निचले भाग में वापिस आ जाता है। फिर इस द्रव में से ऊर्ध्वपातन द्वारा तैल को पृथक् कर लिया जाता है। चम्पा, चमेली आदि के सुकुमार तैल अग्नि सहन नहीं कर सकते इसलिए ऐसे फूलोंको गरम पैराफीनथा वेसलीन-वसा आदि में से किसी में रक्खे जाते हैं, जब ये उन फूलों का इत्र चूस लेते हैं तो दूसरे फूल डाल दिए जाते हैं, इस प्रकार जब इन स्निग्ध द्रव्यों में बहुत से इत्र की मात्रा आजाती है, तो इसमें मद्यसार डाल देने से वह इत्र मद्यसारमें घुल जाता है। और फिर उसमें से इसे पृथक् करना सुगम होजाता है।

अम्ल—कई औषधियों के प्रभाव का कारण उनका अम्ल होता है। खदिर, बबूल आदि में टैनिकाम्ल, लोबान में लोबानाम्ल, गंधपूर में गंधपूराम्ल, (Salicylic acid) निम्बू में सिट्रिकाम्ल, इमली, द्राक्षा आदि में तिन्तडीकाम्ल या टार्टरी के अंश होते हैं।

अन्यतत्व—अनेक औषधियों में विशेष क्रियाशील तत्व (Octive PrinciPles) होते हैं जो प्रायः तिक्त रस होते हैं। कुमारीमें अलोइन कृमिघ्नी (सेन्टोनिन वृक्ष) में सेन्टोनिन इत्यादि क्रियाशील तत्व होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अक्षरानुसार औषधियों की सूची

अ

नाम	पृष्ठ संख्या
अग्निमन्थ	८५
अजमोदा	२७
अतिविषा	६६
अपामार्ग	१२७
अर्क	१०३
अर्जुन	१३२
अशोक	५६
अश्वगन्धा	६५
अहिफेन	१०७
आ	
आमलकी	४२
आरग्वध	४५
इ	
इन्द्रवारुणी	४८
उ	
उत्पल	७१
उशीर	७३
ए	
एरण्ड	४६
एला	३५
क	
कुटकी	६५
कट्फल	१०२
कण्टकारी	८६

नाम	पृष्ठ संख्या
कम्पिल्ल	५३
करवीर	१४६
करञ्ज	१३८
कर्कटशृंगी	१०२
कर्पूर	३७
कारस्कर	१०५
किराततिक्ता	६८
कुटज	६५
कुमारी	४८
कुंकुम या केशर	३६
कुष्ठ	१००
कोकिलाक्ष	६६
कोका तथा कोकेन	११८
कृमिघ्नी तथा सेन्टोनिन	५१
कंकोल	१२७
कौंच	६२
क्लोरोफार्म	१२३
ख	
खदिर	५८
ग	
गाम्भारी	८५
गुग्गुलु	८०
गुडूची	१२५
गोक्षुर	८७
गंधपूर तथा सेलिसिलिकाम्ल	६६

च

नाम	पृष्ठ संख्या
चक्रमर्द	१२४
चन्दन	७३
चाय	१३०
चित्रक	२६
चोपचीनी	१३६
ज	
जटामांसी	६७
जम्बू	६३
जातिफल	३२
जीरक	२८
ज्योतिष्मती	१३५
ड	
डिजिटेलिस	१३०
त	
तगर	६७
तिक्ता या जैन्शन	७६
तुवरक या चालमोगरा	१५१
त्रिफला	४४
त्रिवृत्त	४६
द	
दन्ती	५०
दशमूल	८८
दाड़िम	६१
दारुहरिद्रा	१४४

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम	पृष्ठ संख्या
दूर्वा	७९
देवदारु	८१
द्राक्षा	८३
ध	
धत्तूर	११५
धातकी	५५
धान्यक	७१
न	
नागकेशर	७६
निम्ब	७७
निर्गुण्डी	१५८
प	
पटोल	७६
पत्र	३६
पर्पट	७७
पलाश	५२
पाटला	८६
पिप्पली	२४
पीतमूली	४७
पुदीना	३९
पुनर्नवा	१२८
पुष्करमूल	१००
पूर्गा	६३
पृश्नपर्णी	८६
ब	
बज़ा	६२
बलाडोना	११५
बब्बूल	६०
बिल्व	८४
बोल या बीजाबोल	६१
ब्राह्मी	१३५
भ	
भल्लातक	८६
म	
मदनफल	५४
मद्य	१२१
मञ्जिष्ठा	१५०
मधुरिका	२७
मधुयष्ठी	६७
मरिच	२५
महातिक्ता या कालमेघ	७०
मायाफल या माजूफल	६४
मुसली	६६
मुस्ता	७०
र	
रसाञ्जन	१४४
राजिका	५४
राल	१४६
ल	
लवंग	३३
लशुन	६१
लाक्षा	५२
लोध्र	५६
लोबान	९८
व	
वचा	३१
वत्सनाभ	१३२
वाकुची	१४१
वासा	७४
विडंग	५१
विजया	११३
विभीतकी	४४
वृहती	८६
श	
शठी	१००
शतपुष्पा	२७
शतावरी	६४
शाल	१४५
शालिपर्णी	८६
शाल्मली	५६
शुंठी	२३
शंखपुष्पी	१३७
श्योनाक	८५
स	
सप्तपर्ण	१४७
सारिवा	१४६
सिन्कोना	१२५
सूरण	४०
स्नुही	१०३
स्वर्णक्षीरी	११६
स्वर्णपत्री	४७
ह	
हपुषा	३१
हरिद्रा	१४२
हिंगु	२६
ह्रीवेर	७२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रोगानुसार योग-सूची

नाम	पृष्ठ संख्या
अजीर्ण—	
त्रिकटु	२३
पञ्चकोल	२३
पञ्चसम	२३
गुड पिप्पली	२४
जीरकादि चूर्ण	३२
त्रिजातक	३३
लवंग चतुः सम	३३
त्वगादि चूर्ण	३४
संजीवनी	८६
लशुनाष्टक चूर्ण	६०
लशुनपिण्ड	६१
शट्यादि चूर्ण	१००
अग्निमुख चूर्ण	१०१
वज्रक्षार	१०३
आनन्द भैरव	१३३
अतिसार—	
जातिफलादिवटी	३२
हिंग्वाष्टक चूर्ण	३०
लवंग चतुः सम	३३
त्वगादिचूर्ण	३४
कर्पूर रस	३८
धातक्यादि चूर्ण	५५
पुष्यानुग चूर्ण	५६
बीजकादि चूर्ण	५७
खदिरादि चूर्ण	५६
बबूलारिष्ट	६०
कुटजारिष्ट	६६
मुस्तकादि क्वाथ	७०
चन्दनादि चूर्ण	७३
गंगाधर चूर्ण	८४
बालशृंग्यादि चूर्ण	१०२
कट्फलादि कषाय	१०२
अहिफेनाद्यासव	१०८
अहिफेनकर्पूरादि वटी	१०८
स्वल्पग्रहणी कपाट	१०८
अग्निकुमार	१०८
अकरकरभादिवटी	१०८
जातिफलादि चूर्ण	११३
मृत्युञ्जय	१३३
आनन्द भैरव	१३३
रसाञ्जनादि चूर्ण	१४५
अपस्मार—	
हिंग्वादिघृत	३०
वचादि चूर्ण	३१
कुमार्यासव	४६
लशुनपिण्ड	६१
अश्वगंधारिष्ट	६५
पुष्करमूलारिष्ट	१०१
ब्राह्मीघृत	१३६
सारस्वतघृत	१३६
सारस्वत चूर्ण	१३६
सारस्वतारिष्ट	१३६
ब्राह्मीपानक	१३६
शंखपुष्पादि चूर्ण	१३७
अम्लपित्त—	
पिप्पलीखंड	२४
लवंगादि मोदक	३३
त्वगादि चूर्ण	३४
हरीत की खंड	४१
आमल की खंड	४३
त्रिफलादि क्वाथ	४४
अविपत्तिकर चूर्ण	४६
भूनिम्बादि कषाय	६६
लघुसुदर्शन चूर्ण	६६
पञ्चतिक्तापानक	६६
पटोलादि क्वाथ	७६
निम्बादि चूर्ण	७८
द्राक्षादि क्वाथ	८३
कंसहरीतकी	८८
शतावरीघृत	६४
शतावर्यादि कषाय	६४
अर्शस्—	
पञ्चसम	२३
पिप्पल्याद्यासव	२४
चित्रकहरीतकी अवलेह	२६
सूरणवटी	४०
हरीतकीखंड	४१
बड़वानलचूर्ण	४
अभयारिष्ट	४
त्रिफलारिष्ट	४
कुमार्यासव	४

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम	पृष्ठ संख्या
अविपत्तिकर चूर्ण	४६
दन्त्यारिष्ट	५०
कुटजाष्टक	६५
कुटजारिष्ट	६६
उशीरासव	७२
चन्दनादि चूर्ण	७३
योगराज गुग्गुल	८०
द्राक्षारिष्ट	८३
भल्लातकादि मोदक	८६
वचेतैल	१०४
कासीसादि तैल	१०४
अहिफेन गुदवर्ति	१०६
आनन्द मोदक	११३
अमृता गुग्गुल	१२४
पुनर्नवारिष्ट	१२६
रसाञ्जनादि चूर्ण	१४५

आमवात—

नाम	पृष्ठ संख्या
पञ्चसम	२३
रास्नादि कषाय	२३
अजमोदादि चूर्ण	२३
सैंधवादि तैल	२३
चतुर्बीज चूर्ण	२६
बड़वानल चूर्ण	४१
योगराज गुग्गुल	८०
अमृता गुग्गुल	८०
रास्नादि गुग्गुल	८०
सिंहनाद गुग्गुल	८१
देवदार्वारिष्ट	८२
कंसहरीतकी	८८
दशमूल कषाय	८८
भल्लातकादि मोदक	८६
भल्लातकादिवटी	८६
सर्वांग सुन्दरी	९०
लशुनपिंड	९१
अश्वगधादि वटी	९५
शुंठ्यादि क्वाथ	१००
वातगजांकुश	१०४
अग्नितुण्डी	१०६
शुंठीगुडूच्यादि कषाय	१२४
अमृतादि गुग्गुल	१२५
पुनर्नवादिघृत	१२६
पुनर्नवादिलेह	१२६
पुनर्नवादि चूर्ण	१२६
ज्योतिष्मत्यादितैल	१३५

आन्त्रकृमि—

नाम	पृष्ठ संख्या
निम्बादि चूर्ण	७८
निम्बषट्क चूर्ण	७८
पञ्चतिक्त घृत	७८

आन्त्रशूल—

नाम	पृष्ठ संख्या
हिंग्वाष्टक	३०
त्वगादिचूर्ण	३४
ज्वरांचच्चूर्ण	४६
कुष्ठादि चूर्ण	१०१
अग्निमुख	१०१
वज्रक्षार	१०३
अहिफेन कर्पूरादिवटी	१०८
अकरकरभादिवटी	१०८

उन्माद—

नाम	पृष्ठ संख्या
हिंग्वादिघृत	३०
अश्वगन्धारिष्ट	९५
सारस्वती चूर्ण	१३६
शंखपुष्पादि चूर्ण	१३७

अरुस्तम्भ

नाम	पृष्ठ संख्या
अष्टकट्वरतैल	२४
भल्लातकादि क्वाथ	८६
लशुनपिण्ड	९१

ऊर्ध्वजत्रुरोग

नाम	पृष्ठ संख्या
त्रिफलादि गुग्गुल	८०

कफरोग

नाम	पृष्ठ संख्या
त्रिकटु	२३
पञ्चकोल	२३
समशर्कर चूर्ण	२३
च्यवनप्राश	४३
त्रिफलादि गुग्गुल	८०
कन्टकारी अवलेह	८६
व्याघ्रीहरीतकी	८७
दशमूल कषाय	८८
दशमूलारिष्ट	८८
शट्यादिकषाय	१००
चातुर्भद्र चूर्ण	१००
पुष्करमूलारिष्ट	१०१
शृंग्यादिचूर्ण	१०२
अर्कमूलादिवटी	१०३
महाज्वरांकुश	११५
आनन्द भैरवी	११५
ज्वरारिअभ्र	११६
श्वासकुठार	११६
क्षुद्रादि पञ्चतिक्ता क्वाथ	१२५
पुनर्नवादि अवलेह	१२६
मृत्युञ्जय	१३२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम	पृष्ठसंख्या
आनन्द भैरव	१३३
कफकेतु	१३३
पञ्चवक्र	१३३

कर्णरोग

नाम	पृष्ठसंख्या
विल्व तैल	८४
कुष्ठादि तैल	१०१
अपामार्गक्षार तैल	१२८
निशादि तैल	१४३
दार्व्यादि तेल	१४४

कष्टार्तव

नाम	पृष्ठसंख्या
रजः प्रवर्तनी	४६
कुमार्यासव	४६

कास

नाम	पृष्ठसंख्या
त्रिकटु	२३
गुडपिप्पली	२४
पिप्पल्याद्यासव	२४
मरिचादिगुटी	२५
चित्रक हरीतकी अवलेह	२६
लवंगादि मोदक	३३
कर्पूरादि चूर्ण	३८
कुमार्यासव	४६
वासाहरीतकी अवलेह	७५
कण्टकारी अवलेह	८६
व्याघ्रीहरीतकी	८८
दशमूलारिष्ट	८८
चातुर्भद्र चूर्ण	१०१
अग्निमुख चूर्ण	१०१
पुष्करमूलारिष्ट	१०१
शृंग्यादि चूर्ण	१०२
अर्कमूलादि वटी	१०३

नाम	पृष्ठसंख्या
अहिफेन कर्पूरादि वटी	१०८
अग्निकुमार	१०८
जातीफलादि चूर्ण	११३
आनन्दमोदक	११३
कनकासव	११५
पुनर्नवारिष्ट	१२६
पुनर्नवादि लेप	१२६
मृत्युञ्जय	१३२
आनन्दभैरव	१३३
कफकेतु	१३३

कृशता

नाम	पृष्ठसंख्या
लाक्षादितैल	५२
चन्दनबला लाक्षातैल	६३
अश्वगंधाघृत	६५
शंखपुष्पी तैल	१३७

क्लीवरोग

नाम	पृष्ठसंख्या
च्यवनप्राश	४१
भल्लातकादि लेप	६०
वानरीपाक	६२
शतावरी घृत	६४
मेहान्तक रस	६६
स्नुह्यादि तैल	१०४
कारस्करादि वटी	१०६
अहिफेन कर्पूरादिवटी	१०८
अकरकरभादि वटी	१०८
जातीफलादि चूर्ण	११३
आनन्दमोदक	११३
ज्योतिष्मती लेप	१३५
स्वर्णक्षीरी स्वरस तैल	१४०
अनन्ताघृत	१४०
करवीरादि तैल	१५०

नाम	पृष्ठसंख्या
करवीरादि प्रलेप	१५०

क्षयरोग

नाम	पृष्ठसंख्या
एलादि गुटी	३५
कर्पूरादि चूर्ण	३८
च्यवनप्राश	४३
लाक्षादि तैल	५२
वासादिपानक	७५
वासारिष्ट	७५
वासाहरीतकी अवलेह	७५
वासा कूष्माण्डावलेह	७५
वासावलेह	७५
द्राक्षारिष्ट	८३
दशमूलारिष्ट	८८
चंदनबला लाक्षादि तैल	६३
अश्वगन्धाघृत	६५
अश्वगन्धारिष्ट	६५
अश्वगन्धाबलालाक्षा तैल	६५
पुष्करमूलारिष्ट	१०१
आनन्दमोदक	११३
कनकासव	११५
शंखपुष्पी तैल	१३७

गर्भस्राव तथा पात

नाम	पृष्ठसंख्या
चन्दनादि चूर्ण	७३
फलघृत	६४

गर्भाशय शोथ तथा गर्भाशय रोग

नाम	पृष्ठसंख्या
जीरकावलेह	२६
पञ्चजीरक पाक	२६
अशोकघृत	५७

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम	पृष्ठसंख्या
अशोकारिष्ट	५७
पूगीपाक	६३
फलघृत	६४

गलरोग

नाम	पृष्ठसंख्या
खदिरादि वटी	५६
लवंगादि वटी	५६
दाड़िमादि वटी	६२
कण्टकारी अवलेह	८६
व्याघ्री हरीतकी	८७
शटी गुटिका	१००
कफकेतु	१३३
सारस्वत चूर्ण	१३६
सारस्वत घृत	१३६
सारस्वतारिष्ट	१३६

ग्रहणी रोग

नाम	पृष्ठसंख्या
पिप्पल्याद्यासव	२३
जीरकादि मोदक	२८
जीरकाद्यरिष्ट	२६
जीरकादि चूर्ण	३२
जातिफलादि वटी	३२
लवंगादि मोदक	३३
अभयारिष्ट	४१
बिल्वपंचक	८३
लशुनाष्टक	६१
शट्यादि चूर्ण	१००
स्वल्पग्रहणीकपाट	१०८
दुग्धवटी	१०८
अग्निकुमार वटी	१०८
अकरकरभादि वटी	१०८
जातीफलादि चूर्ण	११३

नाम	पृष्ठसंख्या
आनन्द भैरव	१३३
रसाञ्जनादि चूर्ण	१४५

ज्वर

नाम	पृष्ठसंख्या
त्रिफलादि क्वाथ	४४
सुदर्शन चूर्ण	६६
पञ्चतिक्त पानक	६६
संजीवनी	८६
शट्यादि कषाय	१००
चातुर्भद्रचूर्ण	१०१
आनन्द भैरवी	११५
ज्वरारि अभ्र	११६
श्वासकुठार	११६
शुंठी गुडूच्यादि कषाय	१२४
द्राक्षा गुडूच्यादि कषाय	१२४
वासा गुडूच्यादि कषाय	१२४
क्षुद्रादि पञ्चतिक्त क्वाथ	१२४
अमृताष्टक	१२४
मृत्युञ्जय	१३३
आनन्द भैरव	१३३
कफकेतु	१३३
तरुण ज्वरारि	१३३
ज्वरमुणी	१३३
स्वच्छन्द भैरव	१३३
पञ्चवक्त्ररस	१३३
सूचिकाभरण	१३३
कल्पतरु	१३३
सप्तच्छदादि क्वाथ	१४७

त्वग् रोग

(रक्तदोष जन्य रोग)

नाम	पृष्ठसंख्या
मरिचादि तैल	२५

नाम	पृष्ठसंख्या
त्रिफलादि क्वाथ	४४
आरग्वधादि लेप	४५
विडंगतैल	५१
विडंगादि लेप	५१
खदिरारिष्ट	५६
खदिराष्टक	५६
खदिरादि प्रलेप	५६
भूनिम्बादि कषाय	६६
सुदर्शन चूर्ण	६६
पञ्चतिक्तपानक	६६
उशीरासव	७२
पटोलादिक्वाथ	७६
पटोलादिघृत	७६
पञ्चनिम्बचूर्ण	७८
निम्बादि क्वाथ	७८
पञ्चतिक्त घृत	७८
जात्यादि तैल	७८
अमृतागुग्गुल	८०
त्रिफलादि गुग्गुल	८०
पञ्चतिक्तगुग्गुलु घृत	८१
सिंहनाद गुग्गुल	८१
भल्लातक घृत	६०
सर्वांगसुन्दरी गुटी	६०
भल्लातक तैल लेप	६०
चन्दनबला लाक्षा तैल	६३
कुष्ठप्रलेप	१०१
अर्क मनः शिला तैल	१०३
वज्रतैल	१०४
कासीसादि तैल	१०४
धत्तूरतैल	११६
गुडूची त्रिफला दार्वीक्वाथ	१२४

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अमृतागुग्गुलु १२५
पुनर्नवाष्टक १२९
विषतैल १३४
शंखपुष्पी तैल १३७
पृथ्वीसार तैल १३८
करञ्जपत्रादिफाण्ट १३८
चोपचीनी पाक १३९
स्वर्णक्षीरी आसव १४०
सोमराजी तैल १४१
सोमराजी घृत १४१
बाकुच्यादिलेप १४१
बाकुच्यादिवर्ति १४१
एडगजादिलेप १४२
हरिद्राखंड १४२
हरिद्रादितैल १४३
द्विहरिद्रादि तैल १४३
सारिवादि पानक १४६
सारिवादिअवलेह १४६
सारिवाद्यरिष्ट १४७
अनन्ताघृत १४७
सप्तच्छदादि कषाय १४७
सप्तच्छदादि तैल १४७
निर्गुण्डी तैल १४८
करवीरादि तैल १५०
कुष्ठादि कषाय १५०
मञ्जिष्ठादि तैल १५०
पिण्ड तैल १५१
आदित्यपाक तैल १५१

दन्त रोग

कर्पूरादि मञ्जन ३८
लाक्षादि तैल ५२
भल्लातकघृत ९०

नेत्र रोग

कर्पूरायञ्जन ३८
त्रिफलाघृत ४४
महात्रिफलादि घृत ४४
त्रिफलालोह ४४
स्वर्णक्षीरीअञ्जन १४०
दार्व्यादि रस क्रिया १४४
रसाञ्जन नेत्रविन्दु १४४

पलित रोग

अभयारिष्ट ४१
त्रिफलारिष्ट ४४
महात्रिफलादि घृत ४३
त्रिफलालोह ४४
त्रिफलादि गुग्गुलु ८०
दशमूल तैल ८९
भल्लातक रसायन ८९
सर्वांग सुन्दरी ९०
भल्लातक घृत ९०

पाण्डु

अभयारिष्ट ४१
त्रिफलारिष्ट ४४
त्रिफलादि क्वाथ ४४
त्रिफलालोह ४४
पटोलमूलादि चूर्ण ९६
कंसहरीतकी ८८
चन्दन बला लाक्षातैल ९३
पुनर्नवाष्टक १२९
पुनर्नवारिष्ट १२९
निशालोह १४३

पित्तरोग

धात्र्यरिष्ट ४२
आमलकीखंड ४३
त्रिफलाघृत ४४
त्रिफलादिक्वाथ ४४
दाड़िमीपानक ५२
मुस्तादि क्वाथ ७१
उशीरासव ७२
षडंगोदक
चन्दनपानक ७३
चन्दनासव ७३
चन्दनादि चूर्ण ७३
शतावरीघृत ९४

पूयमेह

एलादिचूर्ण ३५
उशीरासव ७२
चन्दनासव ७३
गोक्षुरादि चूर्ण ८७
गोक्षुरादि गुग्गुल ८७
गोक्षुरादिमोदक ८८
शतावर्यादि कषाय ९४

प्रतिश्याय

त्रिकटु २३
चित्रकहरीतकी अवलेह २६
लवंगादि मोदक ३३
अमृतागुग्गुलु ८०
व्याघ्रीतैल ८७
शृंग्यादि चूर्ण १०२
कट्फलादि नस्य १०२
अहिफेन कर्पूरादिवटी १०८
स्वल्पग्रहणीकपाट १०८
कफकेतु

प्रदर

जीरकावलेह २

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पानुगचूर्ण ५६
अशोकघृतः ५७
अशोकाद्यारिष्ट ५७
पूगीपाक ६४
कुटजाष्टक ६५
उशीरासव ७२
चन्दनादि चूर्ण ७३
फलघृत ९४
मुशल्यादि चूर्ण ९६
दार्व्यादि कषाय १४५

प्रवाहिकाः ।

मोचरस ५८
कुटजादि कषाय ६५
कुटजाष्टक ६५
कुटजारिष्ट ६६
ह्रीवेरादिक कषाय ७२
विल्वपानक ८३
गङ्गाधर चूर्ण ८४
विल्वपंचक ८३
रसाञ्जनादिचूर्ण १४५

सूतिका रोग।

सौभाग्यशुण्ठी २३
जीरकादिमोदक २८
पञ्चजीरकपाक २९
जीरकाद्यारिष्ट २९
देवदार्वादि कषाय ८३
दशमूल कषाय ८८
दशमूलारिष्ट ८८
आनन्दमोदक ११३

प्लीहा वृद्धि

[illegible]पिप्पली ३४

पिप्पल्याद्यासव २४
बड़वानलचूर्ण ४१
अभयारिष्ट ४१
कुमार्यासव ४६
कंसहरीतकी ८८
वज्रक्षार १०३

फिरंगरोग—

रस गुग्गुल ८१
भल्लातक रस कर्पूरादिवटी ९०
करञ्जादिघृत १३८
चोपचीनी पाक १३९
स्वर्णक्षीरी घृत १४०
स्वर्णक्षीरी आसव १४०
स्वर्णक्षीरी गुटिका १४०
सारिवाद पानक १४६
सारिवाद्यवलेह १४६
सारिवाद्यरिष्ट १४७
अनन्ता घृत १४७

भगन्दर—

पलाद्यरिष्ट ३५
विडंगारिष्ट ५१
रास्नादि गुग्गुल ८०
त्रिफलादि गुग्गुल ८०
काञ्चनार गुग्गुल ८०
पञ्चतिक्त गुग्गुलघृत ८१
भल्लातक घृत ९०
पुष्करमूलारिष्ट १०१
अमृता गुग्गुल १२५
चोपचीनीपाक १३९

मलवन्ध—

पथ्यादि कषाय ४१

हरीतकी खंड ४१
पञ्चसकार चूर्ण ४१
अभयारिष्ट ४१
त्रिफलावलेह ४५
आरग्वधादि पानक ४५
पीतमूलीवटी ४७
स्वर्णपत्रीफांट ४७
ऐन्द्रीवटी ४८
नाराच चूर्ण ४६
मधुकादि कषाय ६७
वातगजांकुश १०६
तरुण ज्वरारि १३३
ज्वरमुरारि १३३

मुख स्फोट—

पटोलादि क्वाथ ७६

यकृतरोग—

गुड पिप्पली २४
पिप्पल्याद्यासव २४
बड़वानल चूर्ण ४१
अभयारिष्ट ४१
त्रिफला क्वाथ ४४
पीतमूली वटिका ४७
कुमार्यासव ४६
पञ्चतिका पानक ६६
पटोलमूलादि चूर्ण ७६
कंस हरीतकी ८८
वज्रक्षार १०३
गुडूची त्रिफलादार्वी क्वाथ १२४
पुनर्नवाष्टक १२६
पुनर्नवारिष्ट १२६
निशालोह १४३

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यवान पिडिका

लाक्षादि तैल ५२

योषा—उन्माद—

हिंग्वादिघृत ३०
कुमार्यासव ४६
लशुन कषाय ६१
अश्वगन्धारिष्ट ६५
जटिलादि जूर्ण ६७
पुष्करमूलारिष्ट १०१
कारस्करादिवटी १२६
ब्राह्मीघृत १३६
सारस्वतघृत १३६
सारस्वत चूर्ण १३६
सारस्वतारिष्ट १३६
ब्राह्मीपानक १३६
शंखपुष्पादि चूर्ण १३७

रक्त पित्त रोग—

आमल की खंड ४३
त्रिफलादि क्वाथ ४४
उशीरासव ७२
चन्दनासव ७३
चन्दनादि चूर्ण ७३
वासाहरीतकी अवलेह ७५
वासाकूष्माण्डावलेह ७५
वासावलेह ७५
वलादिघृत ६३
शतावरीघृत ६४
शतावर्यादि कषाय ६४

वमन

एलादि चूर्ण ६५
दाड़िमाष्टक ६२

वातशूल

अजमोदादि चूर्ण २३
सैंधवादि तैल २३
अष्टकट्वर तैल २५
शूलहर ३८
कर्पूर तैल ३८
यागराज गुग्गुल ८०
त्रिफलादि गुग्गुल ८०
अमृता गुग्गुल ८०
सिंहनाद गुग्गुल ८१
देवदार्वरिष्ट ८२
दशमूल तैल ८६
भल्लातकादि क्काथ ८६
लशुनकषाय ९०
लशुनपिण्ड ९०
क्षीरवलाघृत ९३
क्षीर वला तैल ९३
अश्वगन्धादि वटी ९४
वातगजांकुश १०६
अहिफेन लेप १०८
अहिफेन प्रस्तर १०६
अहिफेन कर्पूर तैल ११६
धत्तूर तैल ११६
कनकप्रस्तर ११६
कनकलेप ११६

विषम ज्वर

त्रिफलादि क्काथ ४४
भूनिम्बादि कषाय ६६
अतिविषादि कषाय ७०
महाज्वरांकुश ११५
गुडूची त्रिफलादार्वी क्काथ १२४
सप्तच्छदादि क्काथ १४७

विषूचिका

कर्पूराद्यासव ३७
कर्पूररस ३८
शूलहर ३८
संजीवनी ८६
लशुनाष्टक चूर्ण ९१
अहिफेनाद्यासव १०८

विसर्प रोग

एलाद्यरिष्ट ३५
भूनिम्बादि कषाय ६६

व्रण-विद्रधि आदि

त्रिफला प्रलेप ४४
त्रिफला गुग्गुल ४४
विडंगारिष्ट ५१
पञ्चतिक्त घृत ७८
निम्बादि प्रलेप ७८
जात्यादि तैल ८०
काञ्चनार गुग्गुल ८०
योगराज गुग्गुल ८०
रास्नादि गुग्गुल ८०
पञ्चतिक्त गुग्गुल घृत ८१
भल्लातकादि तैल ६०
वचतैल १०४
अमृता गुग्गुलु १२५
पृथ्वीसार तैल १३८
करञ्जादि घृत १३८
करञ्जादि फाण्ट १३८
स्वर्णक्षीरी तैल १५०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रसाञ्जनादि प्रलेप १४४
राल प्रलेप १४६
निर्गुण्डी तैल १४८
पिण्डतैल १५१

शिरशूल

आमलकी तैल ४३
दशमूल तैल ८६
चन्दनबला लाक्षा तैल ६३
नारायणी तैल ६४
आनन्द मोदक ११३

शीत पित्त

खदिराष्टक ५६
अमृताष्टक १२४
हरिद्राखंड १४२

शुक्रमेह

च्यवनप्राश ४३
शाल्मलीघृत ५८
शुक्रमेहान्तक ५८
पूगीपाक ६३
चन्दनासव ७३
गोक्षुरादिमोदक ८८

शोथ

राजिकादिलेप ५४
योगराजगुग्गुलु ८०
देवदार्वादि प्रलेप ८२
भल्लातकादि तैल ६०
भल्लातकलेप ६०
स्नुह्यादि तैल १०४
वज्रतैल १०४
विषगर्भतैल ११६
धत्तूरतैल ११६
कनकप्रस्तर ११६
कनकलेप ११६
पुनर्नवादिलेप १२६
वत्सनाभतैल १३४
निशादितैल १४३
करवीरादितैल १५०
करवीरादिलेप १५०

श्वयथु

त्रिफलारिष्ट ४४
पटोलमूलादि चूर्ण १७६
पुनर्नवादिघृत १२६
पुनर्नवाष्टक १२६
पुनर्नवाद्यारिष्ट १२६

स्मृति नैर्बल्य

ब्राह्मीघृत १३६
सारस्वतघृत १३६
सारस्वत चूर्ण १३६
सारस्वतारिष्ट १३६
ब्राह्मीपानक १३६
शंखपुष्पादि चूर्ण १३७
शंखपुष्पीतैल १३७

हृदयरोग

अभयारिष्ट ४१
च्यवनप्राश ४३
धात्र्यारिष्ट ४३
वासाहरीतकी अवलेह ७५
वासाकूष्मांडावलेह ७५
बलादिघृत ६३
पुनर्नवारिष्ट १२६
हृदयामृतरस १३१
अर्जुनकषाय १३२
अर्जुनघृत १३२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परिमाण (तोल)

प्राचीन परिमाण।

२ यव- १ रत्ती

६ रत्ती-१ माष

४ माष-१ शाण

४ शाण-१ कर्ष- १ तोला

१ तोला-१९२ यव या ग्रेन

४ कर्ष-१ पल

४ पल१ कुडव

४ कुडव-१ प्रस्थ- ६४ कर्ष या तोला

४ प्रस्थ-१ आढ़क

४ आढ़क-१ द्रोण- २५६ पल

१०० पल- १ तुला

नवीन— देशी—

८ चावल-१ रत्ती- २ यव या ग्रेन

८ रत्ती-१ माशा

१२ मासा-१ तोला

५ तोला-१ छटांक

१६ छटांक-१ सेर

अंग्रेजी— ठोस द्रव्यों का—

६० ग्रेन-१ ड्राम

८ ड्राम-१ औंस- २॥ तोला

१६ औंस- १ पौंड- आधा सेर

द्रव वस्तुओं का—

६० बूंद-१ ड्राम

८ ड्राम- १ औंस- ४८७ बूंद

२० औंस-१ पाइन्ट

८ पाइन्ट-१ गैलन-५ सेर

नोट—वास्तव में १ बूंद पानी का भार $\frac{९}{१०}$ ग्रेन है अतः यदि किसी ठोस औषधी में १०० गुना जल मिलाना हो जैसे १ ग्रेन संखिया को १०० गुना जलमें घोलना हो तो ११० बूंद जल लेना चाहिये।

वैज्ञानिक—ठोस द्रव्यों का परिमाण—

१५ $\frac{१}{२}$ ग्रेन- १ ग्राम (Gr)

३० ग्राम-१ औंस

द्रव वस्तुओं का—

१६ बूंद-क्यूबिक सैन्टीमिटर (C. C.)

१ औंस-३० क्यूबिक सेन्टीमिटर [C. C.]

घरेलू— ठोस वस्तुओं का परिमाण—

रुपया-१ तोला-१८० ग्रेन

अठन्नी-६ माशा-९० ग्रेन

चवन्नी-३ माशा-४५ ग्रेन

दुवन्नी- १॥ माशा-२२॥ ग्रेन

द्रव वस्तुओं का—

१ छोटा चमचा या टीस्पून-१ ड्राम

१ बड़ा चमचा या टेबलस्पून-४ ड्राम

प्याली या टीकप- ४ औंस

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औषधि विज्ञान

औषधि निर्माण सम्बन्धी प्रक्रियायें।

१-कषाय—औषधि को मृदु कठिन भेद से क्रमशः ८ या १६ गुना जल में मन्दाग्नि पर तपाकर चौथाई शेष रख छान लिया जाता है। यदि औषधि तोलों में हो तो जल सदा १६ गुना लिया जाता है। यदि कषाय को कुछ देर रखना अभीष्ट हो तो इसमें $\frac{1}{8}$ भाग मद्यसार (९० %) मिलाकर स्वच्छ बोतल में भरकर रखा जाता है।

मात्रा—आधा से २ औंस।

२-शीत कषाय—औषधिको अधकुट करके ६ गुना जल में १०-१२ घंटे रखकर जल को छान लिया जाता है।

मात्रा-आधा से २ औंस।

३-फाण्ट--औषधि को अधकुट करके ६ गुना उबलते जल में डाल ढककर १-२ घंटे पीछे छान लिया जाता है।

मात्रा—आधा से २ औंस।

नोट—इन कषायों को मीठा करके देना हो तो वात रोगों में खांड, पित्त रोगों में मिश्री, कफ रोगों में गुड़ या मधु उचित मात्रा में मिलादें।

४-स्वरस—ताजी औषधियों को कूटकर निचोड़कर स्वरस निकाला जाता है। यदि शुष्क औषधि हो तो द्विगुण जलमें ८-१० घंटे भिगोकर कूण्डी में घोटकर छानकर स्वरस लिया जाता है। इसमें मधु या लवण मिला लेवें।

मात्रा—आधा से २ औंस।

५-चूर्ण—औषधि को सुखाकर इमामदस्ते में कूट कपड़े से छानकर चूर्ण बनाया जाता है। कभी कभी इनमें समान या दुगनी खांड या गुड़ मिलाया जाता है इन्हें जल दूध या शहद से खिलाया जाता है।

मात्रा-३ से ६ मासा।

६-रसक्रिया—औषधि का जल में कषाय बनाकर छानकर अग्निपर रखे उबलते पानी में डूबे हुये पात्र में इतनी देर पकाते हैं जिससे कषाय गाढ़ा हो जाय। यदि इसे द्रव रखना अभीष्ट हो तो मद्यसार (९० %) थोड़ी मिला देनी चाहिये। यदि इसे अच्छा गाढ़ा कर लिया जाय तो इसे "घनरस" क्रिया कहते हैं और यह नहीं बिगड़ती। अनेक औषधियों के मुख्य तत्व जलमें नहीं घुलते इनके कषाय करने के स्थान पर उनको मद्यसार (६० से ९० %) में ५-७ दिन भिगोकर रख देने से उनके तत्व द्रवमें घुल जाते हैं। फिर छानकर तिर्यक् पातन यंत्र द्वारा मद्यसार और जल को उड़ा दिया जाता है और नीचे बची रस क्रिया को लिया जाता है।

मात्रा—२ से १० यव।

पानक—७ औषधि का स्वरस, फाण्ट या कषाय लेकर उसमें द्विगुण या त्रिगुण खांड़ या मिश्री मिलाकर मन्दाग्नि पर पाककर ऊपर आई मैल को पृथक् कर पानक बनाया जाता है। कच्चा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रहने से बिगड़ जाता और अधिक पक जाने से खांड़ के रवे जम जाते हैं। यदि इसे देर तक रखना अभीष्ट हो तो इसमें $\frac{1}{8}$ या $\frac{1}{10}$ भाग (९०%) मद्यसार मिलादें। द्रव रस क्रिया या आसव में साधारण पानक मिला कर भी पानक बनाये जाते हैं। मात्रा $\frac{1}{4}$ से १ औन्स)

८ वटिका—औषधियों को घन रस क्रिया में उन्हीं के शुष्क चूर्ण मिलाकर गोलियां बनाई जाती हैं। चूर्ण से गोली बनानी हों तो उसे निर्दिष्ट रसों से भावना देकर गुग्गुल, गुड़, मधु, कुमारी स्वरस, खांड़ का पानक आदि में से कोई द्रव्य मिलाकर मर्दन कर गोली बनाई जाती है।

रस क्रिया से बनी गोली की मात्रा २ से ८ ग्रेन चूर्णों से गोली की मात्रा १० से ३० यव।

९ अवलेह—जिस औषधि का अवलेह बनाना हो उसके चूर्णकी अपेक्षा द्विगुण या चतुर्गुण खांड़ या मिश्री का पानक बनाकर चूर्ण मिला दिया जाता है इसमें थोड़ा सा घी और मधु भी मिला देते हैं। कई बार उस औषधि के स्वरस फाण्ट या कषाय में आधा भाग मिश्री या खांड़ डालकर पानक बनाकर उसी औषधी का चौथाई भाग चूर्ण डालकर तथा कुछ मधु घृत डालकर अवलेह बना लिया जाता है।

मात्रा—आधा से १ तोला।

१० घृत—औषधि के चूर्ण या कल्क को ४-८ या १६ गुना जल में दिन भर भिगोकर औषधि से चतुर्गुण घृत डाल मन्दाग्नि पर तबतक पकाया जाता है जबतक सब जल भाग न उड़ जाय। इसे छानकर नीचे का काला कल्क फेंक दिया जाता है। यदि चूर्ण न हो तो उस औषधि का ४-८ या १६ गुना जल में कषाय कर चौथाई शेष रख औषधि का चौथाई कल्क और औषधि से चतुर्गुण घृत डाल पाक किया जाता है। यदि स्वरस हो तो उसमें चतुर्गुण घृत डालकर पाक किया जाता है।

पाक करनेसे पहिले घृत में १६वां हिस्सा जल मिश्रित हरिद्रा का चूर्ण डाल जल के उड़ने तक घृत को पका कर छान लिया जाना है, घृतों में जब कल्क प्रथक् होकर नीचे बैठ जाय. फेन उठना बन्द हो जाय, और गन्ध आने लगे तब घृत पाक पूर्ण हुआ समझना चाहिये।

मात्रा-आधा से १ तो०

११ तैल प्रथम तिल तैल में हरिद्रा, त्रिफला, मुस्ता, लोध्र, वलामूल, मजिष्ठा में से सब ही या किन्हीं के सम्मिलित चूर्ण को तेल से सोलहवां भाग लेकर समान जल मिलाकर तेल में डालकर जब तक जल भाग उड़जाय तब तक पाककर छान लिया जाता है। जिस औषधि का तेल बनाना हो घृत की उपरोक्त बिधिसे ही उसे बनाया जाता है। घृत और तेल में यदि नीचे आया हुआ कल्क मृदु और जल युक्त रहे तो उसे "मृदुपाक" यदि वह मृदु और निर्जल रहे तो "मध्यपाक" यदि कठोर और खुरदरा रहे तो "खरपाक" यदि जल जाय तो "दग्धपाक" कहते हैं। इन में से मध्यपाक उत्तम है। तैल बनाने के पीछे उसमें चमेली के फूल चंदन का चूर्ण या कुष्ठ कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्य गरम गरम तैल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में कुछ काल ढककर रख कर छानलिया जाता है। बाजार में मिलने वाले इत्र और रंग भी मिला दिये जाते हैं। यदि तैल में मञ्जिष्ठा, रत्नजोति आदि डालदें तो इनका लाल रंग तैल में आजाता हैं।

१२ *स्थिर तैल* —जिन औषधियों में कोई तैल होता है उन्हें मशीन कोल्हू या कुण्डोंमें पेल या कूट कर उनका तेल लिया जाता है। कई बार तिलों को आमल की भृङ्गराज आदि केश्य औषधियों के रसों में कई दिन रख कर फिर इनमें से तैल निकाला जाता है। जो केश्य होता है। कई औषधियों का पाताल यंत्र द्वारा तेल निकाला जाता है। तेल युक्त औषधियों को ईथर में घोल दिया जाय और छान कर ईथर को तिर्यक् पातन यंत्र से तिर्यक् पातित करदें तो तेल नीचे शेष रह जाता है। इसके लिये एक विशेष यंत्र Soxhletsapparatus भी है।

१३ *उड़नशील तैल या इास्थिर तैल*—जिन औषधियों के तैल गरम करने से उड़ जाते हैं। उनको अर्क यंत्र में या जल में डाल कर अर्क की तरह प्राप्त करते हैं। तैल अर्क के ऊपर एकत्रित होता रहता है।

१४ *आसव तथा अरिष्ट* —औषधियों के कई तत्व जल में नही घुलते और मद्यसार में घुल जाते हैं। ऐसे तत्वों को प्राप्त करने के लिये औषधियों के आसव तथा अरिष्ट बनाये जाते हैं। जिसका आसव बनाना हो उसे २५ भाग जल १० भाग गुड़, ५ भाग मधु में मिलाकर इसमें थोड़ा सा यीष्ट (Yeast) या मद्यसार का खमीर जो बाजार से मिलता है डाल कर एक चीनी या मिट्टीके बर्तनमें अच्छी तरह बन्द करके गरम स्थानमें रख दिया जाता है। गरमी से कुछ काल में ही यह खांड़ गुड़ और मधु मद्यसार में परिवर्तित हो जाते हैं जो औषधी के तत्वों को अपने अन्दर घोल लेती है। १५ या ३० दिन के पीछे वर्तन को खोल द्रवय को छान एक बड़ी बोतल में डाल इसमें निर्मली का चूर्ण डालकर कुछ काल एकान्त में रख दिया जाता है जिससे द्रव नितरकर स्वच्छ हो जाता है। ऊपर के द्रव को छानकर स्वच्छ शीशी में बन्द करके रखा जाता है क्यों कि खुला रखने और हवा लगने से यह सिरके में बदल जाता है। जल के स्थान पर यदि उस औषधि का कषाय २५ भाग बनाकर रखाजाय तो उसे 'अरिष्ट' कहते हैं। अरिष्ट को बन्द करते समय उस औषधि का १ या २ भाग चूर्ण भी डाल दियाजाता है। आसवों में शास्त्र निर्दिष्ट परिमाण में औषधियां डालनी चाहिये, सब में धातकी पुष्प चूर्ण के डालने का भी विधान है जो किसम्भवतः मद्यसार उत्पन्न करने में सहायक होता है। कई शास्त्रीय आसवो में जलकी मात्रा अपर्याप्त लिखी हुई है जो बढ़ाकर डालनी अवश्यक होती है। इसलिये आगे लिखे जिस आसव में जल की मात्रा न्यून हो उसे बढ़ाकर डालें।

कृत्रिम मद्यसार द्वारा भी औषधियों के आसव (Tinctures) बनाये जाते हैं। जिस औषधि का आसव बनाना हो उसे यवकुट करके ५ से १० गुना मद्यसार (६० से ९०%) में डालकर गरम स्थान में रख दिया जाता और बीच २ में समय २ पर हिलाकर अन्त

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में छान लिया जाता है। अथवा औषधि को यवकुट करके मद्यसार में भिगोकर एक शीशे या चीनी की लम्बी नली में भर दिया जाता है। इस नली में नीचे सूक्ष्म छिद्रों वाला फलका रखा जाता है और मुख पर एक ऐसी ढकी हुई पीक रखते हैं जिसमें से थोड़ी थोड़ी मद्यसार निकलती हो। पीक में मद्यसार भर दिया जाय तो वह औषधि में से गुजरती हुई उसके सारांश को लेकर नीचे छिद्रों द्वारा एक वर्तन में गिरती रहती है। जबतक औषधि में सत्व रहता तब तक उसमें से मद्यसार गुजारी जाती है।

इस प्रकार आसव बनाने के लिये भिन्न २ द्रव्यों के लिये भिन्न २ शक्ति की मद्यसार प्रयुक्त होती है। उदाहरणतः विजयाबीज, वचामूल, शुंठी, कुंकुम, चन्दन के लिये ९० %, कनकमूल, कुष्ट, पुष्करमूल, वाकुची, अजमोदा, रेवन्दचीनीके लिये ८०% वत्सनाभ, विषमुष्ठी, धत्तूर पत्र, तगर, जटामांसी के लिये ७५% किरात तिक्त, पारसीकय यवानी, नारंगी त्वक् के लिये ६५% अशोक, कुटज, ब्राह्मी, वासा, दाड़िमफल त्वक्, लोध्र, सारिवा के लिये २०%, आवश्यक है। अन्तिम वर्ग में ३०% गिलसरीन भी डाल देवें।

१५ अर्क—औषधि को २० गुना जल में रात भर भिगो प्रातःकाल समस्त को अर्कयंत्र में डाल मन्दाग्नि पर अर्क निकालें। आधा जल प्राप्त होने पर आगे अर्क न लेवे फिर इस प्राप्त हुये अर्क में $\frac{1}{20}$ भाग उस औषधी का डाल कर कुछ घंटे रख दिया जाय और फिर इसका आधा अर्क ले लिया जाय तो यह अर्क अधिक तीव्र होता है। कई बार शीघ्रता में अर्क तैयार करना हो तो उस औषधी के तैल जैसे शतपुष्पा, अजमोदा आदि के तैल को हजार गुना जल में घोलकर अर्क बना लिया जाता है। अर्क यन्त्र में आधा या चौथाई भाग ही जल डालना चाहिये।

:o:

चिकित्सा संबन्धी प्रक्रियायें

१ शीतपरिषेक शीत जल का स्नान वल्य और उत्तेजक है। इससे स्नान करने से शरीर में अधिक कार्य करने की शक्ति आती है। शीत जल में स्नान करने से रक्त पहिले तो अन्दर की ओर जाता और फिर त्वचा को गरम करने के लिये वेग से बाहर की तरफ आता है जिससे शरीर का रक्त संचार तीव्रता से होता है ठंडे जल के स्नान के साथ ही त्वचा को अच्छी तरह कपड़े से मला जाय और ५, १० मिनट ही स्नान किया जाय तो इसका लाभ विशेष होता है।

अतिज्वर, और ज्वर रोगी की बेचैनी को कम करने के लिये रोगी को ठंडे पानी के टब में बैठा, शिर पर ठंडा कपड़ा रख, शरीर को विशेषतः पीठ को पानी में भीगे कपड़े से अच्छी तरह मल १० मिनट या जबतक उसकी ऊष्मा १०१ डिग्री तक आजाय स्नान कराया जाता है। पीछे पोंछ कर गरम कपड़ा ओढ़ाकर लिटाया

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जाता है। पित्ताधिक ज्वरों के लिये शीत स्नान लाभदायक है।

केवल पेडू स्नान देने के लिये रोगी को ठण्डे जल के टब में ऐसे बिठाया जाता है कि उसका पेडू भाग जल में रहे और शेष जल से बाहर रहे। लगभग १० मिनट से आध घंटे तक ठंडे कपड़े से नाभि के नीचे के प्रदेश को अच्छी तरह मला जाता है। स्नान के पीछे शरीर को गरम करने के लिये हलका सा व्यायाम कराया जाताहै। इससे कोष्ट और वस्ति प्रदेश में विद्यमान अंगों में रक्त संचार के अधिक होनेसे उनकी निर्बलता हटती है। यदि केवल शिश्नेद्रिय को ही शीत जल में डुबोकर उसके अग्रचर्म को कुछ काल प्रतिदिन मला जाय तो नाड़ी संबन्धी निर्बलता हटती है। इसी प्रकार शिरोऽभिघात, तीव्र ज्वर में शिर की गर्मी को हटाने के लिये शिर पर बरफ का भीगा हुआ कपड़ा रखाजाता है जिससे प्रलाप मूर्छा, निद्रा नाश हटते हैं।

२ उष्णपरिषेक--अंग को गरम पानी में डालकर सेक देने को उष्ण परिषेक कहते हैं। इससे त्वचा की तरफ अधिक रक्त आता और अन्दर की शोथ और शूलशान्त होती है। उदाहरणतः पैर में मचकोड़ आजाय तो उसे गरम पानी में रख अधिक२ गरमपानी मिलाते जावें और फिर निकाल कर पैर पर कर्पूर तेल मल गरम रुई बांध रखें तो दर्द को आराम होता है यदि त्वचा पर त्वक्रोग के कारण अति कण्डू और बेचैनी हो तो उस अंग को गरम नीम के कषाय या क्षारीय जलमें डुबोया जाय तो त्वचा साफहो जाती और खुजली बन्द हो जाती है। प्रतिश्याय, शिरदर्द, निद्रानाश, नासारक्तस्राव, गल और कंठ के रोगों में पांवों को १ या आध घंटा गरम जल या राई के कषाय में रखने से बड़ा आराम आता है। कष्टार्तव, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशय, शोथ, कटिशूल, अर्शस, वृक्कशूल आदि रोगों में गरम पेड़ू स्नान दिया जाय तो आराम आता है।

३–स्वेदन—सेक देने को स्वेदन कहते हैं। इससे स्वेद आकर अंग हलका पड़ जाता है। आटे के चोकर, रेत, नमक, काञ्जिक में पिसी हुई अलसी आदि की पोटली बनाकर आग या तवे पर गरम कर सेक दिया जाता है। शीशे या रबड़ की बनी हुई बोतल में गरम पनी भर कर उनसे भी सेक दिया जाता है। प्रतिश्याय, कास, स्वरभेद आदि में गहरी शोथ को हटाने के लिये गले पर सेक दिया जाता है। जोड़ों तथा मांस पेशियों के दर्दों में सेक दिया जाता है। सारे शरीर में अकडांद और दर्द हो तो रोगी को चारपाई पर लिटा कर कम्बल उढ़ा कर नीचे थोड़े धधकते हुये कोयले रख दें तो उसे पसीना आकर आराम हो जाता है। हृदय की निर्बलता के कारण हाथ, पैर, अकड़ते या ठण्डे हो गये हों तो इन पर गरम बोतलें रखी जाती हैं।

शुष्क स्वेद के अतिरिक्त आर्द्र स्वेद भी दिया जाता है। उबलते जल में खद्दर के दो बड़े कपड़े डुबो दिए जाते हैं और एक तौलिये में जिसके दोनों सिरों पर एक खपची वंधी हो चिमटी द्वारा इस कपड़े को पानीमें से निकाल कर रख दिया जाता है। दो आदमी खपचियों

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

को विरुद्ध दिशामें मोड़ कर इस कपड़े को निचोड़ देते हैं और इसकी दो तीन तह करके जहां पर सेक करना हो वहां पर रख कर ऊपर केले का पत्ता रख बांध देते हैं। इसके ठण्डा होने पर दूसरा कपड़ा इसी प्रकार निचोड़ कर रख दिया जाता है। इस कपड़े के नीचे त्वचा पर तारपीन के तेल या किसी अन्य बातहर तेल में भीगा हुआ एक कपड़ा रखा जाता है। पेट की गहरी शोथ शूल और आध्मान में यह सेक लाभ दायक है। नेत्रों की शोथ में हलके गरम जल में लवण या टंकण डाल स्वच्छ रुई या कपड़े को भिगोकर निचोड़ कर उससे सेक दिया जाता है। पोस्त के डोडों के हलके गरम कषाय से भी आंखों पर सेक देते हैं।

वाष्प स्वेदन देने के लिए रोगी को चारपाई पर लिटाया जाता या कुर्सी पर बैठाया जाता है और ऊपर कपड़ा ओढ़ाते हैं। जिस अंग पर स्वेदन देना हो उसके नीचे उबलता हुआ जल या पलाशपुष्प, देवदारु, बचा आदि के उबलते हुए कषाय बर्तन में भर कर रख दिए जाते हैं। रोगी का मुख कम्बल से बाहर रखना चाहिये। इससे बहुत पसीना आकर शोथ, शूल, उद्वर्त शान्त होते हैं।

गले या मुख के अन्दर स्वेद देने के लिये एक ऐसे पात्र में जिसपर एक लम्बी नली लगी हो पानी भर दिया जाता है और आग पर रख दिया जाता है। नली द्वारा इसकी भाप मुख में पहुँचाई जाती है। इसके लिये नली के सामने कुछ दूरी पर मुख खोल दिया जाता है। जिससे वाष्प गले में पहुँचते हैं। इस जल में शतपुष्पा, पोदीना, लोबान, कर्पूर आदि में से कोई द्रव्य मिला दिया जाता है।

४ *उपनाहन या पुलटिस*—उबलते हुये पानी में अलसी, गेहूँ या चावल के आटे को मिला अच्छी तरह हिला हिला कर न बहुत पतली और न बहुत गाढ़ी लुगदी बनाई जाती है। इसे कपड़े पर रख कर कपड़े के चारो किनारों को इस पर मोड़कर एक गद्दी सी बना कर जिस स्थान पर सेक देना हो उस पर टिका ऊपर खद्दर का कपड़ा टिका कर पट्टी बांध दी जाती है। इसमें थोड़ा एरण्ड, जैतून, अलसी, सरसों, आदि का तेल; हरिद्रा; बचा देवदारु, लवण आदि के चूर्ण भी डाले जाते हैं। पिडिका, विद्रधि तथा फुफ्फस की गहरी शोथों को हटाने के लिये यह बांधी जाती है। इनको ठण्डा होने से पहले ही उतार कर दूसरी बांध देनी चाहिये।

५ *स्नेहन*—शरीर पर तेल बसा आदि की मालिश करने को स्नेहन कहते हैं। अंगों की वातिक निर्बलताओं में वातहर तेलों बसा से बनी हुई गरम मरहमों की प्रति दिन १-२ घंटे मालिश की जाती है।

६ *लेप या प्रस्तर*—गहरी शोथ या शूल को हटाने के लिये ऊपर त्वचा पर क्षोभक औषधियों के लेप या प्रस्तर लगाये जाते हैं। उदाहरणतः पार्श्वशूल, स्वास, ज्वर, संधि शोथ, नेत्रशोथ शिरशूल उदरशूल में इन प्रदेशों के ऊपर राजिका या चित्रक चूर्ण या दन्तीबीज कल्क या तेलनी मक्खी से बनाया "कन्थैरिडीन" का प्रस्तर लगा दिया जाता है। राई आदि के चूर्ण को गरम जल या सिरके में भिगो छोटे

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कपड़े पर लगाकर जिस स्थान पर दर्द हो उससे थोड़ा हटाकर त्वचा पर यह प्रस्तर लगा दिया जाता है। इनके लगाने से छाला पड़कर दर्द :हटजाता है। छाला या तो स्वयं फूट जाता या उसे स्वच्छ शस्त्र (चाकू आदि) से खोल दिया जाता है। बालकों पर राई का प्रस्तर लगाना हो तो १ भाग राई के चूर्ण के साथ ३ भाग आटा मिलाकर हलका गरम गरम प्रस्तर बांध देना चाहिये। नेत्र शोथ में शंख प्रदेश और शिर के दर्दों में शंख प्रदेश या ग्रीवा के पीछे छाला डालना चाहिये। इन शोथों और शूलों को हटाने के लिये तारपीन का तेल, कर्पूर तेल आदि गरम तेल भी ऊपर त्वचा पर मले जाते हैं।

७ रक्तमोक्षण—शरीर के किसी भाग में रक्त अधिक संचित हुआ हो तो उसे निकाल दिया जाता है। क्षोभक औषधियों के लगाने से रक्त शरीर के अन्दर के भाग से हटकर त्वचा की ओर आ जाता है जिससे अन्दर की शोथ हट जाती है। परन्तु रक्त मोक्षण में रक्त को सर्वथाही निकाल दिया जाता है जिससे गहरा शोथ, शूल, हट जाती है श्वास, ज्वर, जीर्णविषमज्वर तथा जब शरीर के एक या अनेक अवयवों में अधिक रक्त भर जाय तो इस खून के दबाव को हटाने के लिये कुछ खून निकाल देना चाहिये। गहरी शोथों में त्वचा के ऊपर स्वच्छ चाकू से हलके हलके कुछ ऐसे घाव किये जाते हैं जिससे कुछ द्रव और खून दिखने लगे। फिर एक कांच घटिका में थोड़ी मद्यसार में भीगा स्याही चूस का टुकड़ाडाल कर उसे आग लगादी जाती है। जब स्पिरिट जल जाती और थोड़ी आग शेष रहजाती है। तब घटिका को शीघ्र ही घाव किये हुये प्रदेश पर टिका दिया जाता है क्यों कि घटिका में वायु नहीं होती इस लिये वह स्थान उपड़ आता है और रक्त निकल कर घटिका में भरना आरम्भ हो जाता है। पर्याप्त रक्त निकल चुकने पर घटिका को उठा उस स्थान की त्वचा को नीम के पानी से धो स्वच्छ कपड़े से तब तक बांध दिया जाता है जब तक व्रण ठीक न हो जावे। जलौका के द्वारा भी त्वचा के नीचे का जमा हुआ गन्धा खून निकाला जाता है।

जीर्ण बिषम ज्वर, श्वास ज्वर, उन्माद आदि रोगोंमें जब किसी स्थानकी शिराओं में अधिक रक्त भरा हुआ हो तो शिराच्छेदन करके खून निकाल दिया जाता है। इसके लिये बाहु परकसकर पट्टी बांध दी जाती है और नीचे उभरी हुई शिराओं में से किसी शिरा पर की त्वचा में नीचे ऊपर की दिशा में $\frac{१}{२}$ के बराबर चीरा देकर जब शिरा दिखने लगे तो उसमें इसी दिशा में चाकू से एक छोटा सा चीरा दिया जाता है। जब खून बन्द करना हो तो ऊपर की पट्टी खोलकर स्वच्छ वस्त्र रखकर पट्टी बांध दीजाती हैं।

वातरक्त, रक्तदोष, रक्तपित्त, सर्वांग पिड़िका आदि रक्तरोग, यकृत्, प्लीहा वृद्धि, शिरशूल के लिये रक्त मोक्षण लाभ दायक है। इसके पीछे दूध, घृत, चावल पथ्य और उष्ण भोजन अपथ्य हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

८ विरेचन—पित्त की वृद्धि को शांत करने के लिये विरेचन दिया जाता है। विशेषतः मलवन्ध, आध्मान, शूल, उदरकृमि, अर्शस्, भगन्दर, यकृत्, प्लीहा वृद्धि, जलोदर, आमातिसार आदि कोष्ठरोग, शिर, नासिका, नेत्र, कर्ण, मुख, कण्ठ आदि ऊर्ध्व अंगों की शोथ और शूल, हृद्यरोग, पाण्डु, कामला, श्वयथुः तथा वातरक्त, स्फोट, विद्रधि, कुष्ट आदि रक्तदोष जन्य त्वग् रोग, जीर्ण ज्वर तथा विषों के खाये जाने पर त्रिवृत् चूर्ण १ या २ ड्राम शहद, खाण्ड, मिश्री या गुड़ के बनाये हुए शरवत के साथ दें। अथवा २ तोला त्रिफला का १ पाव जल में बना शीत कषाय नमक, खाण्ड या शहद मिलाकर पिलावें। १ या २ बड़ी हरीत की, १ पिप्पली, ७ या ८ वादाम पाव भर जल में कुछ देर भिगोकर सरदाई की तरह कूट छान नमक या शहद मिलाकर पिलावें। बात रोगों में एरण्ड तैल थोड़े दूध में डाल कर देवें। जयपाल के योग भी देसकते हैं। वृद्ध, क्षयरोगी, गर्भिणी, शिशु को सदा लघु रेचन देना चाहिये जैसे द्राक्षाकषाय, द्राक्षा आसव, गुलकन्द या त्रिफला का शीतकषाय। विरेचन लेकर शीत जल का सेवन नहीं करना चाहिये। विरेचन के पीछे खिचड़ी दें। शरद बसन्त आदि ऋतुओं में परिवर्तन काल के समय स्वस्थ पुरुषों के लिये भी विरेचन लाभ दायक है।

९ वमन—शरीर में कफ की अधिकता कम करने के लिए वमन दिया जाता है। विशेषतः अरुचि, हल्लास, कफाजीर्ण, चिरस्थाई आमाशयशोथ में यदि आमाशय में कफ बढ़ा हुआ हो, कास, श्वास, नासा, मुख, कण्ठ, गल, कर्ण आदि में कफ पित्त जन्य शोथ हों या कोई विष खाई गई हो तो मदनफल चूर्ण १ या २ ड्राम कुछ पिप्पली और लवण का चूर्ण कोसे आध पाव जल में मिलाने से वमन के द्वारा बहुत सी श्लेष्मा निकल जाती है। अजीर्ण और मन्दाग्नि के लिये वमन देना हो तो नमक और क्षार मिलाकर १ या २ सेर कोसा जल एक साथ पिलादें। इसे पीकर रोगी गले में उंगली डालकर इस सारे पानी को निकाल दें। वसंत काल में स्वस्थ पुरुषों को भी वमन लेना हितकर है। पित्त प्रकृति को या पित्त की अधिकता में मदन फल या राजिका चूर्ण (आधा ड्राम) के स्थान पर पटोल या नीम का कषाय नमक डालकर पिलाकर उल्टी करवा देनी चाहिये। वमन के पीछे गरम जल और पिप्पली या दालों के गरम रसे खाना चाहिये।

१० वस्ति—आंतों में वात के प्रकोप को शान्त करने के लिये वस्ति दीजाती है। रोगी के पांयते को कुछ उंचा कर उसे वाम पार्श्व पर ऐसा लिटावें कि उसकी वाम जंघा कुछ सीधी और दक्षिण जंघा कुछ संकुचित रहे। फिर वस्ति यंत्र के नेत्र पर घृत लगाकर गुदा में २" ३" तक प्रवेश कराके वस्तिदें। आंतों में जल के साथ हवा न जाने पावे। मलबन्ध के लिये $1\frac{1}{2}$ या २ पाइंट गरम जल जिसमें नमक या साबुन घुला हो देना चाहिये। आंत्रशूल और आनाह हो तो गरम जल में आधा औंस तारपीन का तेल या १ औंस एरण्ड तेल या ५, ६

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औन हिंगु को जल में मिलाकर वस्ति दें। गुदा के छोटे २ कृमियों को नष्ट करने के लिये निम्ब, महानिम्ब, कटुकी, किराततिक्ता, काशिया आदि के फाण्ड की वस्ति दें। प्रवाहिका अतिसार आदि में कुटज शाल्मलीपुष्प आदि ग्राही द्रव्यों के फाण्ट की वस्ति या ईसबगोल आधा तोला को १ औंस जल में घोल कर इसकी छोटी पिचकारी से छोटी वस्ति दें। पुरुषों में साधारण वस्ति देने के लिये १ या २ पाइन्ट, बच्चों के लिये आधा पाइन्ट और सबसे छोटों को २ से ४ औंस द्रव पर्याप्त होता है।

११ *उत्तरवस्ति*— मूत्रमार्ग तथा योनि मार्ग द्वारा वस्ति देने को उत्तर वस्ति कहते हैं। विशेषतः नवीन पूयमेह के लिये दीजाती है। उपरोक्त वस्तियंत्र की नलिका के आगे छोटे मुख का नेत्र लगाकर वस्तियंत्र में शोधक द्रव भरकर रोगी के पेट से दो फुट ऊंचा रख कर नेत्र को मूत्र मार्ग में डाल शिश्नेन्द्रिय के नीचे एक खाली चिलमची रख वस्ति दी जाती है। द्रव मूत्र मार्ग को धो धो कर वापिस चिलमची में गिरता रहता है। ३, ४ दिन इस प्रकार धोने के पीछे वस्ति यंत्र को पेट से ३ फुट ऊंचा रखकर वस्ति दीजाती है जिससे शोधक द्रव मूत्राशय तक पहुँचकर उसको भी धोदेता [illegible]टे शीशे के वस्ति यंत्र से भी जिसमें आधा औंस जल आता है उत्तर वस्ति दीजाती है। रोगी को बैठाकर मूत्रमार्ग में दवाई डाल कर थोड़ी देर के लिये मूत्रमार्ग के मुख को भींच कर दवाई निकाल दीजाती है।

१२ *शिरोवस्ति*— चमड़े, रबर, या मोटे कपड़े की बनी हुई एक मोटी सी टोपी कान के ऊपर सिर पर चारों ओर इस तरह बांध दी जाती है जिससे यदि टोपी के ऊपर कोई द्रव डाला जाय तो वह नीचे न निकले। इसे टिका कर इसमें वात हर तेल भर कर १–२ घंटे तक रोगी को वैसे ही बैठाया जाता है। इस के देने से पहले बाल मुंड़वा दिये जाते हैं। इसे कुछ दिन तक जारी रक्खा जाता है। चिरस्थाई वातिक शिरःशूल, अर्दित, निद्रानाश आदि रोगों में दी जाती है।

१३ *गण्डूष*— औषधियों के गरारे कराने को गण्डूष कहते हैं। मुख, गल, कण्ठ में श्लेष्म शोथ हो तो त्रिकुटु कषाय या फान्ट या सर्ज क्षार, यवक्षार, टंकण आदि के क्षारीय जल से। मुख पाक या मुख स्फोट में- त्रिफला कषाय, रसाञ्जन, टंकण के द्रवों, से। दन्त रक्त स्राव के रोकने के लिए दूर्वा स्वरस या हरीत की, त्रिफला कषाय। तीव्र औषधियों के कारण मुख पाक होने पर तिल कल्कजल, तिल तैल, ईसब गोल जल से। दांत हिलते हों तो तिल कल्क जल या तिल तैलके गन्डूष दिए जाते हैं।

१४ *कवल*— यदि गरारों को मुख में पर्याप्त काल तक रख कर फेंका जाय तो उसे कवल कहते हैं। जब नासिका, मुख, गल आदि में बहुत श्लेष्मा बढ़ी हुई हो तो त्रिकटु फान्ट या त्रिकटु चूर्ण मिश्रित जल या थोड़ा त्रिकटु चूर्ण, बचा, खाण्ड, मिश्री, मधु आदि में से किसी को तब तक मुख में रखा जाता है जब तक सारा मुख श्लेष्मा से भर जाय तब इसे फेंक दिया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१५ नस्य— नासिका द्वारा औषधी के देने को नस्य कहते हैं। प्रायः नासिका, नेत्र, कण्ठ, कर्ण शिर आदि समीप के अंगों के रोगों में नस्य दिए जाते हैं। प्रतिश्याय, शिरःशूल में कट्फल, त्रिकटु, अर्कक्षीर भावित तण्डुल चूर्ण आदि के नस्य देने से छींको द्वारा नासा विरेचन हो जाता है। शिर की चिरस्थाई बातिक शूलों में षड्बिन्दु आदि बातहर बल्य तेलों का भी नस्य दिया जाता है। सूर्यावर्त में लवण का मक्खन के साथ कुंकुम, हरिद्रा आदि उष्ण घृत के साथ नस्य दिया जाता, हिक्का में लवणोदक मूर्छा में अमोनियां आदि तीव्र उत्तेजक औषधियों का नस्य दिया जाता है।

१६ सूचीवेध—एक छोटा जिसमें २C.C. और दूसरा जिसमें १०C.C. के लगभग द्रव आसकता है ऐसे दो प्रकार के सूचीवेधक यंत्र बाजार में मिलते हैं। त्वचा तथा मांस में छोटे सूचीवेधक तथा शिरा में वड़े सूचीवेधक से दवाई डाली जाती है। बाहु के पिछली भाग की त्वचा को बांये हाथ की अंगुली और अंगूठे से ऊपर उठाकर ऊपर उठी हुई त्वचा के नीचे के ढीले अवयव में दांयें हाथ से सूई प्रविष्ट करके दवाई डाल देनी चाहिये। मांस में सूचीवेध करना हो तो कूल्हे की पिछली मोटो मांस पेशियों में गहरी नीचे सूई प्रविष्ट करके दवाई डाल देनी चाहिये। शिरा में सीधी रक्त के अन्दर दवाई डालने के लिये बाहु पर पट्टी बांध, अग्रबाहु की खुली हुई किसी शिरा में तिरछी सुई इस प्रकार प्रविष्ट करें कि सुई का अगला सिरा शिरा की अगली दीवार को छेद कर शिरा की नाली में पहुँच जावे। सूई के शिरे के शिरा के अन्दर पहुँचते ही रक्त चढ़ कर सूचीवेधक में आजाता है उसी समय दवाई अन्दर डाल देनी चाहिये। दवाई को प्रविष्ट करते समय एक तो दवाई के साथ वायु सर्वथा नहीं होनी चाहिये। दूसरे सूचीवेधक को पहले जल में उबाल लेना चाहिये। तीसरे रोगी की त्वचा और चिकित्सक के हाथ सर्वथा जीवाणु हीन कर लेने चाहिये।

१७ धूमपान—औषधियों के धूम पिलाने को धूमपान कहते हैं। याने कि १ इंच सींख के चारों ओर औषधी के सूक्ष्म कल्क का लेप कर सुखा कर चिलम के मुहं में रख ऊपर से कोयला डाल अथवा औषधी के अधकूट चूर्ण की बीड़ी सी बना या लाल कोयलों पर रख कर नड़ी द्वारा धुआं पिलाया जाता है। उदाहरणतः-प्रतिश्याय में हरिद्रा चूर्ण, श्वास रोग में हरिताल, मनः शिला, धत्तूरपत्र, वासा पत्र, नवसार दिये जाते हैं।

१८ धूपन—धुंआ देने को धूपन कहते हैं जैसे रोगी गृह में निम्बपत्र, राल गुग्गुलु आदि जीवाणु हरद्रव्यों का धूपन तथा फिरंग रोगमें १०-१५ ग्रेन रस कर्पूर थोड़े से जल में डाल हल की सी आग पर रख कर उसका धुंआ रोगी के शरीर पर दिया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औषधियों के भिन्न २ वर्ग।

वातहर औषधियें—मुख्यतः देवदारु, कुष्ट, अगर तगर, जटामांसी, दशमूल, अष्ठवर्ग, शतावरी, वला, विदारी, वृद्धदारु, पुनर्नवा, एरंडमूल तेल तथा अन्य बल्यस्निग्ध उष्ण द्रव्य।

पित्तहर औषधियें—मुख्यतः चन्दन, उशीर, नेत्र-बाला उत्पल, दूर्वा, मुस्ता, धान्यक, त्रिफला मृद्वीका, मधुयष्टी, शतावरी, गुडूची, कटुकी आदि तिक्तशीत औषधियां, तृणपंचमूल (कुश काश, नल, दर्भ, इक्षु) वंशलोचन, सूक्ष्म एला, सितोपला, न्यग्रोध, अर्जुन, लोध्र, पाठा इत्यादि।

कफहर औषधियें—मुख्यतः त्रिकटु, पंचकोल, पुष्करमूल, कुष्ट, मदन, गुडूची, पटोल, कटुकी, शठी, त्रिफला, निम्ब, अजमोदा, शतपुष्पा, हरिद्रा, कुटज; इन्द्रयव, क्षार, मधु तथा उष्ण रूक्ष द्रव्य।

दन्त शोधक औषधियें—दंत शोधन के लिये मञ्जन प्रायः खटिका सेलखड़ी, या भल्लातक, सुपारी, बबूलत्वक्, माजूफल आदि ग्राही औषधियों के कोयले के सूक्ष्म चूर्ण से बनाये जाते हैं। "दन्त जीवाणु हरण" के लिये और "मुख की दुर्गंधि" हटानेके लिये मञ्जनों में टंकण, कर्पूर, अजमोदा, पोदीना, सफेदा, लवंग आदि के दुर्गंधित तेल मिलाये जाते हैं दुष्ट दंत निकाल देने चाहिये। "दंत मांस शोथ" हटाने के लिये मंजनोंमें ग्राही औषधियां जैसे माजूफल, खदिरसार, स्फटिकी। सुपारी या कुष्ट लवंग, मरिच आदि शोथहर द्रव्य डाले जाते हैं। "दंत कम्प" हटाने के लिये भल्लातक के कोयलों का सूक्ष्म चूर्ण बकुलत्वक् चूर्ण या तिल तेल और लाक्षादि तैलके गंडूप दिये जाते हैं। "दंत शूल" दांत के अंदर छिद्र होकर उसमें सड़ान्द उत्पन्न होकर होती है इसके लिये दांत में हिंगु, कर्पूर, अजमोदासत्व, अहिफेन या अजमोदा, पोदीना, क्लोरोफार्म आदि में भीगा हुआ फोया रखते या कंटकारी कषाय के गंडूष या कंटकारी धूम दिया जाता है।

पिपासा हर औषधियें—मुख तथा आमाशय में पित्त के प्रकोप से अति पिपासा हो तो मुख में मृद्वीका, आलूबुखारा, छुहारा, रक्खे जाते, चंदन उशीर, नेत्र बाला, धान्यक, मुस्ता आदि के शीत फांट में मिश्री डालकर पिलाते या इनके पानक दिये जाते हैं। वटजटा, लाजा, मुस्ता, नीलोत्पल आदि शीत द्रव्यों में मधु से गोली बना मुख में रक्खी जाती है

दीपन औषधियें—आमाशय की अन्दर की झिल्ली को उत्तेजित कर आमाशय रसको बढ़ाने वाली औषधियां दीपन कहाती हैं। जैसे त्रिकटु, पंचकोल, चतुर्जातक, अजमोदा, शतपुष्पा, जीरक, मधुरिका, जातिफल, लवंग, बचा कुष्ट बिडंग, शठी, पोदीना मद्य आदि।

पाचन औषधियें—आमाशय रस को उत्तेजित तो न करने वाली परंतु पाचने में सहायक औषधियां पाचन कहातीं हैं। जैसे भोजन के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उपरान्त पपीता पपीते का सुखाकर चूर्ण किया हुआ दूध, जम्बीर आदि अम्ल, लवणाम्ल पैप्सीन।

अम्लपित्त हर औषधियें—यदि भोजन भली प्रकार जीर्ण न होकर आमाशय में विदग्ध होता रहे तो कई अम्ल उत्पन्न हो जाते हैं जिससे आमाशय की झिल्ली पित्त के प्रकुपित होने से सूज जाती है। विशेषतः भोजन के पीछे आमशय, हृदय प्रदेश में जलन होती, अम्लोद्गार आते, हलकी शूल और पिपासा लगती है। प्रातः काल त्रिफला या हरीतकी के शीत कषायों का रेचन तथा अन्य तिक्त पित्तहर द्रव्य जैसे गुडूची, पटोल, किरात तिक्ता, कटुकी, धान्यक, द्राक्षा, मधुयष्टी के कषाय या योग कूष्मांड, आमलकी, मंडूर, लोहभस्म अभ्रक आदि के योग दिये जाते हैं। भोजन के दो तीन घंटे पीछे क्षार शीत जलसे दिये जाते हैं।

आमाशय आंत्रशूलहर औषधियें—भोजन के जीर्ण न होने से आमाशम आंतों में वात नाड़ियोंके प्रकोपसे उद्वर्त उत्पन्न होकर शूल होती है। इस के लिये वस्ति, पेट पर स्वेद तथा एरण्ड तेल, हरीतकी द्वारा रेचन, तथा हिंगु कर्पूर, पोदीना, अजमोदा, शतपुष्पा, मधुरिका लशुनआदि दीपक द्रव्य, धत्तूर, विजया, पारसीकय यवानिका, अहिफेन क्लोरोफार्मआदि उद्वर्त हरद्रव्य दें। यदि भोजन के दो घंटे पीछे आमाशय में अम्लों के उत्पन्न हो जाने से पित्त प्रकोप जन्य मन्द २ शूल हो तो उपरोक्त अम्ल पित्त हर औषधियें दें। भोजन के घंटा दो घंटा पीछे लवण, क्षार, शंख, शम्बूक की भस्म दें।

आध्मानहर औषधियें—भोजन जीर्ण न हो तो आमाशय और आंतों में कई प्रकार की अपक्व भोजन से उत्पन्न हुई गैसों के भर जाने से भोजन के एक दो घंटा पीछे पेट भारी हो जाता है। इसके लिये भोजन के पीछे अम्ल उपरोक्त दीपक द्रव्य, टंकण आदिके योग दिये जाते. हरीतकी दिनमें कई बार दी जाती है।

वमनहर औषधियें—आमाशयमें किसी क्षोभक द्रव्य के पहुँच जानेसे वमन होता है यदि वह बाहर आना चाहता हो तो वमन से निकाल देना चाहिये। अन्यथा शीतद्रव्य जैसे चन्दन, उशीर मुस्ता, धान्यक आदि शीत कषाय में मिश्री डालकर या सूक्ष्मएला, आमलकी, द्राक्षा, नेत्रवाला, पर्पट, त्रिफला आदि का शीत कषाय या फाण्ड थोड़ा थोड़ा पिलावे। मयूर पिच्छा भस्म शहद से चटावे, बरफ मुख में रखे। वमन तीव्र हो तो अहिफेन दें या मोर्फीन का सूचीवेध दें।

वामक औषधियें—वचा, मदनफल (आधे से १ तोला), राजिका (२-८ माशा) तुत्थ ४-४ यव कई बार) स्फटिकी (३० से ६० यव) लवण जल इपिकाक (२० से ६० यव)।

ग्रहणी शोथहर औषधियें—ग्रहणी आशय के अन्दर चिरस्थायी कफ वा पित्त जन्य शोथ हो जाती है जिससे भोजन का परिपाक नहीं होता। भोजन के १ घंटा पीछे बेचैनी आरंभ होती, दिन में विशेषतः मध्याह्न तक दो तीन बार दुर्गन्धित अतिसार होते हैं। इसके लिये पंचकोल आदि दीपक द्रव्य हरीतकी, कुटजबिल्व, सर्जक्षार यवक्षार, कुटजक्षार, शंखभस्म रसपर्पटी, ताम्रपर्पटी आदि दी जाती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रेचक औषधियें—यकृत् से पित्त को अधिक मात्रा में निकालने वाले 'पित्त रेचक, द्रव्य निम्न हैं। हरीतकी, त्रिफला, कटुकी, त्रिवृत्, पीतमूली, घृत कुमारी, रस कर्पूर। 'जलीय विरेचक निम्न हैं। दन्तीमूल, दन्तीबीज, ऐन्द्रीफल और मूल कम्पिल्ल, स्नुहीक्षीर भावित कम्पिल्ल, स्नुहीमूल तथा क्षीर, सोडियम तथा मैग्निशियम के सल्फेट। 'लघुमल सुँसक या सुख विरेचक निम्न हैं। आरग्वध मज्जा, एरण्डतैल, द्राक्षा, त्रिफला, वातादितेल अंजीर, कारस्कर।

यकृत प्लीहा शोधक औषधियें—यकृत् तथा प्लीहा से पित्त रूप मलों को निकालने वाले द्रव्य ये हैं। विरेचक द्रव्यतथा पंच पित्त, यकृत-प्लीहा शोधक होते हैं। किरात तिक्ता, महातिक्ता, गुडूची, पटोल, सिनकोना आदि तिक्त द्रव्य रेचक न होने पर भी यकृत प्लीहा, शोधक होते हैं। अम्ल और क्षार यकृत प्लीहा रोगों केलिये हितकर है जैसे जम्बीर, बीजपूर आदि के अम्ल, लवणाम्ल, नत्रिकाम्ल, शंखद्राव, गोमूत्र तथा सर्जक्षार, यवक्षार, अर्क, अपामार्ग आदि के क्षार और नवसार। हरीतकी लोह और शिलाजतु का कुछ काल तक सेवन कराया जाता है। रक्तमोक्षण भी लाभदायक है।

अतिसार हर औषधियें—आंतों में क्षोभक द्रव्यों के पहुँच जाने या उत्पन्न हो जानेसे शूल और अतिसार हो जाते है। प्रथम कोई विरेचन देकर और पाचक द्रव्य देकर फिर ग्राही द्रव्य देने चाहिये। 'ग्राही द्रव्य' ये हैं। कर्कटशृङ्गी, कट्फल, खदिरसार, दाड़िमफल त्वक्, मोचरस, लाक्षा, बब्बूलत्वक्, जम्बूत्वक्, कुटज इन्द्रयव, लोध्र, जातिफल, पूगीफल, माजूफल बीजक, हरीतकी, बिभीतकी, हलकागंधकाम्ल, अहिफेन, यशद, बिस्मथ, शंख, शुक्ति, बराट इत्यादि। 'शीतपित्तहर और शामक औषधियां' भी अतिसार हर हैं। जैसे श्वेतजीरक, धान्यक; मुस्ता, चंदन, नेत्रबाला, पाठा, अतिविषा, धातकी, तण्डुलोदक। अतिसार में होने वाले मरोड़ हटाने वाले, 'उद्वर्तहर द्रव्य' ये हैं। कर्पूर, धत्तूर, बिजयाबीज, अहिफेन, सुधाजल। 'रक्तातिसारहर' द्रव्य येहैं। मोचरस, लाक्षा, मधुयष्टी, बबूल, निर्यास तथा अन्य शीतपित्तहर द्रव्य। जब मरोड़ के साथ सफेद आंव आती हो तो 'प्रवाहिकाहर द्रव्य' जो ग्राही प्रलेपक और शीत हों देते हैं। जैसे हरीतकी, बालबिल्व, कुटज, बदरीपत्र कल्क, ईसबगोलबीज, त्वक्, एरण्ड तेल घोल थोड़े थोड़े समय के पीछे थोड़ी २ मात्रा में दें। अथवा सोडियम और मैग्निशियम के सल्फेट १-१ ड्राम की मात्रा में जब तक आंव न निकल जावे प्रति घंटे दें। फिर ४ या ५ घंटे के अन्तर से दें। ईसबगोल त्वक् जल को छोटी पिचकारी से गुदा में भी देते हैं। प्रारम्भिक आमातिसार में लशुन, त्रिकटु आदि दीपक द्रव्य दें।

आंत्रकृमिहर औषधियें—कद्दूके बीज के समान बने खण्डों वाले चपटे, कई फीट लम्बे छोटी आंतों में रहने वाले व्रधन कृमियों के लिये विडंग चूर्ण (४ से १६ माशे), कम्पिल्ल चूर्ण (४ से ८ माशे), दाडिममूलत्वक् कषाय, गण्डूपद के आकार के छोटी आंतों में रहने

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वाले गोल कृमियों के लिये पलाश बीज चूर्ण (१५ से ६० यव), कृमिघ्नी (सैन्टोनीन), ग्रहणी आशय तथा छोटी आंतों के ऊपर के भाग में बीज के अंकुर के समान कुछ टेढ़े, आधे लम्बे, श्वेत अंकुर कृमियों के लिये, यवानिका, अजमोदा (२ से ४ ड्राम), नमक के साथ या अजमोदा सत १५ से ३० ग्रेन बताशे में डालकर तथा गुदा और मलाशय में चौथाई से आधे लम्बे, मल में निकलने वाले श्वेत से गुद कृमियों के लिये बिरेचक औषधि देकर, निम्ब, महानिम्ब, किराततिक्ता, काशिया, लवण जल आदि की वस्ति दें। पहले बिरेचन देकर फिर ये कृमिहर द्रव्य दिए जाते हैं। इनके देने के पीछे फिर बिरेचन दिया जाता है इस प्रकार जब तक सब कृमि निकल न जावें इस प्रक्रिया को जारी रखते हैं। तिक्त द्रव्य सभी कृमियोंके लिए लाभदायक हैं।

अर्शोहर औषधियें—वातार्शस् के लिए उष्ण, दीपक, गुदशोथ हर औषधियां जैसे पंचकोल, सूरण, भल्लातक आदि दिए जाते हैं। हलकी रेचक, यकृत् शोधक औषधियां जैसे त्रिफला या हरीकी, तिल, द्राक्षा, त्रिवृत्त, दन्तीमूल, कस्कारा, शिलाजतु दिए जाते हैं। रसाञ्जन और मूलक भी गुदशोथहर हैं। अपामार्ग पंचांग तथा मृद्धीका दोनों मिलाकर अकुरों की शौथ हटाने के लिए दिए जाते हैं। सर्षप तैल तथा शोथहर औषधियों के तेल या लेप लगाए जाते हैं। रक्तार्शस् के लिए रक्त पित्त हर औषधियां जैसे मोचरस, लाक्षा, कुटज, हरीतकी, शुक्ति, प्रवाल, वंशलोचन, मक्खन, नागकेशर आदि दें।

प्रतिश्यायहर औषधियें—नासिका के अन्दर की शोथ हटानेके लिए त्रिकटु, त्रिजातक, पंचकोल चातुर्भद्र आदि गरम जल या दूध से दें। पांव गरम जल में रखें। मस्तक पर गरम लेप या स्वेद करें। जब स्राव बहने लगे तो त्रिकटु, कटफल, अपामार्गबीज, शिग्रुबीज, बिडंग, अमोनिया आदि के नस्य दें। जीर्ण प्रतिश्याय हो तो दशमूल, अष्टवर्ग तथा बल्य औषधियां दें। षड्बिंदु आदि का भी नस्य दें। नासिका से पूतिस्राव हो तो लवण, टंकण, हरिद्रा, रसांजन, निम्ब; करञ्ज, तुलसी, क्षार आदि से साधित तेलों का नस्य दें।

नासा रक्त स्राव हर औषधियें—दूर्वा स्वरस, लाक्षा जल, दाड़िमपुष्परस, मोचरस, लोध्र आदि शीतपित्तहर द्रव्यों का नस्य दें। मस्तक पर चंदन, आमलकी आदि का लेप करें। घृत में कर्पूर मिलाकर नस्य दें।

गल तथा कंठ शोथहर औषधियें—बिरेचन, गले बाहर स्वेद गले के अंदर वाष्प स्वेद और पांव पर गरम जल का स्वेद दें। वत्सनाभ का कोई योग दें। गले की शोथ हटाने के लिये ग्राही औषधियों के गंडूष दें या गोलियां जैसे खदिरसार बिभीतकी, दाडिमफल त्वक्, सुपारी, कट्फल, शीतलचीनी। श्लेष्मा भी गले में हो तो उस के हटाने के लिये इनके साथ या प्रथक् वचा, पंचकोल, तेजबल, टंकण, यवक्षार, लवण दें। शठी या मधुयष्टीको थोड़ी मिश्री के साथ मुख में रखा जाता है। दशमूल के भी योग दिये जाते हैं।

मुखपाक हर औषधियें—बिरेचन देकर रसाञ्जन टंकण, त्रिफला, पंचबल्कल, पञ्चपल्लव, मधु-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यष्टी, गुडूची, लोध्र, निम्ब, जातिफल, नीलोत्पल आदि किसी फ़ाण्ड या कषाय के गण्डूष दें या इनकी गोलियां बना मुख में रक्खें। पोटासियम क्लोरेट के गण्डूष तथा अंतः प्रयोग लाभ दायक हैं। तुत्थ द्राव या रजत नत्रितद्राव (१ औंस जल में ३० से ६० यव) व्रणों पर लगाये जाते हैं।

कासहर औषधियें—कण्ठ तथा श्वास नालियोंकी शोथ हटाने के लिये उष्ण वात कफ हर औषधियां दी जाती हैं। जैसे-पुष्करमूल, कुष्ट, शठी, त्रिकटु, जायफल, जावित्री, लवंग, केशर, कस्तूरी, पंचकोल आदि। प्रारम्भिक शोथ औरस्राव को सुखाने के लिये, धत्तूर, अहिफेन वत्सनाभ दिये जाते हैं। स्राव उत्पन्न होजाने पर श्लेष्मा के निर्हरण के लिये यवक्षार, नवसार, पुष्करमूल, कुष्ट, कारस्कर, पोटाशियम आयोडाइड तथा अन्य उत्तेजक द्रव्य दिये जाते हैं। यदि गले तथा श्वास नालियों में पित्त प्रकोपजन्य शोथ हो जैसी क्षय ज्वर में होती है तो वासा, द्राक्षा, बंशलोचन, मधुयष्टी, सितोपला, आदि पित्त कास हर द्रव्य दिये जाते हैं। गले की शोथ के कारण सूखी खांसी हो तो उपरोक्त गल शोथ हर गोलियां मुख में रखै।

श्वास रोगहर औषधियें—श्वास नालियों के वात प्रकोपजन्य उद्वर्त और कफ स्रंसन के लिये पुष्करमूल, शठी, वासा, क्षार, धत्तूर, दशमूल, हिंगु, विजया, ताम्रभस्म, सोमल दिये जाते, इन्हींमें से हरिताल, धत्तूर, वासा, जटामासी-शोरक, हिंगु, हरिद्रा, गुग्गुलु इत्यादि का धूम, एट्रोपीन या मोर्फीनके सूचीवेध, दिये जाते हैं।

हिक्काहर औषधियें—वक्ष और उदर के मध्यस्थ श्वास की पेशी के वात जन्य उद्वर्त के हटाने के लिये एरण्ड तेल द्वारा रेचन, कोष्ठ और वक्षस् के संधि प्रदेश पर वात हर तेलों की मालिश तथा स्वेद, कोलास्थि मज्जा, गैरिक त्रिकटु, पुष्करमूल, शठी, शिखि पिच्छ भस्म दिये जाते, सैन्धव जल का नस्य, हिंगु, मनःशिला, हरिद्रा, आदि उपरोक्त द्रव्यों का धूमदें

उरः क्षय हर औषधियें—उरः क्षयके लिये वल्य, पित्त हर द्रव्य जैसे अष्टवर्ग, वला, अश्वगंधा, मछली का तेल, दूध से निकला मक्खन, मधुयष्टी, द्राक्षा, दशमूल, वासा, आमलकी, लाक्षा, प्रवाल, शुक्ति, मुक्ता, सीरप कैलिशयम हाइपो फोस्फाइड, सोमल, लोह, अभ्रक, सुवर्ण, खर्पर दें।

रक्तवर्धक औषधियें—रक्तके रक्ताणुओं और रंजक द्रव्य को बढ़ाने के लिये लोह, मण्डूर, सोमल तथा शरीरको नीरोग करने वाले, यकृत, प्लीहा का शोधन करने वाले द्रव्य, खुलीहवा लघुपौष्टिक भोजन व्यायाम आदि उपयोगी हैं।

रक्तपित्तहर औषधियें—तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार, लवण भोजन और अधिक गर्मी से रक्त में पित्त का प्रकोप होकर शरीर के किसी मार्ग से रक्त निकलने लगता है। इसके लिये बिरेचन देकर आमलकी, मधुयष्टी, धान्यक, लोध्र, चन्दन, उशीर, मुस्ता, नेत्रबाला, वासा शतावरी, अर्जुन, कुटज, मोचरस, दूर्वास्वरस, उत्पल, अशोक, मंजिष्ठा, पञ्चक्षीरी वृक्षत्वक्, सितोपला गैरिक, शुक्ति, मुक्ता, शंख, कैलिशयम क्लोराइड तथा लैक्टेट आदि शीत पित्तहर औषधियां दें। रक्त रोधन के लिये शीत ग्राही

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औषधियां जैसे दूर्वा स्वरस, मोचरस, खदिरसार, माजूफल, स्फटिका, सीसक, यशद और लोह के ग्राही प्रयोग, शीत परिषेक तथा एड्रिनलीन क्लोराइड का घोल (१०० में १) आदि लगाये जाते हैं।

रक्तशोधक औधियें—रक्त में विद्यमान विषों को निकालने के लिये विरेचन, रक्तमोक्षण, अजीर्ण तथा यकृत प्लीहा के रोगों का निवारण, अम्ल उष्ण, लवण, क्षाररस भोजन का परित्याग करके रक्तशोधन द्रव्य जैसे कटुकी, किराततिक्ता, महातिक्ता, पटोल, निम्ब, रुद्रपर्णी, पर्पटक, कुटज, गुडूची, त्रिफला, दारुहल्दी, हरिद्रा, खदिरसार, अतिविषा, बचा, धन्वयास, सारिवा, मंजिष्ठा, भल्लातक, बाकुची, तुवरक, विडंग, गन्धक, ताम्र, सोमल दिये जाते तथा जीवाणुहर, शोथहर त्वच्यद्रव्य जैसे चक्रमर्द, सर्षप, करंजबीज, आरग्वधपत्र, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, बाकुची, कुष्ट, स्वर्णक्षीरी, करबीर, मरिच, जीरक, सिंदूर, मृद्दार शृंग, पारद, अर्कदुग्ध गंधक आदि के लेप या तेल लगाये जाते हैं।

शोथहर औषधियां—किसी स्थान की रक्त वाहनियों में या समीप के अवयवों में अधिक रक्त संचित होने से शोथ हो जाती है। इस रक्त को वहां से हटाने के लिये त्वचा पर स्वेदन दिया जाता या रक्त निकाल दिया जाता या शोथहर तथा स्फोटक औषधियां लगाई जाती है जिससे रक्त नीचे से हटकर त्वचा की तरफ आ जाता है और शोथ हट जाती है। संधिशोथ में संधियों पर फुफ्फुस और फुफ्फुसावरण की शोथ के लिये छाती पर शोथहर औषधियों के लेप या उपनाह बांधे जाते हैं। क्षोभक द्रव्य उष्ण वीर्य जैसे अजमोदा, त्वक्, लवंग, देवदारु आदि के तेल, राजिका, कर्पूर, अश्वगन्धा, हरिद्रा, अतसीबीज, शिग्रुबीज, सर्षप, कुष्ट, अमोनिया, आयोडीन आदि हैं। तथा स्फोटक औषधियां, राजिका, चित्रकमूल चूर्ण, दन्तीबीज, कन्थेरेडीन आदि हैं।

हृद्य औषधियें—हृदय की तीव्र और निर्बल गति को मन्द और बलवान बनाने वाली औषधियां हृद्य कहलाती हैं, पित्तशामक बल्य और वातहर द्रव्य प्रायः हृद्य ही हैं। आमलकी, शतावरी, अर्जुन, मुक्ता, प्रवाल, शुक्ति, रजत, अभ्रक, स्वर्ण, मधुयष्टी आदि पित्तशामक तथा दशमूल, बाला, शिलाजतु, लोह आदि बल्य और बनपलाण्डु, वत्सनाभ, धत्तूर, डिजटेलिस आदि अपने प्रभाव से हृद्य हैं। उत्तेजक औषधियां जैसे कर्पूर, कस्तूरी, कारस्कर, चाय, मद्य अति निर्बल हृदय को उत्तेजित करने के लिये दी जाती हैं।

मूत्रल औषधियें—गोक्षुर, पाषाणभेद, पञ्चतृणमूल, (दर्भ, कुश, काश, शर, इक्षु) अपामार्ग, पुनर्नवा, कर्कटी, त्रपुष, दशांगुल के बीज, सूक्ष्म एला, यवक्षार, शोरक, शिलाजतु अमोनियम साइट्रेट तथा एसिटेट, लवणोदक की वस्ति, तथा वृक्क प्रदेश पर स्वेद, मूत्रमार्ग में कर्पूर का खण्ड डाल रखें तो कुछ काल में रुका हुआ मूत्र आ जाता है "मूत्रकृच्छ्र" हो तो इनके अतिरिक्त शीत औषधियां शतावरी, आमलकी, सितोपला, शीतलचीनी, चन्दन आदि दिये जाते हैं। "प्रमेह जन्य मूत्रकृच्छ्र" के लिये मूत्र दुर्गंध हटाने वाले द्रव्य

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जैसे टंकरण, टंकणाम्ल, सरलद्राव, शीतलचीनी, चन्दन तैल, यूरैट्रोपीन आदि भी दिये जाते हैं। तुत्थद्राव, स्फटिका जल, त्रिफला जल, पोटासियम परमैंगनेट आदि की उत्तरवस्ति दी जाती है। "प्रारम्भिक अश्मरी" के लिये अपामार्ग क्षार, यवक्षार शिलाजतु, वरुण त्वक दिये जाते हैं। 'मूत्रमार्ग शोथ और शूल" हटाने के लिये क्षारोंके अतिरिक्त धत्तूर, बैलेडोना पारसीक्य, यवानी मुख द्वारा और धत्तूर, अहिफेन आदि का लेप तथा स्वेद दिये जाते हैं। "वृक्कशूल भी सूक्ष्म पथरियों के कारण होती है। वृक्क प्रदेश पर स्वेद तथा मौर्फीन का सूचीवेध देकर क्षार और शिलाजतु निरंतर कुछ काल दें।

मूत्रसंग्राही औषधियें—मूत्र कम करनेके लिये जम्बूबीज, उदुम्बर फल चूर्ण, वट, अश्वत्थ त्वक्, तिल, नाग, यशद, वंग अभ्रक दिये जाते हैं। मूत्र में खाण्ड कम करने के लिये जम्बूबीज, अहिफेन, शिलाजतु, हरिद्रा, दिये जाते, जौ का भोजन, त्रिफला का सेवन और शारीरिक श्रम करवाया जाता है। इन्सुलिन का तत्काल ही प्रभाव होता पर अस्थाई होता है।

स्वेदक औषधियें—गरम जल के पिलाने, वाष्प स्वेद देने, त्रिकटु मधुरिका आदि उष्ण गुण औषधियों के कषाय, फाण्ट अर्क आदि के पिलाने से त्वचा की रक्त वहिनिया फैल जाती है और स्वेद ग्रन्थियों में अधिक रक्त पहुँचने से स्वेद अधिक उत्पन्न होता है। वत्सनाभ, शोरक, अमोनिया और पोटाशियम के साइट्रेट तथा ऐसीटेट और एस्पिरीन भी स्वेदक है।

स्वेदहर औषधियें—निर्बलता के कारण हाथ पांव के अति स्वेद तथा क्षय रोग में रात्रि स्वेद हटाने के लिये धत्तूर, बेलेडोना, या ऐट्रोपीन का सूचीवेध स्वेद ग्रन्थियों की क्रिया को मन्द कर स्वेद बन्द कर देते हैं। ग्राही शीत द्रव्यों के लेप से भी स्वेद कम होता है। खर्पर, यशद, प्रवाल शुक्ति स्वेद हर हैं।

त्वच्य औषधियें—रक्त शोधक द्रव्य त्वच्य होते हैं हरिद्रा, दारुहरिद्रा, कुष्ट, आरग्वध पत्र, कम्पिल्ल, तुत्थ, स्वर्णक्षीरी बीज तथा ग्राही द्रव्य जैसे सिंदूर, मृद्दारशृंग, खदिरसार, जीरक, यशद भस्म, रजत नत्रित तथा जीवाणु हर द्रव्य जैसे निम्ब, करंज, गन्धक, हरिताल टंकण, अरारोबा तथा सिरकाम्ल, निम्बूकाम्ल, गोमूत्र आदि अम्ल तथा लोह- सोमल, शिलाजतु, सारिवा, गुग्गुलु, भल्लातक, त्रिफला आदि रसायन द्रव्यत्वच्य हैं।

पलितहर औषधियें—भृंगराज, त्रिफला, मण्डूर नीलीपत्र, जवाकुसुम, ऐन्द्रीबीज के लेप तथा तेल, तथा त्रिफला और रसायन द्रव्यों का सेवन पलितहर है।

इन्द्रलुप्तहर औषधियें—उष्ण, स्थानिक उत्तेजक औषधियों के लगाने से स्थानिक रक्त संचार बढ़ता है जिससे बाल बढ़ते और गंज हटता है। करंज, करवीरमूल, चित्रकमूल, गुंजा, बृहती फल, भल्लातक, पुटदग्धहस्तिदन्त, कैंथेरेडीन के लेप या तेल लगाये जाते हैं।

केशहर औषधियें—हरताल को चार गुना क्षार के साथ मिलाकर लेप किया जाता है। हरतालकी अपेक्षा बेरियम सल्फाइड अधिक कामआता है

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्रणहर औषधियें—व्रण यदि स्वच्छ हो तो निम्ब स्वरस तथा लशुन कल्क या स्वरस मिला आटे की पुलटिस बनाकर बांधने से स्वच्छ हो जाता है। इसके बांधने से मुंह भी खुल जाता है यदि न खुले तो दारण के लिये पुलटिस में चित्रकमूल चूर्ण या क्षार डाल दें। मुख खुल जाने पर जीवाणु हर द्रव्यों के द्राव से धोकर प्रलेप लगाये जाते हैं। जैसे निम्ब निर्गुण्डी, करंज, तुत्थ, राल, रसकर्पूर, टंकण, दारुहरिद्रा या रसांजन दाहक रसकर्पूर आदि के कषाय द्राव या प्रलेप लगाए जाते हैं। राल कम्पिल्ल, तुत्थ, तथा शोधक ग्राही द्रव्य जैसे खदिर सार, त्रिफलामशी, पंचवल्कल चूर्ण आदि के लेप लगाए जाते हैं। चिरस्थायी व्रणों में त्रिफला और गुग्गुलु का अंतः प्रयोग करा या जाता है। निम्ब, लुबान, गुग्गुलु, राल आदि के धूम भी जीवाणुहर हैं। लवणजल, टंकणाम्लद्राव, कार्बोलि काम्ल. आयोडीन, क्लोरीन भी जीवाणुहर है। दग्ध व्रण के लिए असली या जैतून के तेल में सुधा जल मिला या ग्लीसरीन में चावल का आटा मिला या शतधौत घृत में बंशलोचन, रतनजोत, चन्दन, मधुयष्टी वटजटा, राल, दूर्वा स्वरस, गेरू, यवमशी, त्रिफलामशी कोईसा द्रव्य मिलाकर लगावें।

ज्वरहर औषधियें—स्वेदक, मूत्रल, और विरेचक द्रव्य, शीत जल की वस्ति, स्नान, वत्सनाभ के योग, ऐस्पिरीन, फिनेसिटीन के देने से ज्वर ढीला पड़ जाता हैं। बात ज्वर के लिये वत्सनाभ के किसी योग को दशमूल, पिप्पलीमूल, गुडूची, वला, द्राक्षा, सुराठी' शतपुष्पा आदि वातहर। पित्त ज्वरो में कटुकी, किराततिक्ता, मुस्ता, पर्पट, पटोल, उशीर, बालक, आमलकी, दुरालभा; अतिविषा, मधुयष्टी, गुडूची, आदि पित्तहर, कफ ज्वरों में पुष्करमूल, कुष्ट, त्रिकटु, पिप्पली मूल, सुराठी, यवानी, शुंठी, त्रिफला, मद्य आदि के अनुपान से देते हैं। विषमज्वर के लिये हरताल, मनः शिला, सोमल, करंज, पिप्पली, धत्तूरबीज, सिनकोना, कुटज क्विनीन दिये जाते हैं।

वल्यतथा वृंहण औषधियें-जो औषधियां बात नाड़ियों को बलवान कर शरीर में बल उत्पन्न करती है वल्य कहाती है बात के प्रकोपसे शरीर निर्बल होता है इसलिये बातहर औषधियां प्रायः बल्य होती हैं। जैसे माष, बला, अतिबला, महाबला, नागवला, शतावरी, वृद्धदारु, मछली का तेल, दशमूल, विदारी, दुग्ध, गोक्षुर, मूसली, अष्टवर्ग इनके अतिरिक्त रसायन द्रव्य जिनके देने से शरीर के तीनों दोष समावस्था में रहें और शरीर रोगों के आक्रमण से बचा रहे वल्य प्रयोजन से दी जाती हैं। जैसे त्रिफला, गुडूची, ब्राह्मी, अभ्रक, शिलाजतु, सुवर्ण रक्तवर्धक लोह, सोमल भी बल्य हैं।

शुक्रमेह हर औषधियें—मध्य आयु तक शुक्रमेह होना स्वभाविक सा है उसके लिये उष्णवीर्य भोजन रात्रि को मूत्राशय में मूत्र का संचय, गुदा में क्रिमिओं का रहना हानिकारक है। शीतवीर्य औषधियां जैसे त्रिफला, शीतलचीनी, चन्दन के योग तथा त्रिबंग, अभ्रक, प्रबाल, शुक्ति, मुक्ता आदि कैल्शियम के योग, मूसली, शतावरी आदि बल्य, बबूल, शाल्मली आदि के निर्यास दिये जाते हैं। शीर्षासन भी कराया जाता है। जननेन्द्रिय की निर्बलता को हटाने

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वाली औषधियां वाजीकरण कहाती है। प्रायः वातहर औषधियें जननेन्द्रिय की वात नाड़ियों की निर्बलता को हटाने के कारण दी जाती है वात नाड़ियों को उत्तेजित करने वाली औषधियां भी दी जाती हैं। शतावरी, कौंचबीज, कोकिलाक्ष, लघुशाल्मली मूल, मूषली, वला, अश्वगन्धा आदि उपरोक्त बल्यद्रव्य तथा केशर, कस्तूरी, जातिफल, जावित्री, बिजया, धत्तूर, कारस्कर (कुचला) कर्पूर, डेमियाना (Damiana) आदि उत्तेजक द्रव्य तथा सोमल, ताम्र, अभ्रक, सुवर्ण आदि सर्वांग बल्य द्रव्य दिये जाते हैं। शिश्नेन्द्रिय के अन्दर की शोथ रक्तसंचय हटाने के लिये कई उष्ण, तीक्ष्ण जैसे करवीर मूल, सोमल, तेलिनी, मक्खी, इन्द्रगोपा, जावित्री, सिंह, शूकर, सांडा आदि की वसा आदि के लेप या पलस्तर भी लगाये जाते हैं। शीत जल में शिश्न के अग्रचर्म का स्नान जंघा तथा मेरुदण्ड के व्यायाम भी पुंस्त्व शक्ति को उत्पन्न करते हैं।

आर्तव प्रवर्तक औषधियें—हिंगु, बोल (विजयसार) कुमारीसार, टंकण, गाजरबीज दिये जाते हैं तथा पिप्पलीमूल, मदन, दन्तीमूल, आदि उष्ण क्षोभक औषधियों के पिचु योनि मार्ग में रखे जाते हैं। कारस्कर आदि उत्तेजक द्रव्य भी दिये जाते हैं। गरम जल का नितम्ब स्नान, वस्ति प्रदेश पर स्वेद देने से आर्तव आता है। जो औषधियां गर्भ को बाहर निकालने में सहायक हों वे स्रावक कहाती हैं जैसे कार्पासी मूल त्वक, टंकण, अर्गट, पिट्यूटीन तथा लांगलीमूल, अपामार्ग, मूलका नाभि, वस्ति, तथा भग पर लेप करें। अमरापातन के लिये पंचकोल, जीरक, हिंगु, आदि उष्ण दीपक द्रव्य दिये जाते हैं।

प्रदरहर औषधें—अहिफेन, अशोक, लोध्र, रसांजन, कुटज, शंख, बराट, खर्पर, नाग, वङ्ग तथा अन्य सब ही रक्त पित्तहर औषधियां गर्भाशयके रक्त स्रावको बन्द करती है। योनि मार्ग के श्वेत से स्राव को बन्द करने के लिये त्रिवंग, नागकेशर, मधुयष्टी आदि उपरोक्त द्रव्य, शिलाजतु, लोह आदि बल्य द्रव्य दिए जाते और योनि मार्ग में शीत और ग्राही द्रव्यों की पोटली या पिचु रक्खे जाते हैं। गर्भ स्राव हटाने के लिये आराम से लेटे रहना तथा चन्दन, शतावरी, नीलोत्पल, कमलबीज, आमलकी, खदिरसार, धान्यक आदि शीत औषधें देनी चाहिये।

स्तन्य प्रवर्तक औषधें—क्षीरपान, शतावरी, विदारी, चावल, स्तन्य बढ़ाते हैं। स्तन्य शोधन के लिये स्त्री को गुडूची, निम्ब, पटोल, अनन्तमूल, चन्दन आदि रक्त शोधक द्रव्य दिये जाते हैं। स्तन्य रोध के लिये स्तनों पर धत्तूर वैलेडौना आदिके लेप दिये जाते हैं या यन्त्र से दूध निकाल लिया जाता है। अनेक औषधियां माता के स्तन्य द्वारा बालक में चली जाती हैं जैसे स्वर्णपत्री, एरण्डतैल, रेबन्दचीनी, गंधक, लोह, पारद, सोमल आदि यदि माता हींग, लहशुन या प्याज खावे तो स्तन में दुर्गन्ध आती है। दूध पीने वाले बच्चों को दवाई देनी हो तो माता को ही दवाई दी जा सकती है। सूतिका रोग हरण के लिये दशमूल, जीरक, शुंठी आदि उष्ण दीपक द्रव्य दें।

शूलहर औषधियें—स्थानिक शूल हटाने के लिये

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

धत्तूर, वत्सनाभ, कर्पूर, अजमोदा तेल, बैलेडोना, पारसीकयवानी, अहिफेन, विजया, कुष्ठ, आदि के तेल या लेप तथा स्फोटक औषधियां लगाई जाती हैं। शरीर के किसी अवयव का तीव्र शूल हटाने के लिये मुख द्वारा बैलेडोना, धत्तूर, अहिफेन, विजया, पारसीकयवानी, मृगशृंग भस्म, पेइरीन, फिनेसिटीन दी जाती और मौर्फीन का सूचीवेध दिया जाता है।

संज्ञाहर औषधियें—स्थानिक संज्ञाहरण के लिये कोकेन, नोवोकेन के सूचीवेध तथा सर्वांग संज्ञाहरण के लिए क्लोरोफार्म सुंघाया जाता है।

मेदोहर औषधियें—लोह, शिलाजतु, मधु, यव, त्रिफला, तथा व्यायाम, परिश्रम, उद्वर्तन से बढ़ी हुई मेदा घटती है।

कर्णरोगहर औषधियें-कर्णशोथ और शूल के लिए स्वेद, अहिफेन, धत्तूर, लशुन, आद्रक, शिग्रु, निर्गुण्डी के स्वरस, गोमूत्र आदि मूत्र इन के तेल कान में डाले जाते हैं। स्राव के सुखानेके लिये समुद्रफेन, टंकण, टंकणाम्ल डाले जाते तथा अपामार्ग क्षार आदि क्षारों के तेल तथा निर्गुण्डी, निम्ब, करंज, रसाञ्जन आदि जीवाणु, हर द्रव्यों के तेल कान में डाले जाते हैं।

नेत्ररोगहर औषधियें—नेत्र शोथ के लिये लंघन, रेचन, स्वेदन, रक्तावसेचन, स्फोटन के अतिरिक्त निम्ब और लोध्र के फाण्ट से धोते और ग्राही द्रव्य जैसे त्रिफला, मधुयष्टी, चन्दन, लोध्र, स्फटिकी, यशदगंधित, रजत नत्रित, इत्यादि के द्राव डाले जाते हैं। "शूल के लिये" अहिफेन द्राव, धत्तूर स्वरस, एट्रपीन, एसेरीन, डाले जाते हैं। "नेत्रव्रण के लिये" निम्ब टंकण, टंकणाम्ल, लवण, दाहक रसकर्पूर आदि जीवाणुहर द्रव्यों के द्राव से धोते हैं। पलकों के अंकुरों के लेखन के लिये तुत्थ, रसांजन, स्वर्णक्षीरी क्षीर (मधु या घृतके साथ) रजतनत्रित, पलकों के अन्दर लगाये जाते हैं। "नेत्रपुष्प हटाने के लिये" कर्पूर पारद के योग जैसे पीलाओक्सिद, रसकर्पूर, हिंगुल, शंखनाभि मनःशिला, समुद्रफेन, शंख, हस्ति, गौ, घोड़ा बकरी, शूकर आदि के दन्त अंडे का छिलका त्रिकटु, सैन्धव आदि के लेप और अंजन तथा बर्तियां आदिकाम आती हैं। "पुतली के फैलाने के लिये" धत्तूर, स्वरस, पारसीकयवानी स्वरस, एट्रापीन होमेट्रापीन के द्राव लगाए जाते हैं। 'पुतली को सिकोड़ने के लिए' एसेरीन डाली जाती है। पुराने नेत्ररोगों के लिये पित्तहर, यकृत शोधक, रक्तशोधक जैसे त्रिफला, पटोल, गुडूची, कटुकी, गंधक और बल्य द्रव्य जैसे शतावरी, अभ्रक, लोह, स्वर्ण आदि दिये जाते है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औषधि प्रकरण—दीपक वर्ग ।

१ शुंठी—नाम-हिन्दी—सोंठ। लैटिन Zingiber officinolis इंग्लिश Ginger

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र बोई जाती है। इसका काण्ड पत्रमय ३-४ फुट ऊंचा। मूल में आर्द्रक के कन्द लगते। पत्र ३"-४" लम्बा आगे नोकीला। पुष्प गुच्छ २"-३" लम्बा।

विश्लेषण—Gingerin नामक एक Oliorosin होता है जो इसमें मुख्य क्रिया शील तत्व है।

योग--शुण्ठ्यासव—शुण्ठी एक भाग को मद्यसार (६० %)=१० भागमें डालकर आसव बनावें 'मात्रा' आधा से २ ड्राम। 'रोग' मन्दाग्नि।

त्रिकटु चूर्ण—शुण्ठी, मरिच, पिप्पली समान २ मिलाकर चूर्ण करें। 'मात्रा' १० से ३० यव 'रोग' मन्दाग्नि, प्रतिश्याय, कास, कफरोग।

पंचकोल चूर्ण—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, शुण्ठी समान २ मिलाकर चूर्ण करें। 'मात्रा' १० से ३० यव, 'रोग' मन्दाग्नि बात-कफाजीर्ण, कफरोग।

पंचसम चूर्ण--शुण्ठी, हरीतकी, पिप्पली, त्रिवृत, सौवर्चल समान २ मिलाकर चूर्णकरें। 'मात्रा' १५ से ६० यव। 'रोग' विष्टम्भाजीर्ण आम-वात, बात कफ, अर्शस्। (शा०)

समशर्कर चूर्ण--एला, त्वक्, पत्र नागकेशर, मरिच, पिप्पली, शुण्ठी, शर्करा, सर्वतुल्य मिलाकर चूर्ण बनावें। 'मात्रा' १५ से ६० यव, 'रोग' मंदाग्नि कफरोग। (भै० र०)

रास्ना पंचक कषाय--शुण्ठी, गुडूची, एरण्डमूल, देवदारु, रास्ना समान २ लेकर कषाय करें। 'मात्रा' १ से ४ औंस। 'रोग' आमवात।

अजमोदादि चूर्ण या वटक—अजमोदा, पिप्पली, विडंग, मरिच, देवदारु, चित्रमूल, शतपुष्पा, पिप्पलीमूल, सैंधव प्रत्येक १ भाग शुंठी १०, वृद्धदारु १०, हरीतकी ५, भाग गुड़ सर्व तुल्य मिला कर चूर्ण या वटक बनावें। मात्रा—१५ से ६० यव। अनुपान—उष्ण जल। रोग—सन्धि शोथ, आमवात, गृध्रसी आदि वातशूल, मन्दाग्नि। (भै० र०)

सैन्धव आदि तैल—सैंधव ८, पिप्पली मूल ८, चित्रकमूल ८, शुण्ठी २० तोला, भल्लातक (संख्यामें) २, काञ्जिक ८ सेर, तैल २ सेर, तैल बनावे। रोग—आमवात, संधिशोथ, वातशूल। (चक्रदत्त)

सौभाग्य शुण्ठी—घृत ८, दूध ३२, खांड ५०, शुण्ठी ८, धान्यक ३, मधुरिका ५, विडंग १, कृष्णजीरक १, श्वेत जीरक १, त्रिकटु ३, मुस्ता १, चतुर्जातक ४ भाग दूधमें शुंठी चूर्ण पका कर, गाढ़ा कर, घृत में भर्जित खांड के बने पानक में दूसरी औषधियों के साथ मिलावें। मात्रा—आधा से १ तोला। रोग—प्रसूतिका के अजीर्ण जन्य उपद्रव तथा वात कफाजीर्ण, अर्शस्। इसमें शतावरी, मुषली, गोक्षुर प्रत्येक १ भाग हो तो यह बल्य भी है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शुण्ठयादि कषाय (चातुर्भद्र कषाय)— शुण्ठी, मुस्ता, अतिबिषा, गुडूची समान २ मिलाकर कषाय करें। मात्रा—१ से ४ औंस रोग अम्लपित्त, बिदग्धाजीर्ण, मन्दाग्नि।

गुण—रस कटु गुण-लघु स्निग्ध, वीर्य-उष्ण, पाक मधुर, दोष बात, कफ हर।

प्रभाव—यह उत्तम अग्निदीपक है। स्थानिक तथा सर्वांग के लिये उत्तेजक है।

उपयोग—हाथ पांव ठण्डे पड़ जांय तो इसकाचूर्ण मलने से फिर उनमें रक्त संचार हो आता है। इसका बिशेष उपयोग मन्दाग्नि से होने वाले उपद्रवों के लिये होता है। भोजन से पहिले शुण्ठी चूर्ण या इसके अन्य चूर्ण लवण, सर्ज क्षार के साथ मिलाकर लिए जांय तो अग्नि दीप्त होती है। आमाजीर्ण और बिष्टम्भाजीर्ण में इसके योग प्रातः सायं भोजन से पहिले दिये जाते हैं। भोजन के साथ आद्रक, शुण्ठी, के आचार मुरब्बे आदि खिलाते हैं। काश, प्रतिश्याय गलशोथ आदि कफ रोग में शुण्ठी के योग गरम जल या मधु से दिये जाते हैं। प्रतिश्याय आमबात तथा अन्य बात के उपद्रवों में शुण्ठी कषाय पृथक् या सर्जक्षार, यवक्षार आदि के साथ मिलाकर पिला दिया जाय तो रोगी को आराम मालूम होता है। यकृत वृद्धि के कारण उत्पन्न हुये जलोदर श्वयथुः रोग में पिप्पली के समान शुण्ठी का भी प्रयोग किया जाता है, प्रथमदिन रोगीको ५ तो आर्द्रक स्वरस पिलाया जाता और प्रतिदिन ढाई तोला बढाकर २५ तोला तक पिला दिया जाता है। इसी प्रकार शनैः २ कम करके चिकित्सा समाप्त की जाती है। इस समय रोगी को केवल दूध पर रखा जाता है। यदि जलोदर या श्वयथुः वृक्करोग या हृदय रोग के कारण हो तो इस चिकित्सा से कोई लाभ नहीं हैं।

२ पिप्पली-नाम, हिन्दी—पीपल 'पंजाबी' मघ। इंग्लिश Lang pepper लैटिन Piper longum

प्राप्ति तथा वर्णन—भारत के गरम प्रदेशों में। इसकी बेल होती है। इसके निचले पत्ते २-३ लम्बे अण्डाकृति पान के समान नाडियों वाले ऊर्ध्वपत्र संकुचित तथा लम्बे, पत्रनाल रहित फल लंबे नलिका कार, पकने पर काले भूरे रंग के। उपयोगी भाग मूल तथा फल।

बिश्लेषण-इसमें Piperine नामक एक क्षारीय तत्व होता है।

योग-गुड़-पिप्पळी-विडंग, त्रिकटु, कुष्ट, पंचलवण, तीनोंक्षार, चित्रकमूल, कृष्णजीरक, कूष्माण्ड नाडी क्षार, तालजटा क्षार, अपामार्गक्षार; चिंचाक्षार, समुद्रफेन, गज पिप्पली, हिंगु प्रत्येक एक भाग, पिप्पली चूर्ण सबं तुल्य, गुड़ सर्ब तुल्य। मात्रा—१५ से ६० यव। रोग प्लीहा, यकृत वृद्धि, अजीर्ण, कास।

पिप्पली खण्ड—पिप्पली-४, घृत-८, खाण्ड-१६, शतावरी स्वरस-८, आमलकी स्वरस-१६, क्षीर-३२, इनका लेह बनाकर त्रिजातक, श्वेत जीरक, हरीतकी, धान्यक, मुस्ता, वंशलोचन आमलकी, प्रत्येक चौथाई कृष्णजीरक, शुण्ठी, कुष्ट, नागकेशर, प्रयेतक $\frac{१}{८}$ जातीफल, मरिच मधु प्रत्येक ३ भाग डालें। रोग—अम्लपित्त। मात्रा—आधे से १ तोला। (भै० र)

पिप्पल्याद्यासव—पिप्पली, चव्य, हरिद्रा, चित्रक-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मूल, मुस्ता, विडंग, पुगीफल, लोध्र, पाठा, आमलकी, एलवा, उशीर, चन्दन, लवंग कुष्ट तगर, जटामांसी, चतुर्जातक प्रत्येक आधा, जल=५१२, गुड़=३००, धातकी पुष्प १०, द्राक्षा ६० भाग मिला आसव बनावें। मात्रा-आधा से २ तोला। रोग--मन्दाग्नि, ग्रहणी; शोथ; अर्शस्, यकृत; प्लीहावृद्धि, कास।

अष्ट कट्वर तैल--शुण्ठी १, पिप्पलीमूल १, सर्षप तेल १६, स्निग्धतक्र १६, तेल बनायें। 'रोग' गृध्रसी आदि शूल, उरुस्तम्भ।

गुण—रस-कटु, गुण-लघु स्निग्ध, वीर्य—उष्ण, पाक-मधुर, दोष-वातकफहर।

प्रभाव—पिप्पली तथा पिप्पलीमूल उत्तम अग्निदीपक हैं। कण्ठ, श्वास नालियों की शोथ को हटाती है। यकृत्, प्लीहा तथा सर्वांग के लिये उत्तेजक हैं।

उपयोग—वात, कफाजीर्णजन्य शूल, आध्मान अरुचि, मुखस्राव आदि उपद्रवों के लिये पिप्पली के योग त्रिकटु, पंचकोल, लवणभास्कर हिंग्वाष्टक आदि भोजन से पहिले या पीछे दिये जाते हैं। गलशोथ, स्वरभंग, प्रतिश्याय, कास, श्वास आदि कफ रोगों में त्रिकटु, पंचकोल आदि पिप्पली के योग शहद के साथ या गरम जल से दिये जाते हैं। यकृत्, प्लीहा शोथ तथा वृद्धि के हटाने के लिये त्रिकटु चूर्ण को मातुलुंग स्वरस मधु के साथ या वर्धमान पिप्पली के रूप में प्रथम दिन ३ पिप्पली का दूध में कषाय कर रोज दो पिप्पली बढ़ाकर ३० पिप्पली तक का कषाय पिलायें फिर इसी प्रकार दो दो पिप्पली घटाकर कषाय हलका करते जावें। आमवात, गृध्रसी, कटिशूल, आदि वातिक शूलों और ठण्डे हुये हाथ पांव को गरम करने के लिये तथा सभी बात कफ के उपद्रवों, प्लीहा, जीर्ण ज्वरों में पिप्पली से उबाला हुआ दूध पिलाना लाभदायक है।

३ मरिच। नाम-हिन्दी, मरिच। इंग्लिश Black-peppor लैटिन Piper Nigrum

प्राप्ति तथा वर्णन—आसाम, मालाबार, ट्रावनकोर आदि भारत के गरम तथा नमी वाले प्रदेशोंहोती में है। इसकी बेल बड़ी, पत्ते नरम, ५"-७"लम्बे, २"-५" चौड़े अण्डाकार फल भूमण्डलाकार,दण्डिका रहित, जब हरेलाल होने लगते हैं तबतोड़ लिएजाते हैं। इन्हें कच्चाही तोड़कर गरमजलके साथ रगड़कर छिलका उतार दिया जायतो इसे श्वेत मरीच कहते हैं। यह कम कटु होती है।

विश्लेषण—इसमें [Piperine] नामक ५ से ९% तक एक उड़ने वाला क्षारीय तत्व है। यह जल में नहीं घुलता। इसका Resin गहरा हरा होता है। मरीच का कटु स्वाद इसके ही कारण होता है। यह मद्य में या ईथर में ही घुलता है। इसमें १-२%अस्थिर तेल भी होता है।

योग—मारिचादि गुटिका या चूर्ण—मरिच १, पिप्पली १, यवक्षार आधा, दाड़िम त्वक् २, गुड ८, गोली बनावें। मुख में रख कर चूसें। 'रोग' कास। (शा० ध०)

मारिचादि तैल—मरिच, हरिताल, मनःशिला मुस्ता, अर्कक्षीर, करवी मूल, त्रिवृत, एन्द्री मूल, कुष्ट, दोनों हरिद्रा, देवदारु, चन्दन प्र०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्येक २, बत्सनाभ ४, तिलतैल १६, गोमूत्र ६४ भाग। तेल बनावें। रोग—त्वग् रोग।

गुण—रस-कटु, गुण-लघु; रुक्ष तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-बातकफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—स्थानिक उत्तेजक तथा अन्तः प्रयोग में मुख, आमाशय और आंतो के अन्दर की झिल्ली को उत्तेजित करती है इस लिये अग्नि दीपक है। आंतो द्वारा बाहर निकलती है इसलिये आंतों और गुदा की शोथ को हटाती हैं। यकृत की शोथ को हटाती है जिससे पित्त सुगमता से बहने लगती है। कंठ तथा श्वास नालियों की शोथ को हटाने के कारण प्रतिश्याय, कास में लाभदायक है। वृक्क तथा मूत्र स्रोतसों को उत्तेजितकर मूत्र को लाती है। सर्वांग के लिए उत्तेजक तथा स्वेदक है। ज्वरों तथा विषमज्वर के लिए विशेष हितकर है। श्वेत मरिचों को मोर के अंडे में भर बन्द कर ४० दिन रख कर अण्डे समेत पीसकर १ रत्ती थोड़ी २ देर में खिलावे और इसी का सुरमा लगाने से सर्प विष उतरता है।

४ चित्रक। नाम हिन्दी—चीता, चित्रक। लैटिन-Plumbago Zeylonos या Rosea

प्राप्ति तथा वर्णन—बंगाल, दक्षिण भारत, कुमायूं, की पहाड़ियों पर होता है। बागों में भी बोया जाता है। सदाहरा, बहुवार्षिकक्षुप, तना, २ से ५ लम्बा मूल मूडी हुई मोटी लम्बी, पत्र क्रमिक, पूर्णधार दण्डिकारहित आधे से ३" लम्बे अण्डाकृति, पुष्पगुच्छ, ४" से १२" लम्बे पुष्पश्वेत निर्गन्ध, लाल चित्रक के पुष्प, पत्र, डंठल लाल होते हैं।

विश्लेषण—Plumbagine इसमें एक विशेष क्रियाशील तत्व होता है जो गरम पानी में थोड़ा मद्यसार तथा इथर में पूर्णतया घुल जाता है। यह स्वाद में कटु है।

योग-चित्रकादि चूर्ण—पंचकोल-५, हिंगु-१. मरिच-१, अजमोदा-१, दोनोंक्षार प्रत्येक-आधा पंचलवण-ढाई, निम्ब स्वरस की भावनाएं दें। मात्रा—१५ से ६० यव। रोग—मन्दाग्नि।

चित्रक हरीतकी अवलेह—चित्रक, गुडूची, दशमूल, प्रत्येक का कषाय-१००, आमलकी स्वरस-१००, खांड-१००, पानक बनाकर हरीतकी-६४; त्रिकटुप्रत्येक,-२, त्रिजातकप्रत्येक २, यवक्षार-आधा; मधु-८, भाग डालकर अवलेह बनावें। मात्रा—आधे से १ तोला। रोग—मन्दाग्नि, अर्शस्, चिरस्थायी प्रतिश्याय कास। (भै० र)

गुण—रस—कटु, गुण—लघुरूक्ष, बीर्य—उष्ण, पाक—कटु, दोष—कफ बातहर।

प्रभाव—त्वचापर इसका पलस्तर लगाया जाता है जिससे यह लाल हो जाती है। देरतक लगाने से छाला पड़ जाता है। मुख द्वारा देने से यह दीपक तथा आमाशय, ग्रहणी आशय और गुदा की शोथों को हटाता है। गर्भाशय पर इसका गर्भ स्रंसक प्रभाव है।

उपयोग—किसी स्थान की शोथ को हटाने के लिये राई के समान चित्रकमूल चूर्णका पलस्तर या इसके चूर्ण में दुगना गेहूँ या चावल का आटा मिला पुलटिस बना बांधने से शूल हट जाती है। विद्रधि को खोलने के लिये यह पुलटिस बांधी जा सकती है। महामारी की ग्रंथि पर चित्रक का लेप किया जाता है। कन्ठमाला

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ग्रन्थि पर चित्रक, गजपिप्पली, कासीस को अर्क दुग्ध से मर्दन कर कुछ दिन लेप करें।

मन्दाग्निहर होने से आमाशय, ग्रहणी आशय के रोगों में विशेषतः पंचकोल आदि का प्रयोग होता है। अर्शस् के लिए चित्रक, हरीतकी अमयारिष्ट या चित्रकमूल चूर्ण हरीतकी और सैन्धव के साथ मिला तक्र के अनुपान से दिया जाता है।

---

५ मधुरिका - नाम-हिन्दी-सौंफ। इंग्लिश Fennel Seed लैटिन Foeniculum Vulgarae

प्राप्ति तथा वर्णन—उत्तर भारत में बोई जाती है ऊंचा, कोमल क्षुप, पत्र दो तीन या चार लम्बे भागों में फटे होते हैं। फूल लम्बी डंठल पर लगी १०-१५ डंडियों के सिरे पर गुच्छे में लगते हैं।

विश्लेषण—बीजों में ३ से ५ % अस्थिर तेल होता है।

योग—मधुरिका चूर्ण १५ से ६० ग्रेन, मधुरिका अर्क आधा से २ औंस; मधुरिका तेल २ से ८ बूंद।

गुण—रस-मधुर तिक्तकटु, गुण-लघुस्निग्ध, वीर्य उष्ण, पाक-कटु, दोष वातहर।

उपयोग—आंतों में वायु के कारण शूल, आध्मान, उद्वर्त हो तो इसके चूर्ण या तेल आदि दिये जाते हैं। मधुरिका को थोड़ा सा तवे पर भून कर १ तोला चूर्ण बराबर मिश्री मिला गरम जल से ज्वर ग्रस्त रोगी को पिला दिया जाय तो खुलकर स्वेद आ जाता है।

गलशोथ, स्वरभंग के लिये सौंफ का चूर्ण या घृत बनाकर निरन्तर कुछ काल देने से बड़ा लाभ होता है।

---

६ शतपुष्पा—नाम-हिन्दी—सोया। इंग्लिश Dill Seed लैटिन Peucednum groveolens

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र बोया जाता है। ३' ऊंचा कोमल क्षुप, पत्ते आधा से १" लम्बे बारीक भागों में कटे हुये, फूल, लम्बे डंठल पर लगी १२-१३ डंडियों पर छत्राकार होते हैं।

गुण-मधुरिका के समान।

विश्लेषण--बीजों में ३ से ४ % अस्थिर तेल होता है।

योग--मधुरिका के समान ही चूर्ण, अर्क तेल होते हैं।

प्रभावतथा उपयोग—मधुरिका के समान दीपक आध्मान शूलहर, आर्तव स्तन्य प्रवर्तक होता है। विशेषतः बालकों के आंत्ररोगों में इसके अर्क में सुधाजल या सर्जक्षार आदि डालकर पिलाते हैं। विरेचक औषधियों के साथ प्रायः शतपुष्पा या मधुरिका को मिलाकर दियाजाता है जिससे वे दर्द नही करतीं।

---

७ अजमोदा—नाम-हिन्दी—अजवायन। इंग्लिश Bishop's. Bleed लैटिन Ptychotis-ajwan.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र बोई जाती है। एक वार्षिक १ से ३ ऊंचा, कोमल, किंचित् लोमस क्षुप, पत्र दूर दूर दो तीन भागों में फटे हुये, बारीक, फूल श्वेत, फल $\frac{1}{12}$ लम्बा, अण्डाकृति भूरे, ५ धारियों वाले।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विश्लेषण—बीजों में ५ से ६ % अस्थिर तेल। इसमें एक स्फटिकीय तत्व होता हैं जो अर्क निकालते समय अर्क के पृष्ठ पर संचित हो जाता है। जिसे रसायनिक परिभाषा में Steroptin कहते है। बाजारी भाषा में अजवायन का फूल कहते हैं। बाहर से आनेवाले Thymol के समान होता हैं। इसके बनाने के लिये अर्क के ऊपर आये हुए तेल को पृथक् कर उसमें कैल्शियम क्लोराइड डाल, शुद्धकर फिरइसे शून्यतापांश पर लगायाजाता है। इसमें से लगभग ३०%स्फटिक निर्दिप्त हो जाते हैं। इन्हें ही अजवायन का फूल या Thymol कहते हैं।

योग—अजमोदा तेल १ से ४ बूंद; अजमोदा सत्व आधे से-२ यव, अजमोदा अर्क आधे से-२ औंस। अजमोदा चूर्ण १५ से ६० यव।

गुण—रस-कटु, गुण-लघुतीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाककटु, दोष-बात कफहर।

प्रभावतथा उपयोग—यह दीपक, आध्मान हर, उद्वर्तहर, शूलहर, सर्वांग उत्तेजक, आंत्रकृमि हर, आंत्रजीवाणु हर है। गले तथा कण्ठ की शोथों में उबलते पानी में अजमोदा, कर्पूर, पौदीना आदि डाल जल की भाप मुख में पहुँचाई जाती है। इसके चबानेसे ही गलशोथ में लाभ होता है। मन्दाग्नि तथा उससे होनेवाले आध्मान, शूल, उद्वर्त, अतिसार, बिसूचिकामें अजवायन के फूल तेल या इसके बने हुये दीपक चूर्ण दिये जाते हैं। भोजन से पहले अजमोदाको लवणके साथ या अजमोदा अर्कमें क्षार डालकर देनेसे अग्नि दीप्त होती है। बालकोंके अतिसार में अजमोदा अर्क में सुधाजल अथवा थोड़ा सा अहिफेनासव डालकर दे सकते हैं। छोटी आंतोके अंकुर कृमियों (Ankylo stomumduodenale)के लिये एकसे दो तोला अजमोदा चूर्ण थोड़े नमकके साथ प्रातः काल खाली पेट प्रतिदिन पिला देना चाहिये, अथवा अजमोदा सत्व १५ से ३० ग्रेन की मात्रामें बताशो में डालकर खिलादेना चाहिये इसके कुछ घंटे पीछे त्रिवृत या कोई अन्य विरेचन देने से अंकुर कृमि मरकर निकल जाते हैं। जो मद्य के व्यसन को हटाना चाहें वे कुछ काल मद्य के स्थान पर अजमोदा को मुख में रख चबायें तो चैन पड़ जाती है।

---

८ जीरक—नाम हिन्दी—श्वेत जीरा। इंग्लिश Cumin लैटिन Cuminum cyminum

प्राप्ति तथा वर्णन—उत्तर भारत में बोया जाता है। एक वार्षिक क्षुप' पत्र दो तीन बारीक भागों में फटे हुये, फूल डंठल के शिरों पर गुच्छों में श्वेत रंग के होते हैं, फल नलिकाकार, बीज किनारीदार, भूरे रंग के।

विश्लेषण—बीजों में एक अस्थिर तेल Cumine oil होता है। एक स्थिर तेल भी होता है। Resin और Mucilage भी होता है।

योग—चूर्ण-१५ से ६० यव। तेल आधेसे ३ बूंद।

जीरकादि मोदक—जीरक ८, शुण्ठी ३, धान्यक ३ शतपुष्पा १, यवानी १, कृष्णजीरक १, क्षीर ३२, खांड़ ५०, घृत ८ भाग। अवलेह बनावें, फिर इसमें त्रिकटु, त्रिजातक, विडंग, चव्य, चित्रक, मुस्ता, लवंग प्रत्येक १ भाग डालें। मात्रा आधे से २ तोला। 'रोग' सूतिकारोग, ग्रहणीरोग, मन्दाग्नि। (भै० र०)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जीरकावलेह — जीरक १६, क्षीर १८, लोध्र ८; घृत ८, खांड़ १६, चतुर्जातक, पिप्पली, शुण्ठी, कृष्णजीरक, सुगन्धवाला, दाड़िमत्वक्, धान्यक, वंशलोचन, हरिद्रा प्रत्येक आधे भाग अवलेह बनावें। मात्रा— आधे से २ तोला। रोग-प्रदर, शुक्रमेह।

पंचजीरक पाक —श्वेतजीरक, कृष्णजीरक, शतपुष्पा, मधुरिका, दोनो अजमोदा, मेथिका, धान्यक,शुंठी, पिप्पली, पिप्पली मूल, चित्रक मूल, हपुषा, कुष्ट,कपित्थ, प्रत्येक १, गुड़ १००, क्षीर-३२, घृत-४, भाग। पाक बनावें। मात्रा-आधे से २ तोला। रोग —सूतिका रोग, गर्भाशय रोग। (यो० र)

जीरकादि तेल —जीरक चूर्ण-१, सिंदूर-आधा, सर्षप तेल-८, जल-३२ भाग पाक करके पीछे सिंदूर मिलातेल बनावे। रोग-पामा! (भै० र०)

जीरकाद्यारिष्ट—जीरक-२००, जल-१०२४, चतुर्थांश कषाय लें। गुड़ ३००, धातकी-१६, शुंठी-२, जातिफल, मुस्ता, चतुर्जातक, यवानिका, कंकोल,लवंग प्रत्येक-१। अरिष्ट बनावे मात्रा—२ से ८ ड्राम। रोग—सूतिका रोग, ग्रहणीरोग, मंदाग्नि, अतिसार। (भै० र)

गुण—रस—कटु, गुण—लघुरूक्ष, वीर्य—शीत, पाक—कटु, दोष—त्रिदोषहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह दीपक, ग्राही, मूत्रल, तथा गर्भाशय शोधक है। ग्राही होने के कारण पामा पर जीरकादि तेल लगाया जाता हैं, अतिसार में दीपक और ग्राही होने के कारण जीरक चूर्ण हरीतकी के साथ या हिंग्वाष्टक चूर्ण के रूपमें प्रयुक्त होती है, गर्भाशय शोधक होनेके कारण पंचजीरक पाक सौभाग्य,शुंठी, आदि तथा उपरोक्त योग सूतिका को खिलाए जाते हैं। जीरक के देने से प्रसूता के स्तनों में दूध भी बढता है।

६ कृष्णजीरक। नाम हिन्दी-काला या स्याह जीरा। इंग्लिश Blockcumin लैटिन— Nigellasotiva Carumcorui

प्राप्ति तथा वर्णन—विशेषतः काश्मीर में होता है एक वार्षिक कोमल क्षुप, १ से ३ ऊंचा, पत्र छोटे २ कई पंखों में फटे हुए, फूल बड़े डंठलके सिरे पर लगी छोटी २ डंडियों के सिरे पर गुच्छोंमें, फल अंडाकार $\frac{1}{6}$ से आधा लम्बा।

विश्लेषण--१; ५; % एक अस्थिर तेल। ३७.५ % स्थिर तेल।

योग--चातुर्बीज चूर्ण कृष्णजीरक; चन्द्रशूर 'हालों' मेथी बीज; अजमोदा समान २ चूर्ण करें। वातिकशूल आमवात मात्रा-१ माशा।

गुण तथा योग—श्वेत जीरक के समान परन्तु यह उष्ण वीर्य है।

प्रभाव तथा उपयोग--दीपक, ग्राही, गर्भाशय शोधक है। प्रसूता के गर्भाशय शोधन, अग्नि दीपन, स्तन्यवर्धन के लिये श्वेतजीरकके समान लवण या गुड़ के साथ खिलाया जाता है।

---

१० हिंगु। नाम हिन्दी-हींग। इंग्लिश Asafoetida लैटिनFerula Asofoetida

प्राप्ति तथा वर्णन—काश्मीर, फारस, अफगानिस्तान आदि में स्वयं उगता है। बहु वार्षिक क्षुप, तना ५" से ७" लम्बा, पत्र चपटे, आगे-नोकदार पत्तों में फटे हुये। फूल क्षुप के सिरे

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पर लम्बी डंठल पर ५-६ डंडियों पर लगे होते है। इसका निर्यास औषधियों में काम आता है। यह गोल या चपटे, फीके पीले टुकड़ो में मिलती है। पुरानी हींग गहरे रंग की हो जाती है। गन्ध तीव्र होती है। पानी में मिलाकर मर्दन करने से श्वेत हो जाती है। अच्छी हींग ६५ % मद्यसार में घुल जाती है।

विश्लेषण—अस्थिर तेल ५ %, Resin ६५ %, Gum २५ % Valerianic Acids

योग—'हिंगुचूर्ण' मात्रा-१ से ४ ग्रेन। 'हिंगुद्राव' ५० गुना जलमें डालकर छान लें। मात्रा-आधा से १ ड्राम। 'हिंगुआसव' मद्यसार (७५ %) १० भाग में मिलावें। मात्रा-आधासे १ ड्राम।

हिंग्वाष्टक चूर्ण—हिंगु आधा, अजमोदा १, त्रिकटु प्रत्येक १, दोनों जीरक प्रत्येक १, सैंधव १ चूर्ण बनावें। मात्रा-१० से ३० यव। रोग मन्दाग्नि, आमातिसार, उदरशूल, आध्मान।

हिंग्वादि घृत—हिंगु २, सौवर्चल २, त्रिकटु प्रत्येक २ घृत ६४, गोमूत्र घृत से ४ गुना। घृत बनावें। मात्रा--आधा से १ तोला। रोग-उन्माद; अपस्मार। हिंग्वादि चूर्ण--हिंगु १ वचा २ कुष्ट ४ सौवर्चल ८ विडंग १६ भाग। रोग-वातरोग, अपस्मार-योषापस्मार, श्वासरोग।

गुण—रस-कटु तिक्त, गुण-लघु स्निग्ध तीक्ष्ण, वीर्य—उष्ण, पाक, कटु, दोष वातकफहर।

प्रभाव—दीपक, शूल, उद्वर्त, आध्मान हर तथा उत्तेजक है। न केवल आंतों के उद्वर्तों को शान्त करता है परन्तु श्वास नाडियों के उद्वर्तों को भी शान्त करता है। गर्भाशय शोधक तथा आर्तव प्रवर्तक है। सर्वांग तथा वात नाडियों के लिये उत्तेजक है। इसका अस्थिर तेल मूत्र, स्तन्य तथा स्वेद द्वारा बाहर निकलता है।

उपयोग—*बहिःप्रयोग*-आध्मान तथा उदर शूल में उपरोक्त हिंगुफाण्ट की वस्ति देने से लाभ होता है। इस फाण्टमें में तारपीन का तेल भी मिला सकते हैं। बालकोंके पेटपर हिंगुका जल तेल या स्पिरिट में लेप बना लगाने से आध्मान हट जाता है। बालकों में गुद कृमियों को मारनेके लिये भी यह वस्ति दी जाती है। श्वास रोग के बेगमें हिंगु को माष की दालके साथ पीसकर कोयलों पर रखकर धूम दिया जाता है। दन्तशूल में दांत की गुहा में हिंगु का छोटा सा टुकड़ा रखने से शूल को आराम आता है। कर्णशूल शोथ जन्य बधिरता में हिंगु, शुण्ठी, अजमोदा, सजखार, साधित हिंगुतेल डालने से आराम होता है। नारू कृमि के निकालने के लिये उसके निकलने की जगह पर हींग मिलाकर बांध देते हैं।

अन्तःप्रयोग—आध्मान, आमातिसार, आंत्रशूल, मन्दग्नि में हिंग्वाष्टक चूर्ण को पृथक् या हरीतकी चूर्ण से मिलाकर थोड़ी २ देर पीछे गरम जल से देते हैं। तीव्र शूलों में हिंगु देकर ऊपर एरंड तेल पिला देने से शूल हटती और पेट साफ हो जाता है। विशूचिका तथा तीव्र अतिसार में हिंगु, कर्पूर, मरिच, अहिफेन के समान २ भाग की ४ ग्रेन की गोली बनाकर देना लाभदायक है। कष्टार्तव तथा प्रसव के पीछे गर्भाशय शोधन के लिये हींग और कुमारीसार की गोली बनाकर दी जाती है। योषा अपस्मार, अपस्माररोग और इनके उपद्रवों के लिये हिंगु के योगों का निरन्तर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सेवन करें। श्वासरोग में हिंग्वादि चूर्ण में सोमल को उचित मात्रा मिला के दें।

११ बचा। नाम हिन्दी – बच। इंग्लिश Sweetflogroot लैटिन Acoruscolomus

प्राप्ति तथा वर्णन—दलदल वाली जगहों में होता है। मणीपुर और नागा की पहाड़ियों में बहुत होता है। मूल फैलने वाली' सुगन्धित, मध्यमाङ्गुली, के समान मोटी, पत्ते गहरे हरे रंग के लम्बे संकुचित, माला कार होते हैं। और मध्य नाडी स्पष्ट होती है। इसकी मूल ही औषधियों में काम आती है।

विश्लेषण—एक तिक्त रस Glucoside होता है। जिसे Acorin कहते हैं। एक क्षारीय तत्व भी होता है जिसे Calomine कहते हैं। यह मद्यसार क्लोरो फार्म ईथर में विलेय हैं परन्तु ग्लूकोसाइड ईथर में अविलेय है अतः ये ईथर द्वारा अलग किये जासक्ते हैं।

योग—"वचाचूर्ण" ५ से १० यव दीपक तथा मेध्य है। आधे से १ तोला वामक है।

"बचा रसक्रिया" ६०% मद्यसार से बनावें। मात्रा—२ से ८ यव।

बचाआदि चूर्ण—बचा-१, हरीतकी-१, हिंगु-१ त्रिकटु-३, अतिविषा-१, सौवर्चल-१,। मात्रा १५ से ६० यव। रोग—मन्दाग्नि, अपस्मार।

गुण—रस—कटुतिक्त; गुण-लघुरूक्षतीक्ष्ण; वीर्य-उष्ण, पाक-कटु; रोग-वात कफहर।

उपयोग—बहिःप्रयोग में यह शोथ हर तथा वात हर है। अन्तःप्रयोग में दीपक; आध्मानहरऔर अधिक मात्रा में वामक है। थोड़ी मात्रा में निरन्तर कुछ काल प्रयोग करने से मेध्य है। गठिया; संधिशोथ; आघात जन्य शोथ पर राई और सरसों के समान इसका पुलटिस बना कर बांधने से शोथ हटती है। गल शोथ में थोड़ी बचा मुख में रख कर चबाई जाय तो मुख द्वारा बहुत सी श्लेष्मा निकल जाने से गले को आराम पड़ जाता है। प्रतिश्याय में इसका नस्य देने से नासिका हलकी पड़जाती है। कीड़ों के हटाने के लिये कपड़ों में इसकी गांठ रखी जाती है। किसी स्थान से मच्छरों या मक्खियों को हटाने के लिये इसका कषाय या चूर्ण छिड़कते हैं। घरों में कीट हरण के लिये इसका धूम दिया जाता है। बचा की वामक मात्रा घी के साथ सर्प दंश में देकर वमन कराने से विष नष्ट होता है। मन्दाग्नि तथा उससे उत्पन्न होने वाले उपद्रवों में प्रयुक्त होने वाले प्रयोगों में इसका भी प्रयोग होता है। वमन लाने के लिये १ से ४ ड्राम बचा चूर्ण गरम जल से पिलाया जाता है। स्मृतिमांद्य, अपस्मार, उन्माद, बालकों के अपस्मार-योषापस्मार में बचा चूर्ण ५ से १५ ग्रेन मधु से या बचा के ब्राह्मी के साथ बने योग कुछ काल दिये जाते हैं। इसके साथ दूध चावल आदि हलके पौष्टिक भोजन देने चाहिये।

१२ हपुषा। नाम हिन्दी-हाऊबेर या अरार। इंग्लिश Juniper लैटिन Juniperuscomminis

प्राप्ति तथा वर्णन—कुमायूं से पश्चिम की तरफ हिमालय पर मिलता है। एक घनी फैली हुई सदा हरी झाड़ी में ६" से ७" ऊंची; काष्ट शाखायें सुगन्धित पत्र चौथाई" से पौन लम्बे ऊर्ध्व पृष्ट रंग में फीका; नतोदर; निम्न पृष्ठ हरा; उन्नतोदर; गोल फल; भूमण्डलाकार;

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अगस्त; सितम्बर में पकते, तीन बीजों सहित स्वाद में कुछ मीठे; मसाले जैसे तारपीन के तेल जैसी गन्ध होती है। इसका फल और उनसे निकलने वाला तेल काम आता है।

विश्लेषण--इसका क्रिया शील तत्व Juniperin है। एक अस्थिर तेल डेढ़ है।

योग--"हपुषा चूर्ण' १५ से ६० यव 'हपुषा तेल' मात्रा-आधा से २ बूंद, दीपक। तथा ४ से ६ बूंद मूत्रल।

हपुषा तेलासव--१० गुना मद्यसार ६०% में डाल कर बनावें। मात्रा-१५ से ६० बूंद।

गुण--रस-कटु; तिक्त मधुर; गुण-गुरु; वीर्य-उष्ण पाक-कटु; दोष कफ बातहर।

प्रभाव तथा उपयोग--वहिः प्रयोग में त्वच्य है। इसमें से निकलने वाले स्थिर तेल को कण्डू; पामा आदि त्वक् रोगों पर लगाते हैं। अन्तः प्रयोगों में दीपक तथा मूत्रल हैं। मन्दाग्नि; आध्मान; शूल; आदि में हपुषा को समान २ पंचकोल; मरिच; जीरक और सैन्धव के साथ चूर्ण बनाकर देते हैं। पूयमेह में मूत्र लाने और उसकी दुर्गंधि हटाने के लिये इसके चूर्ण को कंकोल, टंकण, गोंखुर आदि के साथ मिलाकर देते हैं।

---

१३ *जातिफल*—*नाम हिन्दी*—जायफल। इंग्लिश-Nutmeg लैटिन Myristica fragrans.

प्राप्ति तथा वर्णन—मलाया और पीनांग से आता है दक्षिण भारत में भी बोया जाता है। ४०' ऊंचा वृक्ष, इसके बीजों को जातिफल और बीजों के ऊपर के छिलके को जातिपत्री कहते हैं। जातिफल भूरा, अण्डाकृति, सुगंधित, ठोस, भारी चिकना होता है। पोला और खुरदरा अग्राह्य है। मालाबारमें देशी जायफल भी होता है। इसके छिलके को रामपत्री कहते हैं।

विश्लेषण—२, ८ %अस्थिर तेल। जातिपत्री में इसकी मात्रा अधिक होती है। एक स्थिर तैल भी होता है। स्टार्च तथा म्युसिलेज (Mucilage) भी होते हैं।

योग—"जातिफलचूर्ण" ५ से १५ यव। "जातिफलफाण्ड" आधे से २ औंस। 'जातिफलतेल" १ से ३ बूंद। "जातिफल आसव" ५ गुना मद्यसार (६०) में मिलावें। मात्रा—आधे से १ ड्राम। "जतिफलतेलासव" जातिफल तेल को १० गुना मद्यसार (६०) में डालकर बनावें। मात्रा—१० से ३० बूंद॥

जीरकादिचूर्ण—जीरक, टंकण, मुस्ता; पाठा; बिल्व; धान्यक; बालक; शतपुष्पा; दाडिमत्वक; कुटज; मंजिष्ठा; धाकी पुष्प, त्रिकटु; त्रिजातक मोचरस, इन्द्रयव, अभ्रक, गंधक, पारा प्रत्येक १ भाग जातिफल, सर्व तुल्य। मात्रा—१० से ३० ग्रेन रोग—ग्रहणीरोग, मन्दाग्नि, अतिसार

जाति फलादि वटी—जातिफल, टंकण, धत्तूरबीज अभ्रक, प्रत्येक १ भाग, अहिफेन-२। मात्रा—२ से ४ ग्रेन की गोली। रोग—अतिसार।

(भै० र०)

गुण—रस-कटुतिक्त, गुण-लघुतीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-बात कफहर।

प्रभाव—स्थानिक तथा सर्वांग उत्तेजक, आमाशय ग्रहणी आशय के लिये दीपक और कुछ ग्राही

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। स्थानिक तथा सर्वांग वात शूल हर है।

उपयोग—आमवात, गठिया, शिरःशूल आदि शूलों में इसके चूर्ण या इसके स्थिर तेल को वैसलीन में मिलाकर मर्दन करने से आराम होता है। कर्णमूल ग्रन्थिशोथ पर भी इन लेपों के लगाने से शोथ हट जाती है। दन्तशूल में इसके अस्थिर तेल का फोया रख सकते हैं। युवान पिड़िका की शोथ पर जातिफल को घिसकर लगाते हैं। अर्शस् में गुद शोथ हटाने के लिये जातिफल चूर्ण, माजूफल चूर्ण १-१ भाग, थोड़ी वैसलीन में मिलाकर लगाते हैं। विसूचिका में पिंडलियों के उद्वेष्टन हटाने के लिये इसके चूर्ण या तेल को ८ गुना तिल तेल में मिलाकर मर्दन करते हैं। क्लीव रोग में शिश्न के अन्दर की शोथ हटाने के लिये जातिफल, हरताल, टंकण प्रत्येक १ तोला को ३ सेर तेल और थोड़ा चमेली के पत्तों का रस डाल तेल बनाकर लगाते हैं। जातीफल, जावित्री ३-३ माशा, केशर १ माशा, बादाम रोगन २ तोला में मिला के भी लगा सकते हैं। वमन, आध्मान, अतिसार आदि अजीर्णके उपद्रवों में जातिफल के योग दिये जाते हैं। अतिसार में इसका पेट पर लेप भी लाभदायक है। शरीर की भिन्न २ वातशूलों के लिये जातिफल, शुण्ठी, कारस्कर, हरीतकी से मिलाकर गोली बनाई जाती है। अतिसार, विसूचिका आदि की निर्बलता में जातिफल के फाण्ट को थोड़ी २ देर में पिलाने से शरीर में गर्मी और चेतना आती और प्यास शान्त होती है।

इसके अति मात्रा में खाये जाने से शिरोभ्रम हो जाता है। इसके लिये मक्खन में चन्दन और मिश्री मिलाकर थोड़ी २ देर बाद देनी चाहिये।

१४-लवंग नाम हिन्दी—लौंग। इंग्लिश Cloves लैटिन Myrtus Caryophyllus

प्राप्ति तथा वर्णन—जिंजीबार, पीनांग में होती है। एक सुन्दर वृक्ष, जिसके बिना खिले फूल लौंग के रूप में इकट्ठे लिये जाते हैं।

विश्लेषण—१६ से २०% एक अस्थिर तेल [Caryophyllin] एक कर्पूर के समान द्रव्य, (Gallotannic acid Gum) होते हैं।

योग—'लवंग चूर्ण' ५ से १५ ग्रेन। 'लवंग फाण्ट' '४० गुना जल में' आध से १ औंस। लवंग तेल १ से ३ बूंद। 'लवंगार्क' १ से २ औंस।

लवंगादि मोदक—लवंग, त्रिकटु, दोनों जीरक, चतुर्जातक; तगर, जातिफल, बंशलोचन, कट्फल, कमल बीच, चन्दन, कंकोल, अगुरु, उशीर, अभ्रक, कर्पूर, जावित्री, मुस्ता, जटामांसी, शतपुष्पा, धान्यक, यव प्रत्येक १ भाग लवंग, सर्वतुल्य, सिताकुल से द्विगुण। पानक बनाकर बड़ी २ गोलियां बनावें। 'मात्रा' १५ से ६० ग्रेन। रोग-मन्दाग्नि, आमातिसार, ग्रहणीरोग, अम्लपित्त, कास, प्रतिश्याय।

लवंग चतुःसम चूर्ण—लवंग, जातिफल, जीरक, टंकण, प्रत्येक १ भाग। 'मात्रा' १५ से ६० यव बालकों के लिये ५ से २० यव। 'रोग' आमातिसार।

गुण—रस कटुतिक्त, गुण लघुतीक्ष्ण, वीर्यउष्ण पाक-मधुर, दोष-वात, कफहर।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रभाव—इसका स्थानिक प्रभाव जीवाणुहर, शोथ हर और संज्ञाहर होता है। अन्त प्रभाव में आमाशय, ग्रहणी के लिये दीपक, वमन, उद्वर्त, शूलहर और ग्राही है। हृदय तथा सर्वांग के लिये उत्तेजक है। त्वचा, यकृत, वृक्क और श्वास नालियों पर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है। यह श्वास, स्वेद, पित्त, स्तन्य। मूत्रद्वारा शरीर से बाहर निकलता है।

उपयोग—मस्तक शूल, संधिशोथ, गृध्रसी, कटिशूल आदि शूलों में लवंग तैल को वैसलीन में मिलाकर लेप किया जाता है। दन्तमांस शोथ गलशोथ, में लवंग को मुख में रखने से लाभ होता है। थोड़े से लवंग तैलको हाथों तथा पैरो पर मललिया जाय तो मच्छर नहीं काटते।

वमन अतिसार, अम्लपित्त, विदग्धाजीर्ण, ग्रहणी रोग, आंत्रशूल, उद्वर्त, आध्मान में इसके योग दिये जाते हैं। भोजन के पीछे लवंग, शुण्ठी, मरिच, भर्जित टंकण को चित्रक कषाय से भावना देकर बनाई गोली को खाने से अग्नि दीप्त होती है। ज्वरों के पीछे की अरुचि और क्षुधा नाश को हटाने के लिये किराततिक्ता और लवंग का फाण्ट लाभ दायक हैं। सर्वांग शैथिल्य में रस का थोड़ा २ फाण्ट मकरध्वज आदि के साथ दिया जाता है।

१५-त्वक्‌*नाम हिन्दी*—दालचीनी। इंग्लिश Cinnamon लैटिन-Cinnamonum Cassia.

प्राप्तितथा वर्णन—दक्षिण भारत; सीलोन, ब्रह्मा में होता है। एक बड़ा वृक्ष होता है। जिसके सब भाग सुगन्धित होते हैं। त्वक् भूरे रंगकी खुरदरी, सुगन्धित, मीठी। पत्ते आमने सामने मोटे, ऊर्ध्वपृष्ठ चमकीला, निम्न पृष्ठ धुंधला फूल लम्बी डंडी के सिरेपर लौंगकी आकृति का २ से ८ होते हैं, फल गहरा बैंजनी $\frac{1}{2}$ से १ इञ्च एक व्यासका। इसकी त्वक् औषधियों में काम आती है।

विश्लेषण—एक सुनहरी, पीला स्थिर तैल त्वक् में २% होता है। पत्तौ में लवंग की गन्ध का भूरा तैल और जड़में कर्पूर की गंधका पीला तैल, त्वक् में Tannin, Gum, Mucilage, starch, Cinnamic acid होता है।

योग—"त्वक्चूर्ण" मात्रा—५ से १५ ग्रेन। "त्वक् अर्क" मात्रा—१ से २ औंस। "त्वगासव" १० गुनो मद्यसार (६०%) में बनावें। मात्रा आधा से १ ड्राम।

त्रिजातक चूर्ण—त्वक्, एला पत्र समान २ इसमें नागकेशर भी मिला देने से यह "चतुर्जातक चूर्ण" कहाता है। मात्रा—१० से ३० यव। रोग-मन्दाग्नि, आध्मान।

त्वगादि चूर्ण—त्वक्-१०, जातिफल-८, लवंग-४, एला-३, शुद्धखटिका या शंखभस्म-२५, खांड ५०। मात्रा—१० से ६० यव। रोग—अम्लपित्त, विदग्धाजीर्ण, अतिसार, शूल।

गुण—रस-मधु, कटु, गुण-लघु, रूक्ष, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-कफ वात हर।

प्रभाव—आमशय तथा ग्रहणी आमाशय के लिये दीपक और ग्राही है। हृदय, वातनाड़ियों, गर्भाशय पर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है त्वक् तेल में भी यही गुण है परन्तु वह ग्राही नहीं है।

उपयोग—मस्तक, दांत तथा अन्य स्थानों की

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वातिक शूलों पर इसका तेल वैसलीन आदि में मिलाकर लगाया जाता है। वमन, अजीर्ण ग्रहणी रोग, अतिसार, उदावर्त, आध्मान, आंत्रशूल में इसके योग दिये जाते हैं। अतिसार के लिये १ ड्राम त्वक्, ३ ड्राम खदिरसार को १० औंस उबलते पानी में डाल फाण्ट बनाकर थोड़ी थोड़ी देर पीछे पिलाते हैं। आर्तव प्रवर्तन के लिए त्वक् चूर्ण गुड़ या जीरे के साथ खिलाया जाता है। आंत्रज्वर में इसका अर्क या इसका तेल देने से आंतों में आध्मान नहीं होता। कफ रोगों में दूध में दालचीनी उबाल कर पिलाते हैं।

१६-*एलानाम हिन्दी* – छोटी तथा बड़ी इलायची। इंग्लिश Cardamom लैटिन- Elattaria Cardamomum छोटी Amomum Subulatum बड़ी।

प्राप्तितथा वर्णन—सूक्ष्म एला मलाबार में होती है। बड़ी एला पूर्वीय हिमालय में होती है। सूक्ष्म एला का बहुवार्षिक क्षुप, मूल मोटी फैलने वाली, तनापत्र मय ६' से ६' लम्बा, पत्र १' से २' लम्बे ३" चौड़े, "फूल १" से २" लम्बे नीलकाकार फल कुछ लम्बे अण्डाकृति, झुर्रियों वाले सूखने पर इलायची कहते हैं; बीज छोटे २ सुगन्धित काले।

विश्लेषण—५% एक अस्थिर तेल होता है।

योग—"एलाचूर्ण" ५ से १६ ग्रेन। "एलाफाण्ट" (२० गुने जल में) १ से २ औंस। "एलातेल १ से तीन बूंद। "एलाआसव" आधा से १ ड्राम (१० गुना मद्यसार में)।

एलादिचूर्ण--एला, लवंग, नागकेशर, कोलमज्जा, लाजा, मुस्ता, रक्तचन्दन, पिप्पली समान २ भाग। चूर्ण बनावे। मात्रा-१५ से ३० यव। रोग-वमन, अरुचि। (भै० र०)

एलादिचूर्ण--एला, पाषाणभेद, शिलाजतु, पिप्पली समान २ भाग। चूर्ण बनावें। मात्रा- १० से ३० यव। रोग-मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह। (भै० र०]

एलादिचूर्ण या गुटी--एला, पत्र, त्वक् प्रत्येक-१, पिप्पली-४, मिश्री; मधुयष्टी, खर्जूर, द्राक्षा, प्रत्येक-८, मधु से गुटिकायें बनावें। मात्रा-२ से ४ माशे। रोग-क्षय, रक्तपित्त, अरुचि। [भै० र०]

एलाद्यरिष्ठ—एला-५०, वासा-२०, कुटज, मंजिष्टा दन्तीमूल; गुडूची, दोनों हरिद्रा, रास्ना, उशीर, मधुयष्ठी, शिरीष, खदिर, अर्जुन, भूनिम्ब, निम्ब, चित्रकमूल, कुष्ठ, मधुरिका, प्रत्येक-१०, जल २०४८ भाग। अष्टमांस कषाय कर छान धातकीपुष्प-१६, माक्षिक ३००, चतुर्जातक, त्रिकटु, चन्दन, जटामासी, मुस्ता, शैलेय, दोनों सारिवा प्रत्येक १ भाग डालकर अरिष्ट बनावे। मात्रा—२ से ८ ड्राम रोग-विसर्प, मसूरिका रोमान्तिका, विस्फोट, पिड़िका, उपदंश, व्रण, भगन्दर।

गुण—रस- मधु कटु तिक्त, गुण- लघुरूक्ष, वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष—पित्त, कफ हर।

प्रभावतथा उपयोग—दीपक, अरुचिहर, वमनहर और मूत्रल है। वमन, पिपासा दाहको शान्त करने के लिये एलादि चूर्ण दिया जाता है। रक्तपित्त, क्षयके लिये एलादि गुटी दी जाती है। दीपक होनेके कारण यह त्रिजातक के रूप में अवलेहों में डाली जाती है। मूत्र मार्ग के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दाह को शान्त करने के लिये पूयमेहमें एलादि चूर्ण मिश्री मिलाकर दिया जाता है।

१७-पत्रनाम हिन्दी—तेजपत्र । लैटिन Cinnamomum Tamala.

प्राप्तितथा वर्णन—हिमालय पर सिंध नदी से भूटान तक। मध्यामाकार, सुगन्धित वृत्त, पत्र "४" "५" लम्बे, क्रमिकः तीन मध्यनाड़ियों वाले, फल आधा इंच लम्बे पक कर काले हो जाते हैं। औषधियों में पत्र काम आते हैं।

विश्लेषण—पत्र में पीले रंग और दालचीनी की गन्धका एक स्थिर तैल होता है।

योग—"तेजपत्र चूर्ण" ५ से १५ ग्रेन। "तेजपत्र तेल" १ से ३ बूंद।

गुण—रस-मधुर कटु, गुण-लघुतीक्ष्ण, वीर्य उष्ण, पाक-कटु, दोष-वात-कफ हर।

प्रभावतथा उपयोग—यह स्थानिक तथा सर्वांग उत्तेजक है। आमाशय, हृदय, श्वासस्थान और गर्भाशय पर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है। इसलिये मन्दाग्नि आध्मान, शूल आदि आमाशय के रोगों, प्रतिश्याय, कास आदि श्वास स्थान के रोगों और गर्भाशय के प्रसूति का रोग में इसका चूर्ण या इसे त्वक् के साथ मिलाकर दिया जाता है।

१८-नागकेशर नाम हिन्दी—नागकेशर। इंगलिश Cobras saffron लैटिन Mesua ferrea

प्राप्ति तथा वर्णन—पूर्वीय बंगाल व पूर्वीय हिमालय में मिलता है। एक बड़ा, सदाहरा वृत्त, त्वक् लाल भूरी छिलकों में उतरने वाली, पत्र २ से ६ इंच लम्बे, १॥ इंच चौड़े, गहरे, हरे, ऊर्ध्व पृष्ट पर चमकीले, नाड़ियां बहुत बारीक, फूल सुगन्धित, फल चशनट जितना, गहरे, भूरे। फल और बीज औषधियों में काम आते।

विश्लेषण—फल तथा बीजों में एक Obor sin होता है जिसमें फीका पीला सुगंधित अस्थिर तेल होता है। यह Resin मद्यसार में घुल जाता है। फल के खोल और बीजों में कुछ Tannic acid भी होता है।

गुण—रस-तिक्त कषाय, 'गुण' लघु,रुक्ष, वीर्य-उष्ण पाक-कटु, दोष-कफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—दीपक तथा ग्राही है। बीजों में से निकलने वाला स्थिर तेल त्वच्य है। यह दाह, गुददाह, में शतधोत घृत में नागकेशर का चूर्ण मिलाकर लेप करते हैं। ग्राही होने के कारण रक्तार्शस् श्वेतप्रदर में इसका १ ड्राम चूर्ण मक्खन के साथ चाटाया जाता है। पाचन के लिये चतुर्जातक के रूप में इसको देते हैं। मासिकधर्म से तीन-चार दिन पहिले तथा पीछे तीन २ माशे नागकेशर चूर्ण गौ के दूध से लिया जाय तो कहा जाता है कि इससे गर्भ ठहरता है। शिवलिंगी बीज नागकेशर और त्वक् का चूर्ण मासिकधर्म से पीछे थोड़ा २ कुछ दिन तक लेने से भी कहा जाता है लाभ होता है।

१९-कुंकुम नाम हिन्दी—केशर। इंग्लिश Saffron लैटिन Crocussativus या Crocus Saffron.

प्राप्ति तथा वर्णन—कश्मीर में बहुवार्षिक क्षुप। मूल में कन्द, निम्नपत्र लम्बे, पतले, किनारे पीछे को मुड़े हुये, फूल सुगन्धित, बैंजनी रंग के, पुंकेसर पीलालाल सा यही केशर होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विश्लेषण--एक Glucoside होता है जिसे Crosn कहते हैं। यह जल में थोड़ा घुलता परन्तु क्षारीय जल और मद्यसार में घुल जाता है। एक तिक्त तत्व Picrocrocin एक अस्थिर तेल होता है।

योग--कुंकुम चूर्ण-१ से ३ ग्रेन। कुंकुमफाण्ट-दूध, कौफी, चाय आदि में थोड़ा कुंकुम डालकर बनावें। मात्रा-१ से ४ औंस। कुंकुम-५ गुना मद्यसार '६०%' में बनावें। ६ से २० बूंद।

गुण—रस-कटुतिक्त, गुण-स्निग्ध, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-वातकफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—केशर सर्वांग के लिये उत्तेजक है। सूर्यावर्त रोग में गरम घी में थोड़ा केशर डाल उसका नस्य देते हैं। श्वास स्थान को उत्तेजित करने के लिये प्रतिश्याय; कास में, क्लीव रोग में उत्पादक अंगों को उत्तेजित करने के लिये, वात नाड़ियों को उत्तेजित करने के लिये, आमवात तथा वातशूलों में, गर्भाशय को उत्तेजित करने के लिये काष्टार्तव, तथा सर्वांग और हृदय को उत्तेजित करने के लिये विसूचिका आदि रोगों में इसका दूध में बनाया फाण्ट दिया जाता है।

२०-कर्पूर नाम हिन्दी—कपूर काफूर। इंग्लिश Camphor लैटिन Camphora officianarum या Cinnamonmum.

प्राप्ति तथा वर्णन--जापान, फारमूसा, बोर्नियो सुमात्रा आदि में कर्पूर का ६०' से ८०' ऊंचा वृक्ष होता है। पत्ते लम्बे, अण्डाकृति, चिकने फूल श्वेत छोटे, फल मटर जैसे। सारे वृक्ष में कर्पूर की गंध आती है। इसकी लकड़ियों का अर्क खींचा जाता है, अर्क को ठंडा करने पर कपूर के स्फटिक नीचे बैठ जाते हैं फिर इनको उर्ध्व पातित कर शुद्ध किया जाता है। कर्पूर श्वेत, पारदर्शक स्फटिकाकार देशी कपूर के नाम से बाजार में मिलता है। यह कड़वा, सुगंधित, जलन शील तथा उड़नशील होता है। बोर्नियो से आया कपूर उत्तम समझा ज़ाता है। कपूर में त्वक् तेल, एलातेल, केशर, कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्य प्रत्येक $\frac{1}{८०}$ भाग डालकर उसे हलकी ज्वाला से बन्द बर्तन में उर्ध्व पातित करें तो वह 'भीमसेनी कर्पूर' कहाता है। कपूर १००० गुना जल, ४ गुना जैतून का तेल, १॥ गुना तारपीन का तेल, और मद्यसार तथा क्लोरोफार्म में बहुत शीघ्रता से घुल जाता है। कपूर को अजमोदा पौदीना आदि के सत्वों के साथ मिलाया ज़ावे तो वह शीघ्र द्रव रुप हो जाता है। इनको परस्पर मिलाकर कई औषधियां बनाई ज़ाती हैं जो बाजार में भिन्न २ नाम से मिलती हैं।

योग-कर्पूर चूर्ण—२ से ५ ग्रेन। "कर्पूरार्क" कपूर की पोटली को पानी में रख देने या आधा ग्रेन कपूर को १ औंस जल में घोलकर बनावें मात्र—आधा से २ औंस।

कर्पूरासव—१० गुना मद्यसार ‼ ६० % ‼ में बनावें मात्रा-५ से २० बूंद।

कर्पूराद्यासव—सुरा १००, कर्पूर ८; एला, मुस्ता, शुण्ठी, यवानी, मरिच प्रत्येक १ भाग। आसव बनावें। मात्रा-१० से ६० बूंद। रोग—विशूचिका; अतिसार।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्पूरादि चूर्ण—कर्पूर, त्रिकटु, पंचलवण, रास्ना, हरीतकी, सर्जक्षार, यवक्षार समान मातुलुंग स्वरस से भावना दें। मात्रा-१५ से ६० यव। रोग-मन्दाग्नि, वातकफाजीर्ण ग्रहणी-रोग। (भै० र०)

कर्पूरादि चूर्ण—कर्पूर, त्वक, पत्र, जातिफल, कंकोल प्रत्येक १, लवंग २, नागकेशर ३, मरिच ४, पिप्पली ५, शुण्ठी ६ भाग, खश सर्वतुल्य। चूर्ण बनावें। मात्रा-१५ से ६० यव। रोग-क्षयरोग की कास, अरुचि, स्वरभंग।

कर्पूररस—हिंगुल, अहिफेन, मुस्ता, इन्द्रयव, जातिफल, कर्पूर प्रत्येक १ भाग। मात्रा २ यव की गोली बनावें। रोग-अतिसार विशूचिका।

कर्पूर तैल—कर्पूर को ४ गुना जैतून तेल या तिल तेल या १० गुना तारपीन के तेल में मिलाकर बनावें। रोग—शूल पर लगावें।

शूलहर या कर्पूरादि बिन्दु—कर्पूर, पोदीना सत्व प्रत्येक १, अजमोदासत्व आधा, लवंगतेल आधा मिलावें, इसको १० गुना सफेद वैसलीन में मिलाकर "कर्पूरादिलेप" भी बनाया जाता है। रोग-शूल, अतिसार, विशूचिका, दंश।

कर्पूराद्यञ्जन—भीमसेनी कर्पूर १, कृष्णांजन ५, श्वेताञ्जन ५, रोग-नेत्ररोग। या भीमसेनी कर्पूर १, मधु २० भाग।

कर्पूरादि मञ्जन—भीमसेनी कर्पूर या उससे बनाये कर्पूरादिबिन्दु १, खटिका २० भाग। मञ्जन बनावें इसमें थोड़ी सेकरीन और कठोर साबुन मिला देने से मलने पर मुख में स्वाद और झाग देता है (कर्पूरादि बिन्दु में कार्बोलिकाम्ल भी उचित मात्रा में मिला सकते हैं।

गुण—रस-तिक्त, गुण-लघुतीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-कफ वातहर।

प्रभाव—कर्पूर जीवाणु हर है। लेप करने से स्थानिक रक्त वाहिनियों को उत्तेजित करता है जिससे नीचे विद्यमान शोथ और शूल शांत होते हैं अतः शूल हर है। आमाशय और आंतों के लिये दीपक, उद्वर्तहर है। श्वासनालियों परभी इसका यही प्रभाव है अतः शुष्क कास और श्वासहर है। हृदय तथा नाड़ी की गति को तेज करता है। नाड़ी मण्डल में होने वाले शूल और उद्वर्त को भी शांत करता है। उत्पादक अंगों को उत्तेजित करता है।

उपयोग वहिः—शिरःशूल, पार्श्वशूल, संधिशूल आदि शूलों में कर्पूर के तेल और प्रलेप मले जाते हैं। कास, कासज्वर, श्वासज्वर आदि में इनके छाती पर मलनेसे फेफड़े तथा श्वास नालियों की शोथ हटती है। प्रतिश्याय में इन को माथे और गलशोथ में गले पर मलते हैं। इन रोगों में इसके सुंघाने या गरम पानी में डाल इसके वाष्प देने से लाभ होता है। मूत्र मार्ग में शोथ के कारण मूत्रकृच्छ्र हो तो सीवन प्रदेश पर इसके प्रलेप को लेप कर सेक दिया जाता है।

नेत्रकण्डू, नेत्रपुष्प, चिरस्थायी नेत्राभिष्यन्द, आदि नेत्र रोगों में इसका अञ्जन तथा दन्तमांस, शोथ, दन्तपूय दन्तशूल में इसके मञ्जन प्रयोग में लाये जाते हैं। स्रावीपामा की खुजली हटाने के लिये पामा के प्रलेपों में थोड़ा कर्पूर भी मिलाया जाता है। मक्खी, भिरड़,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बिच्छू आदि के काटे पर कर्पूरादि बिन्दु या कर्पूर और अमोनियां जलमें मिलाकर लगाने से जहर का चढ़ना बन्द हो जाता है। मूत्रमार्ग उद्वर्त के कारण मूत्र आना बन्द हो जाय तो कर्पूर की पतली डली शिश्न के छिद्र में डालकर रख देने से कुछ देर में मूत्र आ जाता है मूर्छा हटाने के लिये मूर्छित व्यक्ति के पांव ऐसे गरम पानी में जिसमें कर्पूर को मद्यसार में घोलकर मिला दिया हो डाल दिये जाते हैं आंतों के तीव्रशूल, उद्वर्त; आंत्रज्वर में कर्पूरादि बिन्दु या कर्पूरादि आलव देने से बहुत लाभ होता है । बिशूचिका तथा तीव्र अतिसार के लिये कर्पूर प्रसिद्ध औषधि है। कर्पूर के साथ अहिफेन, हिंगु, और मकरध्वज मिलाकर गोली के रूप में दे सकते हैं। शुष्क कास के लिये यही वटी या कर्पूरके उपरोक्त योग दिये जाते हैं । स्वास और हिक्का के लिये कर्पूर के योग बड़ा लाभ दायक हैं। थोड़ो २ देर के पीछे इसका प्रयोग करना चाहिये। प्रतिश्याय के आरम्भ में कर्पूरासव या कर्पूरादि चूर्ण देने से उसका योग शान्त हो जाता है। यदि यह रोग संक्रामक रूप में फैला होतो कर्पूर सूघंना चाहिये या वाष्प लेने चाहिये। पार्श्वशूल श्वास ज्वर आदि गहरी शोथों को हटाने के लिये छाती पर कर्पूर का तेल मलकर सेक दिया जाता है नाड़ियों की भिन्न २ शूलों और उद्वर्तों में उपरोक्त कर्पूर की अहिफेन, हिंगु और मकरध्वज के साथ बनी गोली देने से शूल हटती और निद्रा भी आ जाती है। गर्भाशय की वातिक शूल तथा योषा अपस्मार में भी कर्पूर और हिंगु की गोली बड़ी लाभ दायक है। श्वास ज्वर तथा अन्य तीव्र रोगों में होनेवाले सर्वांग नैर्बल्य और हृदय नैर्बल्य के हटाने के लिये चन्द्रोदय मकरध्वज के रूप में इसका प्रयोग होता है। यह जननेन्द्रिय की निर्बलता के लिये भी दिया जाता है।

२१-पुदीनानाम हिन्दी—पुदीना । लैटिन Mentha Arvensis

प्राप्तितथा स्वरूप—यह सर्वत्र बोया जाता है पृथ्वी पर फैलने वाली छोटी वनस्पति है। जिसके पत्ते सुगन्धित और दन्तुर होते है इसी का एक भेद पीपरमैंन्ट या Mentha piperatta है।

विश्लेषण—पत्रों में एक उड़न शील तेल है जिसे ऊर्ध्वपातन द्वारा निकालते हैं यह फीका पीला पुदीने की गंधका और पुराना होने पर काला सा हो जाता है। गुण मद्यसार [६०%] में घुलता है ।

योग—"पुदीनातेल" आधा से ३ बूंद, "पुदीनाअर्क" आधा से २ औंस । "पुदीनासत्व" Menthol पुदीने के तेल को अत्यधिक शीत करनेसे प्राप्त होता है। मात्रा—आधा से २ ग्रेन "पुदीनासत्व तेल या प्रलेप"-पुदीना सत्व को ५ गुना जैतून तेल या ५० गुना शुद्ध वैसलीन में मिलाकर बनावें ।

प्रभावतथा बहिः प्रयोग—पुदीना सत्वको त्वचा पर लगाने से स्थानिक संज्ञा मन्द हो जाती है इसलिये अनेक वातिक शूलों में यथा पार्श्व कटि और संधियों की शूलों में पुदीना सत्वके तेल या प्रलेप लगाए जाते हैं। कृमिदन्त की

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शूल हटाने के लिये इसका स्फटिक या उपरोक्त कर्पूरादि बिन्दु में भींगा हुआ फोया रखा जाता है। इसके शोथ हर होने के कारण प्रतिश्याय गलशोथ आदि में इसको सूँघा जाता या इसके बाष्प दिये जाते हैं। कर्पूर के समान यह भी कृमिहर है। अतः दद्रु, पामा आदि कण्डूयुक्त रोगों में चूर्ण, प्रलेप या द्रावों में कर्पूर के समान पुदीना सत्व भी डाला जाता है

अन्तः प्रयोग—कर्पूर के समान आमाशय शूल, आंत्रशूल, वमन, आध्मान आदि को हटाता है प्रवाहिका, आमातिसार, विशूचिका में इसके योग दिये जाते हैं। रोचक दीपक होने के कारण पुदीना की चटनी खाई जाती है।

२२-सूरण*नाम हिन्दी* - जिमीकन्द। लैटिन Amorphophallus Companulotus.

प्राप्तितथा वर्णन—एक बहुवार्षिक क्षुप जो सर्वत्र होता है डेढ़ से ढाई फिट ऊंचा होता है। नरम तने के सिरे पर पत्ते निकलते हैं। इसके मूल में बड़े २ कन्द जिनका पृष्ठ खुरदरा, उभारों वाला होता है लगता है। यह कन्द औषधियों में काम आता है। इसके टुकड़ों को घृत में भून कर चूर्ण कर लिया जाता है।

योग-स्वल्प सूरणवटी—मरिच-१, शुण्ठी-२, चित्रमूल-३, सूरण-८, गुड़, सर्व तुल्य। मात्रा—आधा से १ तोला। रोग- मन्दाग्नि अर्शस्, गुल्म।

गुण—रस-कटुकषाय, गुण-लघु, वीर्य-उष्ण, दोष-कफ वातहर, पित्तवर्धक, पाक-कटु।

प्रभावतथा उपयोग—यह दीपक है तथा आंतों और गुदा की श्लेष्मा जन्य शोथ को हटाता है वात कफार्शस् के लिये यह उपयोगी औषधी है। इसका शाक और अचार भी बनाकर खाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रेचक वर्ग

१ हरीतकी-नाम-हिन्दी-हरड़। इंग्लिश Chelbulic Myrobalons लैटिन Termlnalia Chebula.

प्राप्ति तथा वर्णन—उत्तरीय तथा मध्य भारत, बंगाल, बम्बई प्रान्तों में होती है। एक बड़ा, ऊंचा पेड़ होता है। पत्र ३" से ८" लम्बा अण्डाकृति, फूल हलके श्वेत पीले, पत्र के अन्त में पुष्पनाल पर लगी छोटी २ पुष्प दंडिकाओं पर लगते हैं, फल १" से २" लम्बा, अंडाकृति, सूखने पर काला भूरा सा होता है (बड़ी, भारी, छोटी गुठली अधिक गुदे वाली हरड़ औषधी में काम आती हैं। कच्चे फल को सुखा लिया जाय तो उन्हें छोटी या जंगी हरड़ कहते हैं।

विश्लेषण—इनमें ४५ % Gallotanicacid होता है

योग-पथ्यादि कषाय—हरीतकी, आमलकी, रेवन्द चीनी, आरग्वध मज्जा, त्रिवृत्त, स्वर्णपत्री, कटुकी प्रत्येक समान। यबकूट कर रखें। इसके १ या २ तोले, का कषाय बना कर दें। रोग मलबन्ध।

हरीतकी खंड—त्रिफला, चतुर्जातक, त्रिकटु, अजमोदा, मधुरिका, शतपुष्पा, मुस्ता, लवंग प्रत्येक १, त्रिवृत्, स्वर्ण पुष्पी प्रत्येक ८, हरीतकी ३१, सिता,सर्वतुल्य। अवलेह बनावें। मात्रा-१ तोला। रोग-अम्लपित्त, अर्शस, उदरशूल, मलबन्ध।

पंचसकार चूर्ण—सैंधव, स्वर्णमुखी-शुण्ठी, शतपुष्पा, शिवा प्रत्येक समान। मात्रा-४ से ८ माशे। रोग-मलबन्ध।

षड़वानल चूर्ण—सैंधव १, पिप्पलीमूल २, पिप्पली ३, चव्य ४, चित्रकमूल ५, शुण्ठी ६, हरीतकी ७ भाग। चूर्ण बनावें। मात्रा-२ से ४ माशे रोग-मन्दाग्नि, प्लीहा, यकृतवृद्धि, आमवात, वातकफार्शस्।

अभयारिष्ट—हरीतकी, आमलकी प्रत्येक १६, जल ५१२, चतुर्थांश कषाय कर, इन्द्रवारुणी, चित्रक, कपित्थ, पाठा प्रत्येक २, गुण-१०० भाग डाल कर अरिष्ट बनावें। मात्रा-२ से ८ ड्राम रोग-अर्शस्, ग्रहणीरोग, पांडु, प्लीहा वृद्धि, कामला, मन्दाग्नि, मलबन्ध, हृदयरोग। भै. र.

हरीतकी का मुरब्बा या खण्ड—ताजे हरे फलों को चूने के क्षारीय जल में १,२ दिन रख, साधारण जल में उबाल; नरम कर, काष्ट की शलाका से सछिद्र कर दुगनी या तिगुनी खण्ड के पानक में डालें। जब फल पानी छोड़दें तो इसे अग्नि पर रख जल भाग उड़ा दें।

गुण—रस-लवण रस को छोड़कर सब रस होते हैं, गुण-लघुरूक्ष, वीर्य-उष्ण; पाक-मधुर, दोष-विशेशतः पित्त कफहर, सामान्यतः त्रिदोष हर हैं।

प्रभाव—आमाशय पर अग्नि दीपक, आंतों पर ग्राही तथा रेचक दोनों ही प्रभाव होते हैं। यकृत् में संचित हुई पित्त को निकालता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मल भूत पित्त को शरीर से बाहर निकालने के कारण यह यकृत् प्लीहा वृद्धि हर, त्वग् रोगहर, हृद्य, नेत्र्य, स्वास्थ्य वर्धक है।

उपयोग—मुखव्रण, दन्तमांस शोथ, गलशोथ में हरीतकी कषाय के गण्डूष लिये जाते तथा फल के टुकड़ों को मुख में रख कर चबाया जाता है। मलबन्ध और यकृत् के रोगों के कारण मन्दाग्नि हो तो हरीतकी के योग दिये जाते हैं। शरीर में बढ़ी हुई पित्त की मात्रा को निकालने, मलबन्ध को हटाने के लिये हरीतकी का चूर्ण या २, ३ हरीतकी का उष्ण कषाय थोड़ा मधुरिका के साथ मिलाकर दिया जाता है। प्रवाहिका में हरीतकी चूर्ण १०, १५ ग्रेन थोड़े जीरक चूर्ण, विल्वचूर्ण या लवणभास्कर चूर्ण के साथ मिलाकर घंटे या दो घंटे के फरक से तब तक दिया जाता है, जब तक आंव आनी बन्द न हो जाय फिर इसी मात्रा को ४-४ घंटे पीछे देते हैं।

यकृत् तथा प्लीहा वृद्धि के लिये हरीतकी का गुड़के साथ या गुडूची आदि पित्त शोधक औषधियों के साथ प्रयोग किया जाता है। जलोदर तथा श्वयथु में हरीतकी को पुनर्नवा, शुण्ठी, देवदारु, गुडूची, के साथ कषाय बना कर दिया जाता है। अर्शस् रोग के लिये हरीतकीका विशेषतः प्रयोग होता है। अभयारिष्ट या हरीतकी, गुडूची और धान्यक का कषाय गुड़ या मधु के साथ दे सकते हैं। पांडु, कामला और रक्तपित्त रोगों में यकृत से मलभूत पित्त को निकालने के लिये हरीतकी बहुत उपयोगी है। रक्तार्शस् रक्तपित्त में लघु हरीतकी चूर्ण शहद से देना चाहिये।

आमवात गृध्रसी आदि वात शूलों में हरीतकी को गुडूची शुण्ठी; कर्चूर, देवदारु, अजमोदा, आदि वातहर औषधियों के साथ कषाय या चूर्ण के रूप में देने से विशेष लाभ होता है। वातरक्त रोग में कण्ड, दद्रु आदि में हरीतकी का स्वयं या गुडूची के साथ या अभयारिष्ट के रूपमें सेवन कराया जाता है। पलित रोग में हरीतकी का गुड़ के साथ या अन्य योगों के रूप में सेवन करने से बाल काले हो जाते हैं। शुक्रमेह के लिये भी हरीतकी लाभ दायक है। स्वस्थ पुरुषों के स्वास्थ्य को कायम रखने के लिये वर्षाऋतु में सैंधव, शरद में खाण्ड, हेमन्त में शुण्ठी; शिशिर में पिप्पली, वसन्त में मधु और ग्रीष्म में गुड़ के साथ हरीतकी खानी चाहिये,

२ *आमलकी नाम-हिन्दी*—आमला । इंग्लिश Emlbic myrobalan लैटिन—Emlbic officinalis

भाति तथा वर्णन—भारत के गरम प्रदेशों में मिलने वाला मध्यमाकार वृक्ष है। त्वक, पतली हल्की श्वेत; पत्ते-पंख के समान, हल्के, हरे पत्तियाँ पत्र नालके दोनों ओर आमने सामने। दण्डिका रहित; फल ६ फांकों वाला, भूमंडलाकार, हरा; पीला या कुछ लाल, बड़ाफल औषधियों में काम आता है।

विश्लेषण—इसमें Gallotannic acid होता है।

योग-आमलक्याद्यवलेह—आमलकी स्वरस-२५६, भाग खांड-५०, पानक बना, पिप्पली-१६, द्राक्षा-१६, मधुयष्टी-२, शुंठी-२; वंशलोचन-२, मधु १६ भाग डालकर अवलेह बनावें। मात्रा—१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

से ४ ड्राम। रोग-हृदयरोग, पांडु, कामला, पित्तरोग; शुक्रमेह।

च्यवनप्राश—दशमूल-१०, पिप्पली, कर्कटशृंगी, द्राक्षा, गुडूची, अभया, वासा, नीलोत्पल, शठी, पुष्करमूल, मुस्ता, भूम्यामलकी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, विदारी, पुनर्नवा, अगुरु, चन्दन, एला, काकनाला प्रत्येक-१, अष्टवर्ग ८, (इसके अभाव में शतावरी, विदारी अश्वगन्धा, वराही प्रत्येक, २) आमलकी बड़ी संख्यामें ५००, जल २५६ भाग, अष्टमांश कषाय कर, इसी कषाय में पोटली में बांध आमलकी फलों को उबालें, मर्दन कर कपड़छान कर, ६ भाग घृत और ६ भाग तेल में भर्जित करें। फिर कषायमें ५० भाग खांड डाल पानक बनावें। इसमें उपरोक्त भर्जित आमलकी कल्क तथा पिप्पली २, बंशलोचन ८ चतुर्जातक मिलित १ भाग, मिलादें। पीछेसे मधु ६ भाग मिलावें। मात्रा—आधा से २ तोला। रोग-बालकों की निर्बलता, क्षय, हृदय रोग, वार्धक्य, रोगजन्यनिर्बलता, शुक्रनैर्बल्य चिरस्थायी कास श्वास। च्यवनप्राश कलई किये बर्तन में बनाया जाता है।

धात्र्यरिष्ट—आमलकी स्वरस [२ हजारबड़े आमलों का,] पिप्पली १६ तोला, खाण्ड ६ सेर। मधु-रसका $\frac{१}{८}$ भाग मिलाकर आसव बनावें। मात्रा—२ से ८ ड्राम। रोग-कामला, हृदरोग पित्तरोग।

आमलकीखण्ड—कूष्माण्ड-५० भाग को ८ भाग घृत में भूनले। आमलकी स्वरस-१६, कूष्माण्ड स्वरस-१६; खांड-१६, पानक बना उपरोक्त बना कूष्मांड डालदें, पाक हो जानेपर पिप्पली जीरक, शुण्ठी, प्रत्येक २, मरिच १, धान्यक तालीश, चतुर्जातक, मुस्ता प्रत्येक चौथाई मधु ८ भाग डालदें। मात्रा—आधा से १ तोला। रोग—अम्लपित्त, पित्तजन्यउदरशूल, रक्तपित्त।

आमलकी खण्ड (मुरब्बा)—हरीतकी के समान आमलकी का भी खण्ड बनाया जाता है।

आमलकीतैल—आमलकी स्वरस-४, तेल-१, तेल बनावे। सुगन्धि के लिये इसमें धान्यक, चंदन, डाल सकते हैं। रोग--पित्तजन्य शिरः शूल।

गुण—रस--लवण को छोड़ शेष पञ्चरस-गुण--रूक्ष, वीर्य--शीत, पाक--कटु, दोष-पित्त कफ हर साधारणतः त्रिदोष हर है।

प्रभाव—यह बहिः तथा अन्तः प्रयोग में शीत है, पित्तको शांतकरती है। महास्रोतस पर शामक और रेचक प्रभाव होता है। मूत्रमार्ग में भी पित्त प्रकोप को शान्त करती है।

उपयोग—नासा रक्त स्राव में तथा शिरोऽभिघात के कारण शिर में रक्त संचय हो जाय तो आमलकी के कल्क का लेप करते हैं तथा इसके शीत कषायकी नासिका में पिचकारी देते हैं। नेत्रों में से रक्त संचय को हटाने के लिये शीत आमलकी कषाय से धोया जाता है। उष्ण ऋतु में शिर के रक्त संचय को हटाने के लिये आमलकी तेल लगाया जाता है।

आमाशय में पित्त के प्रकोप के कारण अम्ल पित्त हो जाने पर प्रातःकाल आमलकी खंड दिया जाता है या भोजन के पीछे आधा तोला आमलकी चूर्ण दिया जाता है। अन्य रक्त प्रदर, रक्तार्श, नासारक्त स्राव, पूयमेह

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इत्यादि पित्त प्रकोप जन्य रोगों में आमलकी के योग दिये जाते हैं। केवल आमलकी और द्राक्षा का कषाय भी खांड़ या मिश्री डालकर दे सकते हैं। पित्त के प्रकोप से हृद्कम्प और हृदशूल हो तो आमलकी के योग खिलाने चाहिये।

३ *विभीतकी नाम हिन्दी*—बहेड़ा। इंग्लिश Belerie myrobalans लैटिन Terminalia Belerica.

प्राप्ति तथा वर्णन सब स्थानों पर पाया ज़ाता है। ६०' से १००' ऊंचा वृक्ष, तना ६' से १०' ऊंचा, पत्ते चपटे, अंडाकृति, ३" से ८" लम्बे, २" से ३" चौड़े, फूल, मैले श्वेत या हरे, पीले, गुच्छों में, फल, १" लम्बा, अंडाकृति, मखमल सा चिकना होता है।

विश्लेषण—इसमें Gellotannic acid तथा हरा पीला, सा तेल होता है।

गुण—रस-तिक्त कषाय, गुण-रूक्ष, वीर्य-उष्ण, पाक-मधुर, दोष-कफपित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह ग्राही तथा कुछ रेचक होता है। गलशोथ, कण्ठशोथ में विभीतकी, दाड़िम फल त्वक्, यवक्षार, पिप्पली समान भाग मिला गुड़ के साथ गोली बनाचूसने के लिये दी जाती है।

त्रिफला—'हरीतकी' 'बिभीतकी' और 'आमलकी' तीनों की गुठलियां पृथक् कर समान भाग मिला देने से 'त्रिफला' कहाता है।

योग-त्रिफलाभस्म प्रलेप—बन्द बर्तन में जलाकर बनाई त्रिफला की भस्म १, वैजलीन ४ भाग मिलाकर मलहम बनावें। रोग-व्रण रोपक है।

त्रिफला घृत—त्रिफला क्वाथ ४, घृत १, दुग्ध १, त्रिफला कल्क चौथाई भाग। घृत बनावें। रोग—नेत्ररोग।

महा त्रैफलघृत—त्रिफला स्वरस ३, भृङ्गराज स्वरस, वासा स्वरस, शतावरी स्वरस; गुडूची स्वरस आमलकी स्वरस, अजाक्षीर प्रत्येक १ भाग, घृत २ भाग पिप्पली, द्राक्षा, त्रिफला, नीलोत्पल, मधुयष्टी गुडूची, कण्टकारी, क्षीरकाकोली समान २ मिलाकर मिलित चौथाई भाग लेकर घृत बनावें। मात्रा-१ से ४ चमचे। रोग–सर्व नेत्ररोग।

त्रिफलारिष्ट—त्रिफला ३, जीरक; चित्रक, पिप्पली लोहचूर्ण प्रत्येक १, जल ५१२, चतुर्थांश कषाय कर गुड़ १००, मधु ८ भाग डालकर अरिष्ट बनावें मात्रा-२ से ८ ड्राम। रोग-पांडु, श्वयथु, अर्शस्।

त्रिफलादि क्वाथ—त्रिफला, गुडूची; वासा, किराततिक्ता, कटुकी; निम्ब समान २। मात्रा-१ से ४ औंस। रोग-कामला, पांडु; रक्तपित्त अम्लपित्त, त्वक्रोग, ज्वर।

त्रिफला गुग्गुलु—त्रिफला ३, पिप्पली २, गुग्गुल ५। ५-५ यव की गोलियां बनावे। मात्रा-२ से ४ गोली अनुपान-त्रिफला कषाय रोग-व्रण, विद्रधि, नाड़ीव्रण गंडमाला।

त्रिफलावलेह—त्रिफला चूर्ण को पर्याप्त बादाम रोगन और मधु में मिला ८ दिन तक बन्द रखकर काम में लाया जाता है। मात्रा-१ से ४ चमचे। रोग-चिरस्थायी, मलबन्ध।

त्रिफलादि चूर्ण—त्रिफला ४; मधुयष्टी २; लोहभस्म १ भाग। मात्रा-१० से ३० यव; मधु

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

घृत से पिलावें। रोग-पांडु; कामला अर्शस्, नेत्र रोग, पलित रोग।

प्रभावतथा उपयोग—त्रिफला विषम ज्वर हर कफ पित्तहर, मल स्रंसक है। शरीरसे मल भूत पित्तका निर्हरण करती है और त्वचा; नेत्र, केश, मूत्र के रोगों को हटाती है।

व्रणोंको रोपण के लिये तथा फिरंग व्रणों पर त्रिफला भस्म प्रलेप लगाई जाती है। मुखपाक, मुखस्फोट में त्रिफला कषाय के गण्डूष और त्रिफलाका सेवन करना चाहिये पूयमेह में त्रिफला कषाय में थोड़ासा कत्था तथा फिटकरी डाल कुछ दिन उत्तर बस्ति देते हैं। अम्लपित्त में प्रातः काल उपरोक्त त्रिफलादि काथ में मधु डालकर पिलावें या त्रिफलादि चूर्ण मधु से चटावें। चिरस्थायी मलबन्ध के लिये त्रिफला के चूर्ण, कषाय या अवलेह का निरन्तर सेवन करना चाहिये। पित्त गुल्म जैसे (Appendicitis) में त्रिफला हर त्रिफलादि कषाय, त्रिफला, गुग्गुलका निरंतर सेवन कराया जाय और अन्य भोजनों को कमकर दूध का विशेष सेवन कराया जाय तो बहुत लाभ होता है। यकृत् और प्लीहा के रोगों के लिये त्रिफलादि चूर्ण या अन्य त्रिफला के योग विशेष लाभ दायक है। कामला में यकृत से पित्त का निर्हरण करने के लिये त्रिफला कषाय या त्रिफलादि कषाय दें। विषमज्वर के लिये त्रिफला काथ में गुड़ या मधु डाल कर कुछ दिन पिलाने से ज्वर जाता रहता है मेह रोग जैसे शुक्रमेह; रक्तमेह, पूयमेह, मधुमेह बहुमेह, आदिमें त्रिफला के चूर्ण, कषाय विशेष उपकारक होते हैं। संभवतः यकृत् के शोधक होने के कारण यह मेह रोग हर होती है चिरस्थायी त्वक् रोगों में तथ चिरस्थायी नेत्र रोगों में त्रिफलाके चूर्ण, गुग्गुल, घृत-शाक आदिका कुछ काल निरन्तर सेवन करने से विशेष लाभ होता है। शरीर को रोगों से बचाने और स्वास्थ की वृद्धि के लिये भी त्रिफला का सेवन किया जाता है।

४ आरग्वध-नाम-हिन्दी—अमलतास । इंग्लिश Purging Cassia लैटिन Cassia fistula.

प्राप्तितथा वर्णन—यह मध्यमाकार वृक्ष सर्वत्र होता है। शाखायें पतली, पत्र १२" से १८" लम्बे जिन पर ४ से ८ तक जोड़ियां पत्तियों की होती हैं, फूल लम्बे गुच्छों में सुन्दर पीले रंग के बहुत अधिक संख्या में लगते हैं, फली नलिका कार १', २' लम्बी, १" मोटी काली भूरी। इन फलियों का गूदा और वृक्ष के त्वक् पत्र पुष्प औषधियों में काम आते हैं।

विश्लेषण-रसायनिक-फली के गूदों में एक विरेचक तत्व होता है जो Cathartic acid से मिलता है।

योग-आरग्वध कषाय—फली के गूदे को जल में उबाल कर बनावें। मात्रा २ से ४ औंस।

आरग्वध रस क्रिया—कषाय को काढ़ा करके बनावें। मात्रा ५ से २० यव।

आरग्वधादि पानक—आरग्वध १, स्वर्णपत्री १, द्राक्षा आधा, मधुरिका आधा, बनप्सा आधा भाग। कषाय कर समान खाण्ड डालकर पानक बनावें। मात्रा-आधा से २ औंस।

आरग्वधादि तेल-आरग्वध, चक्रमर्द करंज, वासा गुडूची, मदनफल, दोनों हरिद्रा समान २-३-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सके ४ भाग कषाय में १ भाग तेल मिलावें।
राग-त्वक् रोग।

गुण—गुण-गुरु, रस-मधुर, वीर्य-शीत, पाक-मधुर, दोष-कफ पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—आरग्वध त्वक् और पत्र त्वच्य होते हैं तथा फलकी मज्जा सुख विरेचक होती है। त्वक् रोगों में आरग्वध तेल या पत्र के रस को सिरके में मिलाकर लगाते हैं। कंडू, दद्रु, सिध्म रोगों में इसके पत्तों के रस को सिरके या तक्र में पीसकर शरीर पर उबटन दिया जाता है। फलियों के दो चार ड्राम गूदे को जल में मिला गरम कर खाने से हल्का रेचन होता है। बालकों, गर्भिणी स्त्रियों अर्शस् रोगियों हृद्रोगियों के लिये उत्तम रेचक है। आरग्वध, कटुकी, एन्द्रीमूल, दन्तीमूल त्वक्-द्राक्षा, त्रिफला समान २ की रस क्रिया कर पीतमूली रसक्रिया के साथ मिला रेचक बटी बना सकते हैं।

५ एरण्ड नाम—हिन्दी—एरंड। इंग्लिश Castor plant लैटिन Ricinus Communis.

प्राप्ति तथा वर्णन—यह सदा हरा छोटे आकार का वृक्ष सर्वत्र पाया जाता है तथा बोया जाता है। पत्ते १' २' नोकीले पत्तों में फटे हुये, फलपर कांटे जैसे रोम होते हैं, बीज चमकीले, धारीदार, अंडाकृति चिकने। छोटे बीजों वाला वृक्ष अच्छा होता है। बीजों का तेल, मूल तथा पत्र औषधियों में काम आते है।

विश्लेषण रसायनिक—बीजों में लगभग ४० % स्थिर तेल होता है जो मद्यसार में विलेय है। बीजों में एक Albuminoid Poison है जिसके कारण इसके बीजोंका सेवन घातक कहा जाता है। बीजों को बिना गरम किये दबाकर निकाला हुआ तेल श्रेष्ट होता है। तेल की मात्रा-१ से ८ ड्राम। १ वर्ष से न्यून के बालक के लिये १ ड्राम।

गुण—रस-मधुर, गुण-गुरु, वीर्य-उष्ण पाक-कटु, दोष-वात कफ हर है।

प्रभाव तथा उपयोग—एरंड तेल के देने के ५-६ घंटे पीछे विरेचन होता है जो अधिक द्रव नहीं होता। माता के दूध के प्रभाव द्वारा बच्चे पर भी विरेचक प्रभाव हो जाता है तथा पेट पर मलने या वस्ति द्वारा देने से भी विरेचन होता है। एरडमूल त्वक् वातहर है। नेत्र में कोई कठोर कण गिर जावें तो इसके तेल की बूंदें डालने से आराम होजाता है। संधि,गुदा, अंड आदि की शोथों पर एरंड के पत्तों का गरम कल्क बांधते हैं। पत्तों को गरम कर स्तन पर बांधे तो दूध बढ़ जाता है। वस्ति प्रदेश पर बांधे तो आर्तव खुलकर आता है।

बालक, वृद्ध, गर्भिणी, अर्शोरोगी, गुद्ररोगी उदर शूल रोगी के लिये एरंड तेल का रेचन उत्तम है। शूल, आध्मान आदि में इसके तेल के अन्दर अजमोदा आदि दीपक द्रव्यों के तेलों की कुछ बूंदें मिला सकते हैं। प्रवाहिका तथा आंत्रशूल के लिये बबूल निर्यास के जल में बने घोल में थोड़ा २ तेल खरल कर तेलका घोल बना लिया जाता है। इस घोल में अजमोदा आदि के तेल या अर्क, अहिफेनासब; हिंग्वासब उचित मात्रा में मिला सकते हैं। प्रवाहिका में इस घोल को थोड़ी २ देरके बाद तब तक पिलाया जाता है जब तक आंत्र

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आनी बन्द न हो जाय। उसके पोछे फिर इसकी दिन में दो तीन मात्रा दी जाती है। आमवात, कटिशूल; गृध्रसी आदि बात शूलों में एरड तेल का रेचन देकर एरंडमूल, शुंठी, गुडूची गोक्षुर का कषाय, यवक्षार मिलाकर पिलाया जाता है।

६ *पीतमूली नाम-हिन्दी*—रेवन्दचीनी । इंग्लिश Rhubarb लैटिन Rhei Rhizoma

प्राप्ति तथा वर्णन—हिमालय पर १० हजार फीट की ऊंचाई पर होती है। इसका क्षुप २' से ६' ऊंचा, तना दृढ़ पत्र बहुत बड़े पुष्प की डालियां २', ३' लम्बी, छोटे २ गहरे जामनी फूल, फल आधा इंच लम्बा, गोल, बैंजनी रंगका मूल मोटी, दृढ़; गहरी भूरी, पीली, स्वाद में कड़वी मूल ओषधियों में काम आती है चीन तथा बाहर से आई पीतमूली श्रेष्ट होती है।

विश्लेषण—इसमें दो विरेचक तत्व होते हैं। एक (Chrysarobin) तथा दूसरा। Chrysophanic acid.

योग-पीत मूली चूर्ण—१५ से ३० यव। 'पीत मूली रस क्रिया-२ से १० यव।

पीत मूली वटिका—पीतमूली रस क्रिया, कुमारी सार समान रूमान में थोड़ा शुण्ठी चूर्ण मिला कर गोली बनावें। मात्रा-४ से १० यव। रोग-मलबन्ध, यकृत् रोग।

प्राप्ति तथा उपयोग—यकृत से मलभूतपित्त को निकालती है। आंतों की ग्रन्थियो के स्राव तथा आंतों की प्रेरक गति को बढ़ाती है अतः रेचक है। चूर्ण के १५ से ३० ग्रेन की मात्रा में देने से ५ घंटे बाद पतला पीले रंग का रेचन होता है। पीलेपन के कारण कुछ पित्त और कुछ ओषधि का अपना रंग होता है। यह स्तन्य और मूत्र के द्वारा भी निकलती है जिससे मूत्र पीला हो जाता है तथा दूध कुछ कड़वा हो जाता है। बालकों के अजीर्ण, अतिसार में इसका चूर्ण अजमोदा, शतपुष्पा आदि के अर्क में मिला कर दिया जाता है। इसकी रस क्रिया या उसारारेवन्द से अनेक मलबंध हर गोलियां बनाई जती हैं।

७ *स्वर्णपत्री नाम-हिन्दी*—सनाय। इंग्लिश Sennalis, Senna लेटिन Cassia Lanccolata

प्राप्ति तथा वर्णन—बम्बई तथा दक्षिण भारत में होने वाला एक क्षुप, एक पत्ते पर ५ से ८ पत्तियों के युगल रहते हैं, पत्ती १," २" लम्बी, भालाकार, नोकदार, पतली, चिकनी, ऊपर हरी, नीचे धूंधली होती है फली कुछ लम्बी, चौड़ी, मुड़ी हुई, और दोनों सिरों पर गोल होती है। पत्तियां तथा फलियां ओषधियों में काम आती हैं।

विश्लेषण—पत्तों में एक(Glucoside) होता है जिसे (oathartin) कहते हैं।

योग-स्वर्णपत्री फाएट—स्वर्णपत्री-१ तो०, द्राक्षा २ तोला, शुण्ठी-२ मा०, जल-आधसेर। कषाय या फ़ांट बनावें। मात्रा-२ से ४ औंस। दूध में डालकर पिलावें। रोग-मलबंध।

गुण—रस-मधुर, गुण-सर, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-वातकफ हर।

प्रभाव तथा उपयोग—आंतों के स्राव तथा प्रेरक गति को बढ़ाती है। इसके देने से ढ़ीले, पीले, लाल रंग के प्रवाहण होते हैं। मल के आते

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समय मरोड़ भी उठता है। बालकों को यह दूध के साथ सुगमता से दी जा सकती है। गर्भिणी या अर्शोरोगी को नहीं देनी चाहिये।

८ इन्द्रवारुणी नाम-हिन्दी—इन्द्रायण। इंग्लिश Colocynth लैटिन Citrullus Colocynthis.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र, विशेषतः पंजाब के उत्तर पश्चिम प्रदेशों में एक लम्बी बेल होती है। पत्ते १॥" से ३" लंबे, आकार में तरबूज के पत्तोंके समान, फूल हलके पीले, फल २॥" से ३" व्यास का चिकना, श्वेत, पीला, गूदे के बीच में बीज होते हैं। बीज तथा त्वग् रहित गूदा, मूल और बीजों का तेल औषधियों में काम आते हैं।

विश्लेषण—इसमें एक (Glucoside)१४ % है जो (colocynthis) कहाता है। बीजों में १७ % तेल होता है। बीजों को धूप में गरम कर, थोड़ी देर पानी में उबाल, मसल कर उनके छिलके पृथक् कर, दबाकर तेल निकाल लिया जाता है।

योग-ऐन्द्रीफलमूलचूर्ण—२ से १५ ग्रेन। ऐन्द्री रस क्रिया-१ से ४ ग्रेन।

ऐन्द्रीवटी--ऐन्द्री चूर्ण या रस क्रिया, कुमारीसार समान २ थोड़ा शुण्ठी चूर्ण मिला गोली बनावें मात्रा-४ से १० यव। रोग-मलबंध, यकृत रोग।

गुण—रस-तिक्त, गुण-लघुसर, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-कफ़ पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—इसके मूल तथा फल का स्थानिक प्रभाव उष्ण तथा क्षोभक होता है। आंतों के लिये रेचक है। कोष्ठ की शिराओं में अधिक रक्त संचय होतो यह उसे कम करती है। यकृत् को उत्तेजित कर पित्त को निकालती है।

मूत्ररोध तथा आर्तवरोध में मूल या फल के कल्क को वस्ति प्रदेश पर मला जाता है। कष्टार्तव में इसकी वर्ति योनि मार्ग में रखने से आर्तव होता है।

ऐन्द्री बीज तेल के मलने से कहा जाता है कि बाल काले तथा लम्बे हो जाते हैं। यकृतवृद्धि जलोदर, श्वयथु, रोगों में जब द्रव भाग का शरीर से निकालना अभीष्ट हो तब ऐन्द्री चूर्ण या इसकी रसक्रिया की गोली दी जाती है। फिरंग रोग में इसका विरेचन विशेष लाभदायक है।

९ कुमारी-नाम-हिन्दी—घीकुमार। इंग्लिश(Aloes) लैटिन (Aloe Barbadensis)

प्राप्तितथा वर्णन—यह सर्वत्र बोया जाता है २॥' ऊंचा क्षुप होता है। पत्ते दलदार मोटे अन्दर की ओर नतोदर, बाहरकी ओर उन्नतोदर आगे नौकीले दोनों किनारों पर मुड़े हुये छोटे २ कांटे से युक्त, हरे या कुछ लालिमा युक्त, पत्तों के बीच में फूलों की लम्बी मंजरी निकलती है।

विश्लेषण—इसमें (Aloin) नामक निर्गन्ध, तिक्त क्रिया शीलतत्व होता है। स्वरस को मद्यसार में डाल, उबाल, छान, स्फटिकीकरण द्वारा बनाया जाता है। यह बाजार में फीके, पीले, तिक्त, निर्गन्ध चूर्ण के रूप में मिलता है तथा मद्यसार में घुल जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

योगकुमारी रसक्रिया—२ से ८ यव। शुण्ठी, त्वक कारुष्कर चूर्ण आदि किसी एक के साथ मिलाकर गोलियां बनाली जाती हैं।

रजः प्रवर्तनीवटी—कुमारीसार--२, कासीस--१, हिंगु--१, टंकण १ भाग मिलाकर गोली बनावें मात्रा—२ से १० यव। रोग—कष्टार्तव।

नोट—(इसमें गाजर बीज चूर्ण १ अशोक त्वक १ भाग भी मिला सकते हैं) (भै० र०)

कुमार्यासव—कुमारी स्वरस-२५६, विजयाबीज २५, गुड़-१००, जल-२५६,। उबाल चतुर्थांश कषाय कर छानलें। जातीफल, लवंग, कंकोल, जटामांसी, चव्य, चित्रक, जावित्री, कर्कटश्रृंगी, बिभीतकी, पुष्करमूल, प्रत्येक १, ताम्रभस्म-आधा, लोहभस्म-आधा, धातकी-१६, मधु-६४, भाग} डालकर आसव बनावें। मात्रा—२ से ८ ड्राम। रोग—प्लीहा यकृत, वृद्धि, जलोदर, अर्शस्, कास, अपस्मार, कष्टार्तव, आंत्रशूल।

गुण—रस-तिक्त, गुण-सर वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष-त्रिदोषहर।

प्रभावतथा उपयोग—अग्नि दीपक है। यकृत को उत्तेजित करके पित्त को निकालती और आंतों को उत्तेजित करके विरेचन लाती है। गर्भाशय के लिये आर्तव प्रवर्तक है। वस्ति द्वारा गुदा में दें तो गुद कृमियों के लिये घातक है।

नेत्र शोथ में कुमारीसार को अहिफेन और स्फटिकी के साथ मिलाकर पलकों के ऊपर तथा अन्दर भी लगावें तो शोथ बैठ जाती है। गुद कृमियों के लिये इसे गरम जल में घोल कर छोटी पिचकारी से गुदा में डाल दिया जाता है। यकृत, प्लीहा के रोगोंमें कुमार्यासव या २-३ औंस कुमारी स्वरस में थोड़ा नमक डाल, उबाल कर, छानकर, प्रातः काल पिलाया जाता है। चिरस्थायी मलबन्ध में इस की बनी गोलियां तथा कष्टार्तव के लिये इसका विशेष प्रयोग किया जाता है। कुमारी रस में खांड डालकर उसका पाक बना सकते हैं।

१०—तृवृत नाम हिन्दी-निशोथ या त्रिवी। इंलिश Turpeth लैटिन Ipomoea turpethum

प्राप्तितथावर्णन—यह एक बड़ी चढ़ने वाली बेल है। तना दृढ़, चतुष्कोण, क्षीरयुक्त होता है। पत्ते पान जैसे लम्बे, अंडाकृति, २ से ५ इंच लम्बे, फूल घंटाकार, श्वेत, फल १" व्यासका मूलआर्द्रावस्था में क्षीर युक्त, सूख जाने पर दूध राल के सदृश दीखता है। लालिमायुक्त श्वेत मूल औषधियों में काम आती है।

विश्लेषण—इसमें (Glucoside) के समान एक Resin होता है जिसे Turpentine कहते हैं। Hydrochloric acid की उपस्थिति में Glucose और Turpetholic acid में फट जाता है।

योग १-तृवृतचूर्ण—४ से ८ माशे।

योग २-नाराचचूर्ण—तृवृत ४, खांड ४, सूक्ष्म एला १ भाग। मात्रा-२ से ८ माशे। रोग-मलबन्ध, उदरशूल।

नोट—इसका अवलेह भी बना सकते हैं

योग ३-अविपात्तिकरचूर्ण—त्रिकटु, त्रिफला, मुस्ता कृष्णलवण विडंग, एला, पत्रज प्रत्येक १ लवंग, सर्वतुल्य, तृवृत इस कुल से द्विगुण, खांड

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सर्वतुल्य । मात्रा—२ से ८ माशे । रोग—अम्लपित्त, मन्दाग्नि, अर्शस् ।

गुण—रस-मधुरकषाय, गुण-रूक्ष । वीर्य-उष्ण । पाक-कटु । दोष-कफपित्तहर ।

प्रभाव तथा उपयोग—आन्त्र तथा यकृत के लिये उत्तेजक और इस लिये रेचक है । इसके देने से कोई भी उपद्रव नहीं होता । ज्वर, कामला, श्वथु, रक्तपित्त, नेत्ररोग, मस्तिष्करोग, उदासीनरोग, त्वग् रोग तथा भिन्न भिन्न रक्तविकारों में इसके द्वारा विरेचन दिया जाता है ।

११—दन्ती नाम हिन्दी—जमालगोटा । इंगलिश Crotan. लैटन Croton Tiglium.

प्राप्ति तथा वर्णन—यह एक छोटा सदा हरा वृक्ष सर्वत्र होता है । पत्र २ से ४ इंच लम्बे, आगे से नोकीले तथा कुछ २ दन्तुर, फूलों के गुच्छे २ से ३ इंच लम्बे, शाखाओं के सिरों पर होते हैं । फूल पौन से १ इंच व्यास का, बीज आधा से $\frac{2}{3}$ इंच लम्बे अण्डाकार । इसकी मूल तथा बीज औषधियों में काम आते हैं । बीजों को दो दिन गोमय में रख निकाल, धो, छिलके तथा जिह्वा पृथक कर, घृत या दुग्ध में गरम कर, जम्बीर स्वरस में १ दिन रख कर उपयोग में लाये जाते हैं, या छिलके उतार जिह्वा पृथक कर नीबू के रस में पीस कर कोरे मट्टी के वर्तन पर लेप कर फिर औषधियों में काम में लाये जाते हैं ।

विश्लेषण—बीजों में हरा पीला दाहक गंधयुक्त ३० से ४०% तैल होता है इसे Croton Oil कहते हैं यह ईथर, मद्यसार, क्लोरोफार्म तथा जैतून के तेल में विलेय है । यह तीव्र क्षोभक तथा रेचक है ।

योग—इच्छा भेदी तथा नाराच रस (पारद प्रकरण में)

दन्त्यरिष्ट—दन्तीमूल, चित्रमूल, दशमूल, प्रत्येक एक भाग जल २५६ भाग चतुर्थांश कषाय करे, गुड़ १०० त्रिफला ३ तथा थोड़ी धातकी डाल कर अरिष्ट बनावें । रोग-मलबन्ध तथा अर्शस् । मात्रा २ से ८ ड्राम ।

गुण—रस-कटु, गुण-तीक्ष्णसर । वीर्य-उष्ण । पाक-कटु । दोष-वातकफहर । दन्तीबीज, अन्तः तथा बहि, प्रयोग में तीव्र क्षोभक है और आंतों के लिये तीव्र रेचक है । नेत्रशूल, मस्तकशूल, सूर्य्यावर्त आदि वात शूलों में दन्तीबीज का कल्क या इससे निकाले हुये तैल को ८ गुणा नारियल के तैल में मिला कर बनाया हुआ तैल थोड़ा सा लगा दिया जावे तो त्वचा पर लाली होकर या छाला पड़ कर दर्द शांत हो जाता है । संधिशोथ तथा पार्श्वशूल में भी इसका तैल मल सकते हैं । वृश्चिक दंश पर इसके बीज के कल्क से छाला देनेसे पीड़ा बन्द हो जाती है । उन्माद संन्यास रोग, सर्वाङ्ग श्वयथु, जलोदर में इच्छाभेदी रस या नाराच रस शीतल जल के अनुपान से दिये जाते हैं । इसके रेचन के पीछे प्रायः दही खिचड़ी दी जाती है । सर्पदष्ट रोगी को दन्तीबीज चूर्ण या इच्छाभेदी का रेचन देकर दन्ती बीज कल्क को नीबू स्वरस से घोट कर बनाई हुई वर्तिका का अंजन देने से विष नहीं चढ़ता । दन्तीबीज अधिक मात्रा में खा लेने से तीव्र रेचन और शूल हों तो इसके क्षोभ को हटाने के लिये दूध में घी डाल कर पिलाना चाहिये । चूने का पानी और नीबू का रस भी इसके क्षोभ को दूर कर देते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आंत्रकृमिहर द्रव्य ।

१—विडंग--नाम हिन्दी—वायविडंग । लैटिन Embelia Ribes । हिमालय के समीपस्थ प्रदेशों में एक बड़ी झाड़ी होती है। शाखायें लम्बी। पत्र ४-५ इञ्च लम्बे, जिनकी मध्य नाड़ी के दोनों ओर छोटी २ गांठें होती हैं। फूल छोटे २ श्वेत, पतली लम्बी डालियों में लगते हैं। फल छोटे २ किरमिज़ी रंग के, झुर्रीदार। ये औषधियों में काम आते हैं।

विश्लेषण—इसमें Embelic acid, Tannin एक स्थिर तैल और एक अस्थिरतैल होते हैं।

योग—विडंग चूर्ण ४ से १६ माशे (कृमियों के लिये)।

विडंग तैलः—विड़ंग, गन्धक, मनशिला समान २ [सम्मिलित] १ भाग, तैल ४, गोमूत्र १६ भाग। तैल बनावे। रोग-कण्ड, दद्रु, थूका, लिद्दा।

विडंगादि प्रलेप—बिड़ंग, चक्रमर्द, कुष्ठ, हरिद्रा, लवण, सर्षप समान २ चूर्ण कर सिरके से मिला लेते हैं। रोग-दद्रु, कण्डू, त्वग् रोग।

विडंगारिष्टः—बिडंग, पिप्पली मूल, कुटज, इन्द्रयव, पाठा, एलबालु, आमलकी, रास्ना प्रत्येक ५ जल २०४८ भाग, चतुर्थांश कषाय करे और धातकी २० मधु ३००, त्रिजातक, कांचनार लोध्र, प्रियंगु, १-१ भाग डाल कर बनावें। रोग-विद्रधि, भगन्दर, नाड़ीव्रण, गण्डमाला मात्रा—२-८ ड्राम।

गुण—रस-कटु, गुण-रुक्षलघु, वीर्य-उष्ण, पाक कटु, दोष-वात कफहर।

प्रभावतथाउपयोग--विडंग दीपक, पाचक, अधिकमात्रामें देनेसे आन्त्र कृमिहर और बहिः प्रयोग में त्वच्य है, इसलिये दीपक औषधियों में इसका प्रयोग होता है। आन्त्रकृमियों के लिये बिडंग चूर्ण कुछ काल मधु से चटाया जाता है। विशेषतः ब्रध्नकृमियों Tapeworms के लिये इसका चूर्ण थोड़े मठे के साथ रात को पिलाते और प्रातः एरण्ड तैल आदि का विरेचन देने से कृमि निकल जाते हैं। दद्रु, कण्डु, आदि त्वग् रोगों पर बिडंग को चक्रमर्द, कुष्ठ, करंज, हरिद्रा आदि से मिलाकर मला जाता है। त्वचा के रोगों यथा व्रण, भगंदर आदि में त्रिफला चूर्ण और लोहभस्म के साथ मिलाकर कुछ काल शहद से सेवन करना चाहिये।

२-कृमिघ्नी-नाम हिन्दी—इंगलिश Santonine लैटिन Artimesia Maritima

प्राप्ति--वर्णन—यह एक वेल के समान झाड़ी होती है। पत्र आधा से १ इंच लम्बा ३ भागों में फटा हुआ, जिनमें से एक आगे तथा २ पीछे की ओर रहते हैं। फूलों की डोडियां कुछ भागों में फटी हुई कुछ लाल सी होती हैं ये औषधियों में काम आती हैं।

विश्लेषण—इसकी डोडियों में Santonin नामक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एक विशेष तत्व होता है। यह जल में अविलेय तथा २॥ गुणा क्लोरोफार्म में विलेय है।

योग क्रमिघ्नीचूर्ण—१ से ३ ड्राम। सेन्टोनिन १ से ५ यव।

प्रभाव--उपयोग—क्रमिघ्नी चूर्ण तथा सैन्टोनिन आंतों में पाये जाने वाले गण्डुपद क्रमियों के लिये तथा गुदा के पास पाये जाने वाले गुद क्रमियों के लिये घातक है। रात्रि को इस की एक मात्रा दी जाती और प्रातः काल विरेचन दिया जाता है। इससे क्रमि मर कर निकल जाते हैं। यदि न निकलें तो १-२ दिन छोड़ कर फिर इसे दोहराते हैं। गुद क्रमियों के लिये विरेचन देने के पीछे निम्ब, कटुकी किरात तिक्त आदि के कषायों या लवण जल की छोटी वस्ति कुछ दिन तक देनी चाहिये

३--पलाश नाम हिन्दी—ढाक। लैटिन Butea Frondosa।

प्राप्तितथावर्णन—यह सर्वत्र मिलने वाला मध्यमाकार वृक्ष है। इसकी शाखाओं पर विशेष क्रमियों के कारण लाख लगती है। पत्र एक डंडी पर तीन गोल से। फूल, लाल लम्बी डंडी पर समूह में। फलियां लटकी हुई, चपटी, ५ से ८ इंच लम्बी। बीज, चपटे लाल से रंग के। इसके बीज, लाख और फूल औषधियोंमें काम आते हैं।

विश्लेषण--लाख में Kinotannic acid, Gallic acid, Mucilage होते हैं। बीजों में १८ % तैल स्थिर होता है।

पलाशचूर्ण—बीजों का गीला कर, छिलके उतार सुखाकर चूर्ण बनावें। मात्रा-१० से ६० यव रोग-गण्डूपद क्रमि।

लाक्षाचूर्ण—मात्रा-५ से ३० यव। रोग-प्रदर रक्तपित्त, अर्शस्।

लाक्षादितैल—लाक्षाजल ४, तैल ४, मस्तु या दधि १६, चन्दन, कुष्ट, रास्ना, मुस्ता, अश्वगन्धा दोनों हरिद्रा, शतपुष्पा, मधुयष्टी, कटुकी, (मिलित) १ भाग, तैल बनावे रोग-क्षयज्वर अङ्गदाह, कार्श्य, युवानपिडिका।

लाक्षादितैल (द्वितीय),—लाक्षाजल १६, दूध १६, तैल १६, इरिमेद या खदिर कषाय ६४ भाग में लोध्र, कट्फल, मंजिष्ठा कमलकेशर, पद्माख, चन्दन, उत्पल, मधुयष्ठी, प्रत्येक १ भाग डाल कर तैल बनावे। रोग-दन्तकम्प, दन्तपूय, दन्तमांस शोथ।

गुण-लाला—रस-कषाय, गुण-लघु, वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष-कफपित्तहर।

बीजकेगुण—रस-कषायतिक्त, गुण-स्निग्ध, वीर्य शीत, पाक-कटु, दोष-कफहर।

प्रभाव-उपयोग—लाक्षा संग्राही और शीत है। पलाश पुष्प उष्ण और शोथ हर है। मूत्रकृच्छ्र और कष्टार्तव में इसके फूलों से बफारा या गरम फूलों को कपड़े में बांध कर बस्तिप्रदेश पर सेक दिया जाता है। अंड शोथ पर भी इसका हलका बफारा दे सकते हैं। प्रवाहिका में रेचन के देने के पीछे लाक्षा चूर्ण को मोचरस के साथ मिलाकर मधु से चटाया जाता है। रक्त प्रदर, रक्तार्श, रक्तष्ठीवन (क्षयजन्य) में अभ्रक और शुक्ति

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भस्मों के साथ लाक्षाचूर्ण मधु से दिया जाता है। अस्थि भंग होने पर लाक्षा को शहद घृत से चटाया जाता है, क्षत रोग जन्य ज्वर तथा निर्बलता में लाक्षादि तैल मला जाता है। गण्डूपद कृमियों के लिये पलाश बीज चूर्ण दिन में दो बार २-३ दिन तक देकर कोई विरेचन दिया जाता है। जिससे कृमि मर कर मल के साथ निकल जाते हैं।

४--काम्पिल्ल नाम हिन्दी--कमीला। लैटिन Mallotus Philiphineusis.

प्राप्ति तथा वर्णन—हिमालय के नीचेके प्रदेशों में एक सदा हरा २५-३० फीट ऊंचा वृक्ष होता है। पत्र, ३ से ९ इंच लम्बे क्रमिक नोंकदार, अंडाकृति। फूल, छोटे श्वेत, पीले से रङ्गके। फल तीन खण्डोंमें विभक्त, गाढ़े लाल चूर्णकी तह से ढका होता है जिसे कम्पिल्ल कहते हैं, यह मद्यसार तथा ईथर में विलेय है।

विश्लेषण—इसमें एक क्रियाशील तत्व होता है जिसे Rottlerin कहते हैं। Resins, Tannic acid भी होते हैं।

कम्पिल्ल चूर्ण—४ से १२ मासे।

गुण—रस। मधुर,। गुण लघु। वीर्य-उष्ण। पाक कटु। दोष-कफ, पित्त हर।

प्रभाव व उपयोग यह त्वच्य, रेचक और आन्त्र कृमिहर है दद्रु, कण्डू आदि में इसे तैल या वैसलीन में मिलाकर लगाते हैं। आन्त्र कृमियों के लिये विशेषतः स्फन कृमियों (Tapeworms) के लिये कम्पिल्ल चूर्ण मधु के साथ चटाया जाता है, इससे विरेचन भी होता और कृमि भी निकल जाते हैं, यदि न निकले तो एक दिन छोड़ कर फिर इसको दोहरायें, इसमें समान विडंग चूर्ण भी मधु के साथ दे सकते हैं। क्रूर कोष्ट पुरुषों के लिये यह अच्छा रेचक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वामकद्रव्य ।

१-मदनफल नाम हिन्दी-मैनफल, राडा। इंगलिश Emetic nut, लैटिन Randia Dumetorum.

प्राप्ति तथा वर्णन—यह हिमालय के पास पाया जाने वाला कांटेदार झाड़ है। कांटे १ से २ इंच लम्बे, पत्र १ से २ इंच लंबे आगे चपटे मूल में तंग, फूल १" व्यास, पीला श्वेत, फल नारंगी की आकृति का, पौन इंच व्यास का, कुछ पीला, सूखने पर लाल, भूरा, दो भागों में विभक्त- ऊपर छिलका, अन्दर गूदा और उसके अन्दर बीज होते हैं। फल का गूदा काम आता है।

विश्लेषण—इसमें एक क्रियाशील तत्व है जिसे Saponin कहते हैं। Valerianic acidभी होता है।

योग मदनफलचूर्ण—५ से १० यव, कफ स्रंसक है। ६० यव वामक है।

मदनफलादिचूर्ण—मदनफल, अर्कमूलत्वक, मधुयष्ठी समान २ मिला कर चूर्ण बनावें। मात्रा-५ से १५ यव कफ स्रंसक है। ६० यव वामक है।

गुण—रस-कटुतिक्त, गुण-लघुरूक्ष, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-वात कफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह शोथहर तथा वामक है। पिडिका पर मदन फल और गुग्गुल को मर्दन कर पलस्तर के रूप में लगा देते हैं। जिससे शोथ बैठ जाती है। श्वास, ज्वर, कफ, कास, काली खांसी में फुफ्फुस संचित हुई श्लेष्मा को निकालने के लिये मदन फल के चूर्ण या २-३ फलों के कषायों से वमन दिया जाता है। थोड़ी मात्रा में खांसी को कफ निकालने के लिये दीजाती है। पाओं की विपादिका और खुश्की के लिये मदन फल, मधुयष्ठी और समुद्र लवण समान २ मक्खन में मिला कर लेप किया जाता है जिससे त्वचा नरम पड़ जाती है।

२ राजिका नाम हिन्दी—राई। इंग्लिश Mustard लैटिन Brassica juncea श्वेतराई Brassica nigra कालीराई।

प्राप्ति तथा वर्णन—३ से ६ फिट ऊंचा, सीधा क्षुप, पत्र आकार में बड़े, ६ से ८ इंच लम्बे २ से ४ इंच चौड़े, दन्तुर। फूल पीले, चमकीले, फलियां २" लम्बी, बीज बहुत छोटे २। बीज काम आते हैं।

विश्लेषण—इसमें एक स्थिर तथा कुछ अस्थिर तेल भी होता है। स्थिर तेल का रंग हलका पीला, स्वाद कड़ुवा।

योग—राजिका चूर्ण ४ से १२ माशे वामक है।

राजिकादिलेप—सर्षप या राजिका, शोभाञ्जन बीज, शणबीज, अलसी, यव, मूली बीज, समान समान चूर्ण कर तक्राम्ल से पीसकर लेप करें। रोग—ग्रन्थि, गलगंड, गंडमाला।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—रस-लघु-गुण, रुक्षतीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक, कटु, दोष-वात कफ हर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह स्थानिक उत्तेजक है। चूर्ण का लेप लगाने से त्वचा लाल होजाती और उपड़ जाती है। आमाशय के लिये दीपक है। अधिक मात्रा में देने से वामक है विद्रधिशोथ, ग्रन्थि शोथ, गलशोथ, संधिशोथ में आटा में चौथाई राई का चूर्ण मिला कर पुलटिस बना बांधने से शोथ बैठ जाती हैं। तीव्र वातिक शूलों में ऊपर त्वचा पर इसके गरम लेप देकर छाला डाल देने से दर्द हट जाता है। पार्श्वशूल, श्वास ज्वर में फुफ्फुस या फुफ्फुसावरण की शोथ हटाने के लिये छाती पर इसका पलस्तर या पुलटिस बांधी जाती है। बालकों के इन रोगों में राई का तैल दूसरे तेल में हलका करके मला जाता है। तीव्र वमन में आमाशय पर इसका पलस्तर लगाने से आराम हो जाता है। सूर्य्यावर्त तथा अन्य तीव्र शिरः शूलों में राई का पलस्तर लगाया जाता है। पांओं के तालुओं में राई का लेप कर देने से आराम आ जाता है। कष्टार्तव में पेडू पर राजिका कषाय से भीगे कपड़े से सेक दिया जाता है। नाक या मुख में जलोका प्रवेश कर जाय तो राई के कषाय में नमक मिला पिचकारी या गण्डूष दिये जाते हैं। यदि पेट से किसी विषैले द्रव्य को निकालना अभीष्ट हो तो गरम जल में ४ से १२ माशे राजिका चूर्ण घोल जब तक वमन न आ जावे थोड़ा थोड़ा करके पिलाया जाता है।

ग्राहीद्रव्य।

१ धातकी पुष्पनाम हिन्दी—धाय के फूल। लैटिन Woodfordia, Floribunda.

प्राप्तितथा वर्णन—सर्वत्र मिलने वाली, लग भग १० फिट ऊंची फैलने वाली झाड़ी है। पत्र आमने सामने, आगे से नोकीले, मूलपर गोल मालाकार निम्न पृष्ठ पर श्वेत तथा लोमश, फूल नलिका कृति, इकट्ठे गुच्छों में लगते तथा चमकीले लाल रंग के होते हैं। फूल औषधियों में काम आते हैं।

विश्लेषण—इसमें Tannic acid २०% होता है

योग धातकीचूर्ण—१० से ६० यवं।

धातक्यादिचूर्ण—धातकी, बिल्व, धान्यक, लोध्र इन्द्रयव, गन्धवाला समान २ चूर्ण बनावें। मात्रा—५ से ३० यव। रोग—बालकों के ज्वर अतिसार तथा वमन।

गुण—रस-कषाय, गुण-लघु, वीर्य-शीत, पाक-कटु दोष--पित्तहर।

प्रभावतथाउपयोग—यह संग्राही द्रव्य है। स्रावी व्रणों के स्राव को सुखाने के लिये धातकी चूर्ण या धातकी कषाय प्रयुक्त होते हैं। आ-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सवों में धातकी के डालने से आसव के निर्माण की प्रक्रिया भली प्रकार होती है। ग्राही होने से अतिसार, प्रवाहिका, रक्तपित्त श्वेत प्रदर, रक्तार्श में धातकी का चूर्ण या अन्य प्रयोग दिये जाते हैं। बालकों के ज्वर, अतिसार तथा वमन को शान्त करने के लिये धातक्यादि चूर्ण शर्बत से देना चाहिये।

लोध्र नाम हिन्दी—लोध्र। लैटिन Symplocos Racemosa.

प्राप्तितथा वर्णन—उत्तर पूर्वीय भारत में कुमायूं की तराई से आसाम तक एक छोटा सदा हरा वृक्ष, त्वक चिकनी, श्वेत, पत्र कोमल अंडाकृति, पुष्प पीले, सुगन्धित, फल नलकाकार प्रायः आधा इंच लम्बे चिकने। त्वक औषधियों में काम आती है।

विश्लेषण—इसमें कई Alkaloids होते हैं। Laturine २४% जो स्फटिकों में मिलता है। और अम्लों के साथ मिलाने से स्फटिकों में ही Salts बनते हैं Calloturine यह भी स्फटिकीय है। Loturidine यह चूर्ण रूप होता है। लोध्र में Tannic acid नहीं होता।

योग लोध्रचूर्ण—१० से ६० यव। लोध्र कषाय ८ भाग जलमें बनावें। १ से २ औंस।

लोध्ररसक्रिया—२ से ८ यव।

पुष्पानुगचूर्ण—पाठा, जम्बूफल, आम्रबीज, पाषाणभेद, रसाञ्जन, मोचरस, मञ्जिष्ठा, पद्मकेशर केशर, अतिविषा, मुस्ता, बिल्व, लोध्र, गैरिक कटफल, मरिच, शुण्ठी, द्राक्षा, रक्तचन्दन, अरलुत्वक, इन्द्रयव, अनन्तमूल, धातकी, मधुयष्ठी, अर्जुन समान २। मात्रा-१० से ६० यव रोग-श्वेत तथा रक्त प्रदर, अतिसार।

गुण—रस-कषाय, गुण-लघुरूक्ष, वीर्या-शीत, पाक-कटु, दोष-पित्त कफ हर।

प्रभावतथा उपयोग—लोध्रग्राही, स्रावहर, शोथ हर होता है। व्रणों के शोषण के लिये थोड़े टंकण या टंकणाम्ल से मिलाकर इसका चूर्ण स्रावी व्रणों पर छिड़का जाता है। नासा रक्त स्राव में चूर्ण की नस्य तथा दन्त मांस रक्त स्राव में लोध्र के गंडूष देने से रक्त बन्द हो जाता है।

श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, तथा गर्भावस्था में गर्भाशय के स्रावों को रोकने के लिये लोध्र चूर्ण या लोध्र के प्रयोग दिये जाते हैं। अतिसार के लिये गंगाधर आदि चूर्ण में लोध्र प्रयुक्त होता है। रक्त प्रदर के लिये लोध्र चूर्ण विशेष औषधि है। इसमें रसाञ्जन सूक्ष्मैला नागकेशर धातकी पुष्प भी मिला मिश्री मिले दूध से पिलावे।

३ अशोकनाम हिन्दी—अशोक। लैटिन Saraca Indica.

प्राप्तितथावर्णन—भारत के दक्षिण पूर्व भागों में एक बड़ा सीधा हरा वृक्ष, पत्ते में ३ से ६ पत्तियों के युगल, पत्तियां ३ से ६ इंच लम्बी, अंडाकृति आगे से नोकीली, पत्र नाल बहुत छोटा, फूल सुन्दर नारंगी रंग के, गुलदस्ते के समान गुच्छों में लगते, फलियां ६ से १० इंच लम्बी, २ इंच चौड़ी, बीज ४ से ८ होते हैं इसकी अन्तस्त्वक औषधियों में काम आती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विश्लेषण -इसमें Catachin तथा Tannic acid प्रधान दो तत्व होते है।

योग-अशोकत्वक कषाय—१ से २ औंस। अशोक रस क्रिया २ से १० यव।

अशोकघृत—अशोक त्वक १६, जल ६४, भाग चतुर्थांश कषाय करे। घृत १६, गोक्षीर १६, भृंगराज रस १६, जीरकफाण्ट १६ तण्डुलोदक १६ भाग। जीवनीयगण प्रत्येक आधा प्रियालमज्जा आधा, फालसा आधा, रसाञ्जन आधा, मधुयष्ठी आधा, अशोकमूल त्वकआधा, मृद्वीका आधा, शतावरी आधा, तंडुलीयमूल आधा, शर्करा ८ भाग डालकर घृत बनावें। मात्रा-१ से ४ चमचे। रोग-प्रदर, गर्भाशय शूल, स्त्री नैर्बल्य।

अशोकाद्यरिष्ट—अशोक त्वक, १००, जल १०२४ भाग। चौथाई कषाय करें। गुड़ २०० धातकी १६। जीरक, मुस्ता, शुण्ठी, दार्वी, उत्पल, त्रिफला प्रत्येक, आम्रास्थि, जीरक, वासा, चन्दन प्रत्येक १ भाग, डाल अरिष्ट बनावें। मात्रा-२ से ८ ड्राम। रोग-सर्वप्रदर रक्त पित्त, रक्तार्शस।

गुण--रस--मधुर कषाय, गुण--लघु, वीर्य--शीत, पाक--कटु, दोष--पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग---यह ग्राही द्रव्य है पर इस का यह प्रभाव गर्भाशय पर विशेष होता है। इसके देने से गर्भाशय की मांस पेशियों के क्षोभ शान्त होते तथा यदि स्राव अधिक होता हो तो बन्द हो जाता हैं। रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर तथा गर्भाशय की निर्बलताओं में २ तोला त्वक १ पात्र दूध और ३ पात्र जलमें तबतक उबाला जाता है जब तक जल भाग न उड़ जावे। इसको दिन भर में २--३ बार करके पिला दिया जाता है, अति आर्तव स्राव में आर्तव आरम्भ होने के चौथे दिन बाद इसका पिलाना शुरू करना चाहिये और रक्त बन्द होने तक पिलाते रहना चाहिये। गर्भपात या स्राव का भय हो तब भी अशोक; लोध्र, कमलगट्टे की गिरी का चूर्ण या दूध में कषाय बना कर पिलाना चाहियें।

४ बीजक नाम हिन्दी--बीजासार। इंग्लिश Indian Kino Tree लैटिन Pterarpus. Marsupium.

प्राप्तितथा वर्णन--मध्य तथा दक्षिण भारत में एक बड़ा वृक्ष, त्वक श्वेत, मोटी, नीचे ऊपर जाने वाली झुर्रियों से युक्त, पत्तियां ५ से ६ इंच लम्बी, अंडाकृति आगे या मूल पर नोकीली नहीं होती, फूल पीले या श्वेत, फूलों के निचले हिस्से लोमश, फली १ से २ इंच लम्बी, चपटी, २ बीजों से युक्त। इसका निर्यास काम आता है। यह लाल, काले, भंगुर, कुछ २ पार दर्शक टुकड़ों के रूप में बाजार में मिलता, निर्गन्ध होता, जल में थोड़ा, मद्यसार में पूरी तरह घुलता है।

विश्लेषण--इसमें Kino Tannic acid ७५% Kinoin एक उदासीन तत्व और एक लाल सा रंग होते हैं।

योग-बीजकचूर्ण--५ से १० यव। बीजकासव ५ गुना मद्यसार ६०% में बनावे। मात्रा-आधा से १ ड्राम।

बीजकादिचूर्ण--बीजक १५, त्वक ४, अहिफेन १, चूर्ण बनावें। मात्रा-५ से २० यव रोग-अतिसार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण--रस--तिक्तकषाय, गुण-लघु, वीर्य-शीत; पाक--कटु, दोष--कफ पित्तहर ।

प्रभाव तथा उपयोग--यह ग्राही है । रक्तातिसार, रक्तप्रदर, तथा साधारण अतिसार में इसको दिया जाता है।

५--शाल्मलीनाम हिन्दी--सेंम्बल । इंग्लिश Redsilk Cotton tree लैटिन Bombax Malabaricum

प्राप्तितथा वर्णन--यह सर्वत्र पाया जाने वाला बड़ा वृक्ष है। शाखायें थोड़े २ अन्तर पर एक जगह से चारों ओर निकलती है। पत्ते हाथ की अंगुलियों के सदृश, पत्तियां ४ से ८ इंच लम्बी, मालाकार तने पर कांटे, फूल पत्तियों के निकलने से पहले निकलते और लाल होते हैं। फलियां ६ से ७ इंच लम्बी कठोर। इसका निर्यास, जिसे मोचरस कहते हैं, बाल मूल और पुष्प औषधियों में काम आते हैं।

विश्लेषण--मोचरस में Tannic acid और Gallic acid होते हैं।

योग-मोचरसचूर्ण--मात्रा-१० से ३० यव। रोग-प्रवाहिका, रक्तप्रदर।

शाल्मली मूल चूर्ण--मात्रा-१० से ३० यव । रोग-नैवल्य ।

शाल्मलीघृत--बाल शाल्मली मूल क्वाथ ३२, घृत ३२, क्षीर ३२, अश्वगन्धा, शतावरी, मुशली, अनन्तमूल, शुण्ठी, रास्ना, मधुयष्ठी, द्राक्षा प्रत्येक १ भाग। घृत बनावें। मात्रा-१ से ४ चमच्चे। रोग- शुक्रमेह, क्लैब्यरोग।

शुक्रमेहान्तकचूर्ण--मोचरस २, अहिफेनबीज ३, रूमीमस्तगी ३, कौंचबीज ३, ब्रह्मदण्डी ४, शतावरी ४, मुशली ५ भाग। चूर्ण बनावें । मात्रा-१० से १५ यव। रोग-शुक्रमेह।

गुण--रस--मधुर कषाय, गुण लघु स्निग्ध, वीर्य-शीत, पाक--कटु, दोष--वात पित्तहर।

प्रभावतथा उपयोग--मोचरसग्राही, आंतों के स्रावों को तथा बहते रक्त को बन्द करता है। शुक्रमेह हर है। बालमूल पौष्टिक है। रक्तातिसार तथा प्रवाहिका में मधु के साथ दिन में कई बार मोचरस दिया जाता है। इसमें बाल बिल्व चूर्ण भी मिला दिया जाता है। जब बार बार प्रवाहण हो तो शाल्मली पुष्पों तथा मधुयष्टिका दूध में कषाय कर थोड़ा घृत और तिल तेल मिलाकर १--२ छटांक की मात्रा में गुदा में छोटी बस्ति दी जाय तो रोगीको इससे आराम आता है। इसे पिच्छा वस्ति कहते हैं। प्रदर, रक्तार्श, शुक्रमेह में भी मोचरस मधु के साथ चटाया जाता है। शुक्रमेह के लिये बालमूल चूर्ण दूध के साथ दिया जाता है।

६--खदिर नाम हिन्दी--खैर । लैटिन Acacia Catechu

प्राप्तितथा वर्णन--उत्तरीय भारत में एक मध्यमाकार कटीला वृक्ष है। त्वक काली, भूरी, उतरने वाली, काष्ट अतिकठोर तथा अंदरसे गूदा लाल, कांटे मुड़ेहुये, पत्तियों के युगल ३० से ५०, फूल पतली, लम्बी डंठल पर पीले, फलियां पतली, ५--६ बीजों से युक्त। इसका अन्तः काष्ट या उसकी रस क्रिया जिसे खदिर सार कहते हैं औषधियों में काम आता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विश्लेषण—इसमें Catechu Tannic acid होता है जो गहरा लाल भूरा सा चूर्ण है। Catechu gum और एक लाल सा रंग होते हैं।

योग-खदिरसारचूर्ण—५ से १५ यव। खदिरासव-खदिरसार ४, त्वक १, मद्यसार ४५%-२५भाग आसव बनावें। मात्रा-आधा से १ ड्राम। रोग-अतिसार।

खदिरादिवटी—खदिर सार ४ जातिफल कंकोल कर्पूर, क्रमुक प्रत्येक १ भाग गोली बनावें। मात्रा-४ से ८ यव। रोग-मुखशोथ, गलशोथ दन्तमांस शोथ।

लवंगादिवटी—लवंग १, मरिच १, विभीतकी १, खदिरसार ३ भाग, बबूल कषाय की भावना देकर गोली बनावें। मात्रा-४ से ८ यव। रोग-मुखशोथ, गलशोथ।

खदिरादिचूर्ण—खदिरसार ४, त्वक १, बीजक २, जातीफल १ भाग, चूर्ण बनावें। मात्रा-१० से ६० यव। रोग-अतिसार।

खदिरारिष्ट—खदिर अन्तःकाष्ट ५०, देवदारु ५० वाकुची १२, दारुहरिद्रा २५, त्रिफलामिलित २०, जल २०८८। अष्टमांश कषाय करें। मधु २००, शर्करा १००, धातकी २०, कंकोल १, त्वक १, नागकेशर १, जातिफल १, एला १, पत्र १, लवंग १, पिप्पली ४, भाग डाल कर अरिष्ट बनावें। मात्रा-२ से ८ ड्राम। रोग-त्वक रोग, कास।

खदिराष्टक कषाय—खदिर, त्रिफला, निम्ब, पटोल, वासा, गुडूची समान २ मिला कषाय करें। मात्रा-आधा से २ औंस। रोग-त्वक रोग स्फोट ज्वर, शीत पित्त।

खदिरादिप्रलेप—खदिरसार ३, कर्पूर १, सिंदूर आधा, शतधौतघृत १०, रोग-पामा स्रावी व्रण।

गुण—रस-तिक्त कषाय, गुण-रूक्ष, वीर्य-शीत पाक-कटु, दोष-कफ पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—खदिरग्राही, शोथहर, रक्त शोधक है। पामा, स्रावीव्रण, अग्निदग्ध व्रण पर खदिरादि प्रलेप लगाया जाता है। कर्ण-स्राव में खदिरसार का चूर्ण छिड़कने से स्राव बन्द हो जाता है। पूयमेह में खदिरसार या खदिर कषाय की उत्तर वस्ति लाभदायक है। रक्तार्शस्, गुद शोथ में खदिरसार ४, अहिफेन १, और वैसलीन ८ भाग, मिला लगाने से आराम आता है। मुख स्फोट, दन्त मांस शोथ, गलशोथ, पारद जन्य दन्त मांस शोथ, स्वरभंग में खदिरसार के कषाय के गंडूष दिये जाते हैं और खदिरादि वटी मुख में रखी जाती है। अतिसार में १ तोला खदिरसार, ३ माशा त्वक् को १ पाव उबलते जल में घंटाभर रख, छान १-२ औंस की मात्रा में ३-४ बार पिलाने से बड़ा लाभ होता है। संखिया तथा पारे की अधिक मात्रा में खाये जाने पर आंतों के क्षोभ को शांत करने के लिये २-३ ड्राम खदिरसार पानी में घोलकर थोड़ी २ देर बाद पिलाना चाहिये। पामा कंडु आदि त्वक् रोगों, स्फोट ज्वरों में खदिराष्टक तथा खदिरारिष्ट देने से लाभ होता है। श्वित्र रोग में खदिर, हरीतकी, बाकुची

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

का कषायकुछ मास तक निरन्तर पिलाया जाता है।

७ बबूल नाम हिन्दी—बबूल या कीकर। लैटिन Acacia arabica

प्राप्ति तथा वर्णन—यह बड़ा वृक्ष सर्वत्र होता है, काष्ठ कठोर, कांडटेढ़ा, शाखायें पतली। पत्ते के ३ से ६ युगल पत्र जिनमें बारीक पत्तियों के १० से १२ युगल होते हैं, फूल चमकीले पीले, फली ३ से ६इंच लम्बी आधा इंच चौड़ी इसकी त्वक् तथा निर्यास काम आते हैं।

विश्लेषण—इसके निर्यास में एक विशेष अम्ल (arabic acid) होता है जिसमें Calcium Magnicium Potassium) मिले होते हैं। त्वक् में मुख्यतः (Tannic acid) होता है।

योग—बबूल निर्यास को घृत में मल, वेसन मिला कर खाया जाता है। मात्र १० से ३० ग्रेन। बबूल रसक्रिया-कषाय में दूध डाल कर बनायें २-८ यव, रोग-रक्तप्रदर-रक्तार्शस्।

बबूलारिष्ट—बबूल त्वक् २००, डाल १०२४, चतुर्थांश कषाय करें। गुड ३००, धातकी १६ पिप्पली २, जातिफल १, कंकोल १, चतुर्जातक प्रत्येक १, लवंग १, मरिच १, भाग डाल कर अरिष्ट बनावें। मात्रा २ से ८ ड्राम रोग—अतिसार, रक्तातिसार, मूत्रातिसार, कास, शुक्रमेह, त्वक्रोग।

गुण—निर्यास—रस मधुर, गुण स्निग्ध पिच्छिल, वीर्यशीत, पाकमधुर, दोष वातपित्तहर।

त्वक—रस कषाय, गुण रुक्ष, वीर्य शीत, पाक कटु, दोष कफपित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—निर्यास क्षोभ शामक, बल्य, शुक्रमेह हर है। त्वक् ग्राही है। फिरंग तथा पारद जन्य मुखपाक, गलशोथ, दन्त मांस शोथ में इसके त्वक् कषाय के गंडूष दिये जाते हैं। बबूल त्वक् के महीन पीले हुये कोपलों का मञ्जन भी किया जाता है। बबूल त्वक् में बकुल त्वक् अकरकरा स्फटि की लवंग सेंधव मिला सकते हैं। गुद भ्रंश में इसके कषाय से गुदा को धोया जाता है और इससे धोकर शुष्क चमड़े की राख लगाई जाती है। प्रवाहिका में आंतों के शोथ और पाक को हटाने के लिये इसके कषाय की बस्ति दी जाती है। नेत्रों के श्वेत भाग पर रक्त संचय हो जाय तो बबूल के पत्तों का कल्क आंख पर बांध देते हैं जिससे रक्त बिखर जाता है। पूयमेह तथा श्वेत प्रदर में इसके कषाय की वस्ति देने से दाह तथा स्राव हट जाते हैं।

प्रवाहिका में १०-१५ ग्रेन निर्यास के चूर्ण को थोड़े पानी में खरल कर लेने और फिर १ या २ ड्राम एरंड तेल धीरे २ मिलाकर मर्दन करते जाते हैं जिससे एरंड तेल का श्वेत सा घोल बन जाता है, ऐसी एक मात्रा प्रति एक घंटे के बाद तब तक दी जाती है, जब तक रक्त तथा श्लेष्मा का आना बन्द न हो जाय। इनके बंद हो जाने पर भी यही मात्रा ४ घंटे के बाद दी जाती है। अतिसार और मूत्रातिसार में बबूल त्वक् कषाय या बबूलारिष्ट दिये जाते हैं। शुक्रमेह में बबूल निर्यास घृत में भर्जित कर वेसन में मिला

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

खिलाते हैं। बबूल की कच्ची फलियों को सुखा कर चूर्ण कर मिश्री के साथ मिला ३, ४ माशा की मात्रा में कुछ दिन तक देने से ए-कार्शस् शुक्रमेह में बड़ा लाभ होता है। अस्थिभंग में यदि थोड़ा २ त्वक् चूर्ण खिलाया जावे तो शोथ हट जाती और अस्थि शीघ्र जुड़ती है। बबूल की कोमल फ़लियों के चूर्ण में आधी मात्रा में दोनों मुशली ताल-मखाना, गोखुर, धत्तूर बीज, विजयाबीज, जातीफल, जावित्री, केशरका सम्मिलित चूर्ण मिला सर्व तुल्य मिश्री मिला २--४ मासे की मात्रा में देने से शुक्रनैर्बल्यक्लीवरोग में लाभ होता है।

८ बोल नामहिंदी—बोजाबोल। इंग्लिश Myrrh लैटिन [BalsamodendronMyrrh]

प्राप्ति तथा वर्णन—यह बाहर से आता है। बम्बई और पश्चिमी भारत में बिकता है। लाल, भूरा, भंगुर, अर्धपारदर्शक, कुछ सुगंधित निर्यास है जो जल में बहुत थोड़ा घुलता है।

विश्लेषण—इसमें (Gum) ४० से ६० %, एक अस्थिर तेल (Myrrhol) २ %, एक तिक्त तत्त्व [Glucooide] २५ से ४० %, [Calcium] के [Phosphate] और [Carbonate] भी होते हैं।

योग-बोल निर्यास चूर्ण—५ से १५ यव।

बोलासव—१० गुना मद्यसार [६० %] में बनावें। मात्रा आधे से १ ड्राम।

कुमारीसारादिवटी—कुमारीसार १, बोलनिर्यास आधा भाग मिला कुमारी स्वरस से मर्दन कर गोली बनावें। मात्रा--४ से ८ यव। रोग कष्टार्तव।

गुण—रस-कटु तिक्त कषाय, गुण--रूक्ष, वीर्य--किञ्चत् उष्ण, पाक--कटु, दोष -त्रिदोषहर।

प्रभावतथा उपयोग—आमाशय के लिये दीपक, श्वासमार्ग के लिये कफ संसक, गर्भाशय के लिये आर्तव प्रवर्तक तथा शोधक है। बहिः प्रयोग में ग्राही है। मुख व्रण या मुख स्फोटों के लिये बोल निर्यास के फाण्ट में टंकण डाल गण्डूष दिए जाते हैं तथा बोल चूर्णमें टंकण मिला स्फोटों पर लगाया जाता है। दन्त मांस शोथ तथा दन्तपूय रोग में बोलासव, वत्सनाभ आसव, आयोडोनासव और ग्लीसरीन समान समान भाग मिलाकर लगाया जाता है। दन्त मञ्जनों में बोल का चूर्ण डाला जाता है। गलपाक रोग में २० गुना उबलते जल में बोलका फांट बना मधु या ग्लीसरीन मिला गंडूष देने से बड़ा आराम आता है। कष्टार्तव में कुमार्यादि वटी देने या बोल चूर्ण की छोटी सी पोटली गर्भाशय के मुख पर रख देने से आर्तव खुल कर आता है। स्त्रियों के श्वेत प्रदर और पांडु रोग में लोहभस्म के साथ बोल निर्यास का चूर्ण देने से विशेष लाभ होता है।

९ दाडिमनाम हिन्दी—अनार। इंग्लिशPomegranate लैटिन Punica granatum

प्राप्तितथावर्णन—यह फारस, अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान में होता तथा दूसरे स्थानों परभी बोया जाता है। वृक्ष १०-१२ फिट ऊंचा, शाखायें पतली, पत्ते २" लम्बे, भालाकार, एक स्थान से ३-३ निकलते हैं, फूल गूढ लाल नलिका कार, फल २ से ५ इंच

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

श्वास, लाल भूरा, कठोर त्वक् वाला, मधुराम्ल दोनों से युक्त। दाडिम फल त्वक्, दाडिमबीज, दाड़िममूल त्वक् औषधियों में काम आते हैं।

विश्लेषण—फल तथा बीजो में Tannin होता है जो त्वक् में अधिक २२ से २५% होता है मूल त्वक् में Plletierine नामक एक क्षारीय तत्व होता है।

योग-दाडिममूल त्वक रस क्रिया—५ से १० यव।

दाडिमादिवटी—दाडिमफल त्वक् १, विभीतकी फलत्वक् १, यवक्षार १, गुड ३, भाग मिला गोलियां बनावें। मात्रा--५ से २० यव। रोग गलशोथ, कास।

दाडिमपानक—दाडिमबीज स्वरस में समान या दुगनी मिश्री डाल पानक बनावें। मात्रा--॥ से २ औंस। रोग-तृष्णा, दाह, पित्तज्वर।

दाडिमाष्टकचूर्ण—वंशलोचन चौथाई, चतुर्जातक मिलित आधा, यवानी १- पिप्पलीमूल १ धान्यक १, जीरक १, त्रिकटु प्रत्येक १, दाडिम बीज ८, मिश्री ८, भाग चूर्ण बनावें। मात्रा--१५ से ३० ग्रेन। रोग-मन्दाग्नि, अरुचि यदि दाडिम बीज के स्थान पर दाडिमफल त्वक् डालें तो यह कास, प्रतिश्याय, आमातिसार के लिये लाभदायक है।

गुण—रस-मधुर अम्ल, कषाय, गुण-लघु, वीर्य मधुर। फल शीत तथा अम्लफल किञ्चदुष्ण, दोष-मधुरफल त्रिदोषहर तथा अम्लफल वात कफहर, पित्तवर्धक, पाक-कटु।

प्रभाव तथा उपयोग—दाडिमफल त्वक् ग्राही है। मधुर दाडिमबीज तृष्णा, दाह, ज्वरहर ग्राही होते हैं। अम्लबीज रोचक, अग्निदीपक पित्त वर्धक है। दाडिम मूलत्वक् व्रणकृमिहर है। दाडिम फल त्वक् में २ भाग शुद्ध खड़िया और $\frac{1}{8}$ भाग बोल चूर्ण मिला दिया जाय तो यह दन्तमांस की सूजन के लिये उत्तम मञ्जन बन सकता है। गलशोथ में दाडिम फल त्वक् कषाय के गरारे देने तथा दाड़िम त्वक् से बनी गोलियां मुह में रखने से शोथ बैठ जाती है। नासा रक्तस्राव हटाने के लिये दाडिम पुष्प स्वरस और दूर्वा पत्र स्वरस नाक में डालने चाहिये। वमन, अरुचि और क्षुधा नाश के लिये दाड़िमबीज बड़े लाभ दायक हैं। अनेक लवण भास्करादि चूर्णों में यह बीज रुचि कर होने से डाले जाते हैं। ज्वरों में रुचिकर, दाह पिपासा हर होनेसे मीठा अनार दिया जाता तथा दाडिम पानक भी पिलाया जाता है। प्रवाहिका तथा अतिसार के लिये दाडिम फल त्वक् को समान कुटज त्वक् के साथ मिलाकर १६ गुना जल डालबना हुआ कषाय लाभदायक है, इस कषाय में थोड़ी लवंग या त्वक् भी मिला देनी चाहिये। इसकी १-२ औंस की मात्रा दिनमें ३ वार देने से बड़ा लाभ होता है। दाडिम फल त्वक् में समान जीरक और नागकेशर मिलाकर चूर्ण बनाकर विशेषतः बालकों के अतिसार में दिया जाता है। मन्न कृमि को निकाल ने के लिये दाडिम की नवीन मूल त्वक् १॥ छटांक लेकर ६ छटांक पानी में १ दिन रख कर, उबाल कर, ३ छटांक पानी रहने पर छान लेना चाहिये। प्रातः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१ घंटे में ३ बार करके यह मात्रा पिला देनी चाहिये। इसमें थोड़ी लौंग भी मिला सकते हैं। इसके कुछ घंटे बाद एरंड तेल का विरेचन दे दें। इसकी रस क्रिया भी १० से ३० ग्रेन की मात्रा में दे सकते हैं।

१० जम्बू नाम हिन्दी—जामुन। इंगलिश Jambul लैटिन Eugenia Jambolina.

प्राप्ति तथा वर्णन—यह सर्वत्र मिलने वाला, बड़ा सदाहरा, ७०-८० फिट ऊंचा वृक्ष होता है, पत्र ५-६ इंच लम्बे, भालाकार, गहरे रंग के, कोमल, फूल छोटे २ श्वेत से रंगके, फल आधा या डेढ़ इच लम्बा गोल और काला होता है। इसके बीज तथा त्वक् काम आते हैं।

विश्लेषण—बीजों में एक Glucoside है जिसको Jambolin कहते हैं, त्वक् तथा बीजों में Tannin भी होता है।

योग—जम्बू बीज चूर्ण—५ से ३० यव। जम्बू बीज रस क्रिया १ से ५ यव।

गुण—रस कषाय, गुण लघुरुक्ष, पाक कटु, वीर्य शीत, दोष पित्त कफ हर।

प्रभाव तथा उपयोग—जम्बू ग्राही है। इसके देने से शरीर की भिन्न २ ग्रन्थियों के स्राव कम होजाते हैं विशेषतः मल और मूत्र के स्रावों पर इसका यह प्रभाव होता है। मुख पाक में जम्बू त्वक् कषाय के गण्डूष दिये जाते हैं। इसकी लकड़ी के कोयले से मञ्जन भी बनता है। गुद भ्रंश में त्वक् कषाय से गुदा धोयी जाती है। मूत्रातिसार में बीज चूर्ण या बीज रस क्रिया का विशेषतः प्रयोग होता है। शिलाजतु, बङ्ग अथवा अभ्रक के साथ मिलाकर रस क्रिया की गोली निरन्तर कुछ मास तक देनी चाहिये। मधुमेह में भी इससे लाभ होता है। मूत्र में खांड का मात्रा घट जाती है। विशेषतः मधुमेह के लिये जम्बू रस क्रिया और शिलाजतु का बहुत प्रयोग होता है। ग्राही होने से जम्बू रस क्रिया अतिसार के लिये भी लाभदायक है। अजीर्ण और उदरशूल के लिये कई बार जामुन का सिरका दिया जाता है।

११ पूगी नाम हिन्दी—सुपारी। इंगलिश। Betel nut. लैटिन Areca Cotechu.

प्राप्ति तथा वर्णन—मैसूर, मलाबार और कर्नाटक में बोई जाती है। इसका ४० से १०० फिट ऊंचा वृक्ष होता है। पत्ते ४ से ६ फिट लम्बे जिन पर १ से २ फिट लम्बी अनेक पत्तियां, फल १॥ से २ इंच लाल नारंगी रंग का होता है। बीज की गुठली सुपारी है जो काम आती है।

विश्लेषण—Gallic acid और Tannic acid के सिवाय इसमें क्षारीय तत्व Arecoline भी होता है जो जल, मद्यसार, ईथर में घुल जाता है।

योग—सुपारी पाक या पूगी पाक—सुपारियों को दूध में पकाकर, सुखाकर, चूर्णकर, ८ भाग लेकर ४ भाग घृत में पकाकर, शतावरी रस ८, आमलकी रस ८, दूध ३२ भाग में डाल और खांड़ ५० भाग डाल मन्दाग्नि पर पकावें। इसमें धत्तूर, मुस्ता, चंदन, त्रिकटु, आमलकी, प्रियालमज्जा, त्रिजातक, दोनो जीरक, श्रृंगाटक, वंशलोचन, जातिफल; जावित्री; लवंग; धान्यक, कंकोल; रास्ना, तगर;

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गंधत्राला; उशीर; भृंगराज; अश्वगंधा प्रत्येक आधा भाग डाल पाक बनावें। मात्रा आधे से १ तोला; रोग प्रदर, वन्ध्या रोग; अम्ल पित्त; मूत्रकृच्छ्र; रक्तार्शस्, शुक्रनैर्बल्य।

गुण—रस कषाय मधुर; गुणरुक्ष,गुरु; वीर्यशीत; दोषकफ पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—महा स्रोतस पर पूगी का ग्राहीप्रभाव है। नाड़ी संस्थान तथा मस्तिष्क के लिये उत्तेजक है। गर्भाशय तथा योनि मार्ग पर इसका ग्राही प्रभाव होता है जिससे इनके स्राव बन्द हो जाते हैं। दन्तमांस शोथ के लिये सुपारी के कोयले का मञ्जन बहुत लाभदायक है। इसमें समान खदिरसार और थोड़ा नमक भी मिला सकते हैं। मुख शोथ हटाने और मुख की रुचि बढ़ाने के लिये सुपारी चबायी जाती है। अतिसार प्रवाहिका में १० से १५ ग्रेन सुपारी चूर्ण दिन में ३-४ बार चबाया जाता है। अतः पान भी अतिसार और प्रवाहिका में लाभ प्रद है। गंडूपद कृमियों के लिये प्रातः काल पूगी चूर्ण का १ छोटा चमचा दूध के साथ पिलाया जाता है, स्कंध कृमियों के लिये २ चमचे की मात्रा देनी चाहिये। इससे कृमि मर कर निकल जाते हैं। पूगी पाक स्त्रियों के रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर के लिये उत्तम औषधि है। नाड़ी मंडल के लिये बल्य होने के कारण भी श्वेत प्रदर आदि निर्बलता जन्य रोगो को हटाता है। सुपारी के कोयले खदिरसार तुत्थ से बनी मलहम त्रिफला प्रलेप के समान ही फ़िरंग व्रण शोषक है।

१३ मायाफल नाम हिंदी—माजूफल या माजू। इंगलिश Oak galls लेटिन Quercus Infectoria

प्राप्ति तथा वर्णन—फारस आदि देशों में इस वृक्ष की छोटी २ शाखाओं में एक कीट छिद्र कर उसमें अपने अंडे देता है। वृक्ष में से रस निकल कर अंडे के चारों ओर जमता २ बड़े आकार का हो जाता है। कीड़ा अन्दर ही अन्दर बढ़ता और रस जमी हुई लाख में से मार्ग बनाकर बाहर निकल जाता है। यह लाख कीड़े के निकलने से पूर्व कुछ अधिक श्याम और निकलने के बाद कुछ श्वेत हो जाती है। काली श्याम वर्ण लाख अधिक श्रेष्ट है। इसकी लाख औषधियों में काम आती है।

विश्लेषण—(Tannic acid) ५०-६०% (Gallic acid) ३% होता है।

योग—ग्राहकाम्ल-माजूफल की लाख को तोड़ कर ईथर या मद्यसार मिश्रित जल में दो चार दिन रख द्रव मात्र को छान, वाष्पीकरण द्वारा उड़ा दिया जाय तो नीचे ग्राहकाम्ल (Tannic acid) रह जाता है; जो हलका भूरा सा, विशेष गंध का चूर्ण होता है और समान जल में घुल जाता है। मात्रा ५ से १० यव।

मायाफलाम्ल—[Gallicacid] थोड़े गंधकाम्ल मिश्रित जल में माजूफल की लाख को उबाल, गरम २ ही छान; ठंडा कर लिया जाय तो यह नीचे बैठ जाता है।

मायफल कषाय—लाख को १० गुना जल में गरम कर बनावें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—रस-कषाय, गुण-रुक्ष लघु, वीर्य-शीत, पाक कटु, दोष-कफ पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह उत्तम ग्राही है। माजूफल की लाख बड़ी ग्राही है। मुख, नास, कर्ण, गुदा, योनि मार्ग आदि की भिन्न २ शोथों और स्रावों को हटाने के लिये उन्हें माजूफल लाक्षा के कषाय से धोना या पिचकारी देना लाभकर है। मुख शोथ, गल शोथ तथा मुख स्फोट में इसके गरम कषाय के गरारे दिये जाते हैं। ग्राहकाम्ल को ५ गुना मधु या ग्लिसरीन में मिला फुरेरी से गले में लगाते हैं। दन्त मांस शोथ में सुपारी और माजूफल की लाख को अन्तर्धूम दग्ध कर थोड़ा लवण मिला कर मञ्जन करने से दन्त मांस शोथ हट जाती है। रक्तार्शस् तथा वातार्शस् में इसकी लाख १० भाग, अफ़ीम १ भाग; कपूर २ भाग, को ५० भाग वैसलीन में मिला लेप करने से स्राव औरशोथ को आराम आता है। गुदभ्रंश में इसके कषाय की छोटीवस्ति तथालेप लाभदायक हैं। ग्राहकाम्ल रक्त स्राव को रोकनेके लिये लगाया जाता है। पूयमेह में लाखके कषाय की पिचकारी देने से मूत्रनाली की शोथ हटती है। मायाफल स्फटि की, समुद्रशोष के सूक्ष्म चूर्ण के योनि में रखने से योनि संकोचन होता है।

१४—कुटज नामहिन्दी—कुडा अंग्रेजी (Kurchi) लेटिन Holorrhena antidysentrica।

प्राप्ति तथा वर्णन—हिमालय के गरम भागों में एक स्वल्पाकार वृक्ष, त्वक् चौथाई इंच मोटी, खुर्दरी, भूरी, पत्ते ६" से १२" लम्बे, १॥" चौड़े, लम्बे अंडाकृति, फूल छोटे, श्वेत, फली ८" से १६" लम्बी $\frac{1}{4}$" से $\frac{3}{4}$" मोटी, मुड़ी हुई, बीज आध " लम्बे, बड़े जौ के समान होते हैं। इनको इन्द्रयव कहते हैं। इसकी त्वक् और बीज काम आते हैं।

विश्लेषण—इसके त्वक् और बीजों में एक क्षारीय तत्व होता है जिसे (Conessinewrightine) या [Kurchisine] कहते हैं। यह चूर्ण रूप होता है तथा हलके अम्ल और मद्यसार में घुल जाता है। इसमें एक दूसरा क्षारीय तत्व है जो [Holarrhenine) कहा जाता है। यह मद्यसार क्लोरोफार्म में नहीं घुलता और 'Ethyle acetate' में से स्फटिकों में प्राप्त होता है।

योग—कुटजकषाय-१६ गुणा जल में बनावें। मात्रा २ औंस।

कुटजरसक्रिया-कषाय को उबलते जल पर गाढ़ा करके बनावें। मात्रा-५ से ३० यव।

इन्द्रयवचूर्ण--मात्रा-१० से ६० यव।

कुटजादि कषाय—कुटज त्वक्, दाडिमफल त्वक्, मुस्ता, धातकी, बालविल्व, वालक, लोध्र, चंदन, पाठा समान भाग को १६ गुणा जल में चौथाई कषाय करें, मात्रा-आधे से ४ औंस। रोग—प्रवाहिका, अतिसार।

कुटजाष्टक—(भै० र०) कुटजत्वक्, १०० भाग को १६ गुणा जल में चौथाई कषाय कर मोचरस, पाठा, मंजिष्टा, अतिविषा, मुस्ता, बिल्व, धातकीपुष्प १-१ भाग डाल उबलते जल पर रख रस क्रिया बनावें। मात्रा-५ से ३० यव। रोग—अतिसार, प्रवाहिका, प्रदर,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रक्तार्शस् । यदि इसमें अभ्रक भस्म और लोहभस्म १-१ भाग भी डालें तो इसे प्रदरारि लोह कहते हैं। (भै० र०)

कुटजारिष्ट—कुटजत्वक्, १०० मृद्विका ५०, मधूक पुष्प-१०, काश्मरी-१० जल १०२४ भाग चौथाई कषाय करें। गुड़ १००, धातकी-पुष्प- २० भाग डालकर आसव बनावें। मात्रा—२ से ८ ड्राम। रोग—अतिसार, विषमज्वर। (शा० ध०)

गुण—रस-तिक्त, गुण-रूक्ष, वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष-पित्तकफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—अतिसार हर, प्रवाहिका हर, रक्तपित्तहर है। गर्भाशय तथा महास्रोतस आदि से रक्त जाता हो तो उसे बन्द करता है। यह निम्ब के समान विषम ज्वरहर और आंत्रकृमिहर भी है। प्रवाहिका के लिये यह बहुत उपयोगी औषधि है विशेषतः वह प्रवाहिका जिसमें amaeba पाये जाते हैं और जिसके लिये Emetine नामक औषधि दी है। कुटज के सम्मिलित क्षारीय तत्वों को Emetine के समान सूचीवेध द्वारा दिया गया है और उसकी अपेक्षा बहुत अधिक प्रभावशाली पाया गया है इस प्रकार की प्रवाहिका के देर तक रहने से यकृत में शोथ भी हो जाती है। कुटज के सम्मिलित क्षारीय तत्वों का सूचीवेध देनेसे वह भी हट जाती है। कुटजाष्टक या कुटजादि कषाय दिन में ३-४ बार निरन्तर कुछ दिन तक देने चाहिये। ग्रहणी रोग में पर्पटी के अतिरिक्त एक समय कुटज का कोई योग भी देना चाहिये। कुटजत्वक् को चावलों के पानी से कूट, जामुन के पत्तों में लपेट, बांधकर खुला फूंक दिया जाय और भस्म को छानकर आधा या १ तोला की मात्रा में तक्र के साथ प्रातः दिया जाय ग्रहणी रोगको बहुतही लाभ होता है साधारण अतिसार के लिये भी कुटज बड़ा लाभदायक है। रक्तार्शस् रक्तप्रदर में इसके देने से रक्त बन्द हो जाता है। विषम ज्वर में निम्ब के समान या उसकी अपेक्षा अधिक लाभदायक है। इसके लिये कुटजारिष्ट दिया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शीत तथा पित्तहर द्रव्य

१-मधुयष्टी—नाम हिन्दी-मुलट्ठी । इंग्लिश Liguorice लैटिन Glycyrrhiza Glabra.

प्राप्ति तथा वर्णन—यह बाहिर के देशों में होती है, अफगानिस्तान और फारिस में मिलती है तथा पेशावर में बोई जाती है। इसकी जड़ काम आती है।

विश्लेषण—इसमें एक पीला सा चूर्ण रूप Glucoside होता है जिसे Glyoyrrhizin कहते हैं। इसके सिवाय asparigin, Suger, Starch Resin, Gum, Mucilage Phosporic, Sulpuric तथा Malicacids Calciam और Magnesium के Salts होते हैं।

योग—मधुयष्टी चूर्ण -१० से ६० ग्रेन। मधुयष्ठी रसक्रिया ५ से २० ग्रेन।

मधुकादि कषाय—मधुयष्ठी, गुडूची, पर्पट, सूक्ष्म पत्ता प्रत्येक १, कटुकी आधा, स्वर्णपत्री ६ भाग। कषाय में मिश्री डालकर पिलावें। मात्रा—आधा से २ औंस। रोग-वात पित्त ज्वर।

गुण—रस मधुर किञ्चित तिक्त, गुण-गुरु, स्निग्ध, बीर्य-शीत, पाक-मधुर, दोष-वातपित्त हर।

प्रभाव तथा उपयोग—मुख गले आदिकी शोथ को हटाती है, इसलिये कंठ्य तथा स्वर्य है। शरीर जन्य, दाह, तृषा और रक्त संचय जन्य विकारों को हटाती है। शीत होनेके अतिरिक्त बल्य है इसलिये क्षय रोग तथा निर्बलता के लिये विशेष हितकर है। मधुयष्टी कषाय में कईबार घृत को धोकर लगाने से विष जन्य शोथ, आघात जन्य शोथ, दाह हट जाते हैं। चंदन के साथ मधुयष्टी भी घिसकर लगा सकते हैं। नेत्र शोथ में इसके कल्क को आंख की पलक पर बांधने से शोथ बैठ जाती है। नासा शोथ के कारण होने वाले सिर दर्द को हटाने के लिये मधुयष्टी चूर्ण में चौथाई वत्सनाभ चूर्ण मिलाकर नस्य देते हैं। पित्त जन्य गल शोथ, कण्ठशोथ में मधुयष्टी की रसक्रिया को मिश्री के साथ मिलाकर मुख में रखा जाता है। मुख स्फोट भी इसके रखने से हट जाते हैं। पित्त प्रकोप के कारण ज्वर आदि में उत्पन्न हुई अति तृषा को हटाने के लिये मधुयष्टी या इसकी रसक्रिया को मुख में रख सकते हैं। मुख द्वारा रक्त की वमन होती है या फुफ्फुस तथा श्वास नालियों से रक्त आता हो तो चंदन और मधुयष्टी का फाण्ट या पाक दिये जाते हैं। रक्त पित्त के लिये यह उपयोगी औषधि है। इन रोगों में मधुयष्ठी से पकाया हुआ दूध पिलाना चाहिये। पूय मेह तथा शुक्रमेह के लिये ऐसा दूध बड़ा लाभदायक है। कुछ दिन ऐसा दूध पीने से शुक्रमेह हट जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२-कुटकी-नाम हिन्दी-कुटकी। इंग्लिश (Picrorrhiza) लैटिन। Picrorhiza Kurrooa.

प्राप्ति तथा वर्णन—काश्मीर से सिक्कमतक प्राप्त होने वाला एक छोटा क्षुप है जिसका मुख्य मूल बहुवार्षिक, काण्ड छोटा, अंगुली के समान मोटा, ६" से १०" लम्बा, सूखे पत्तों से घिरा, पत्र जिह्वाकार, आगे से कुछ फैले हुये, मूलपर संकुचित, कटे हुये किनारों वाले, फूल नीले रंग के, मूल पर छोटे २ उपमूलों के चिन्ह, यह अन्दर से काले रंग की होती है मूल काम आता है।

विश्लेषण—मूलमें एक (Glucoside) होता है। जो स्वाद में कड़वा, जल और मद्यसार में घुल जाता हैं, इसे (Picrorrhizin) कहते हैं मूल में [Catharicacid] भी होता है।

योग—कुटकी चूर्ण- १० से ३० यव [ज्वरहर] १ से ४ ड्राम [पित्त रेचक]

कटुकुयासव-५ गुणा मद्यसार, ४५% में बनावें। मात्रा-आधे से १ ड्राम।

कुटकी रस क्रिया-कषाय को गाढ़ा कर बनावें मात्रा-२ से १० यव।

गुण—रस--तिक्त, गुण--लघुरुक्ष, वीर्य--शीत, पाक कटु, दोष--कफ पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—आमाशय के लिये बल्य है अन्न की रुचि उत्पन्न करती है। अधिक मात्रा में देने से पित्त विरेचक है। यकृत से मलमूत्र पित्त को निकालती, पित्त की वृद्धि को हटाती और रक्त को शुद्ध करती है। पित्त के कारण हृदय की गति तीव्र हो तो उसे ठीक करती है। इस के वमन को घटाती है। विषम ज्वर तथा पित्ताधिक ज्वर को हटाती है।

पित्ताधिक ज्वरों में कटुकी में समान द्राक्षा हरीतकी, आरग्वधमज्जा, मुस्ता, पर्पटक मिला कषाय बनाकर देने से मलबन्ध, पिपासा वमन, दाह; प्रलाप हटते हैं तथा ज्वर कम होता है। रक्तदोष, स्तन्य दोष ज्वरों के पीछे की निर्बलता, अम्लपित्त में भी यह कषाय पिलाना चाहिये। जलोदर तथा तीव्र श्वयथु रोग में १ से ३ तोला कटुकी का कषाय कर कुछ दिन तक प्रतिदिन पिलाते रहने से रेचन होकर रोगी को बहुत लाभ होता है। इसके साथ भोजन में केवल दूध देना चाहिये विषमज्वर में त्रिफला और कटुकी का कषाय या कटुकी की गोलियां कुछ दिन तक देने से अवश्य लाभ होता है।

३-किराततिक्त-नाम-हिन्दी—चिरायता। इंगलिश Chiretta लैटिन Swertia Chirata

प्राप्ति तथा वर्णन—हिमालय पर काश्मीर से भूटान तक इसका बहुवार्षिक क्षुप होता है। तना आधा से ५ फिट ऊंचा, शाखायें पतली, पत्र ५ मध्य नाड़ियों से युक्त २" लम्बे पौन" चौड़े, निम्नपत्र कुछ बड़े, लम्बे, अंडाकार फूल गोल लम्बे डंठल पर, आमने सामने लगी छोटी २ डंडियों पर, कुछ हरे रंग के छोटे २ होते हैं। इसका पञ्चाङ्ग काम आता है।

विश्लेषण—इसमें हलका सा पीला तिक्त तत्त्व होता है जिसे Chiratin कहते हैं। यह जल मद्यसार ईथर में घुलता है। टैनिक एसिड के साथ मिला देने से इसका एक अविलेय ए-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दार्थ बन जाता है। इसमें एक दूसरा तत्व Ophelic acid है जो चूर्णरूप पीला, चमकीला होता है तथा जल, मद्यसार, ईथर में घुलता है। चिरायते में टैनिक एसिड नहीं होता।

योग – "किराततिक्ता चूर्ण" १० से ३० यव।

किराततीतका कषाय-१६ गुणा जलमें चौथाई कषाय करें। मात्रा-१ से ४ औंस।

किरातिक्ताआसव ६० गुणा मद्यसार ६० % में बनावें। इसमें आधा नारंग त्वक् और चौथाई एला भी डाल सकते हैं। माशा – २ से १० माशे।

किराततिक्ता रस क्रिया-कषाय को गाढा करके बनावें। मात्रा-२ से १० यव।

भूनिम्बादि कषाय—किराततिक्ता, वासा, कटुकी, पटोल, त्रिफला, चंदन, निम्ब समान २ कषाय करें। मात्रा-१ से ४ औंस। रोग स्फोट, कण्डु, पिडिका, विसर्प, अम्लपित्त, विषमज्वर, पित्तज्वर। (भै० र०)

लघुसुदर्शन चूर्ण गुडूची, पिप्पलीमूल, कटुकी, हरीतकी, निम्ब त्वक्, चंदन, लवंग, शुण्ठी प्रत्येक, १, किराततिक्ता, ४॥ भाग। चूर्ण बनावें। मात्रा २ से ८ ड्राम। रोग ज्वर नैर्बल्य, अम्लपित्त, रक्तदोष। बो० र०

पंचतिक्त पानक--किराततिक्ता, कटुकी, मुस्ता, पर्पटक, गुडूची, समान २ का कषाय कर समान या द्विगुण खांड डाल पानक बनावें। मात्रा २ से ८ ड्राम। रोग--ज्वर नैर्बल्य अम्लपित्त, रक्तदोष।

गुण –रस--तिक्त, गुण--लघुरूक्ष, पाक--कटु, वीर्य शीत, दोष- कफ पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह आमाशय के लिये बल्य हैं। भोजन की रुचि उत्पन्न करता है। ज्वर जन्य निर्बलता के लिये विशेष उपयोगी है। यकृत में से मलभूत पित्त को निकालता है जिससे यकृत् शुद्ध होता, अशुद्ध रक्त जन्य, स्फोट आदि हटते हैं। और सर्वांग की दाह शान्त होती है। यह आन्त्र कृमि हर भी है। ज्वरों के पीछे आमाशय और शरीर की निर्बलताओं को हटाने के लिये, यकृत के शोधन के लिये लघुसुदर्शन चूर्ण, पंचतिक्त, पानक दिये जाते हैं। अम्लपित्त रोग के लिये प्रातःकाल इसका सेवन करना चाहिये। अशुद्ध रक्त जन्य त्वग् रोगों में रक्त शोधन तथा स्तन्य रोगों में स्तन्य शोधन के लिये इसका कुछ काल निरन्तर सेवन करना चाहिये।

४-अतिविषा नाम हिन्दी-अतीस। इंगलिश [atis] लैटिन Aconitum Heterophyllum.

प्राप्ति तथा वर्णन—हिमालय पर सिंध नदी से कुमायूं तक ५ हजार से १५ हजार फीट की ऊंचाई तक मिलता है। क्षुप छोटा तना सीधा, पत्रयुक्त, पत्र २" से ४ लम्बे, ऊपर के पत्ते तीव्र, दन्तुर, नीचेके पत्ते लम्बी पत्रनाल युक्त, फूल १" लम्बे सुन्दर चमकीले नीले, मूल पर छोटे २ उपमूल होते, अन्दर से श्वेत, भंगुर स्वाद में कड़वा होता है। मूल काम आता है।

विश्लेषण—इसमें एक तिक्त रस, क्षारीय तत्व होता है। जिसे [atisine] कहते हैं जो विषेला नहीं होता। इसके अतिरिक्त Tannic acid, aconitic acid, starch होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

योग—अतिविषा चूर्ण-५ से ३० यव। अतिविषा कषाय-१ से २ औंस।

अतिविषाआसव-५ गुणा मद्यसार ६०% में बनावें। मात्रा-आधा से १ ड्राम।

अतिविषादि कषाय—अतिविषा, शुंठी, कुटज त्वक्, मुस्ता, गुडूची, समान २ भाग, कषाय बनावें। मात्रा—आधा से २ औंस। रोग--ज्वरातिसार।

गुण—रस--कटु तिक्त, गुण-लघु, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-कफपित्त हर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह आमाशयके लिये बल्य है तथा आमाशय और आंतो के पित्त प्रकोपों को शान्त करता और ज्वरहर है। बालकों के वमन, अतिसार को शान्त करने के लिये अतिविषा का चूर्ण या कषाय मधु के साथ दिया जाता है। ज्वर के पीछे या ज्वर में होने वाली निर्बलता अरुचि और अतिसार के लिये अतिविषादि क्वाथ देना चाहिये। विषम ज्वर में हरताल भस्मके साथ इस कषाय को दिया जाय तो ज्वर आना बन्द हो जाता है।

५-महातिक्ता-नाम-हिन्दी-किर्यात। इंग्लिश Kalmeg लैटिन andrographis, Panicolata

प्राप्ति तथा वर्णन—यह बंगाल में विशेषतः होता है। इसका क्षुप वार्षिक १ से ३ फिट ऊंचा, सीधा, पत्र २" से ३" लम्बे, नुकीले, मालाकार ४ से ६ पार्श्वीय नाड़ियों वाले, फूल, लम्बी डंठल पर लगी डालियों पर छोटी २ डंडियों पर लगाते हैं, सर्वांग काम आता है।

विश्लेषण—इसमें एक तिक्त तत्व होता है, जिसे Kalmegin कहते हैं। जल और मद्यसार में घुल जाता है, इसमें एक कड़वा Kalmegic acid भी है।

योग—महातिक्ता कषाय—१६ गुणा जल में चौथाई कषाय, मात्रा—आधा से २ औंस।

महातिक्ता रस क्रिया—स्वरस या कषाय को गाढ़ा करके बनावें, मात्रा—२ से १० ग्रेन।

महातिक्ता आसव—१० गुणा मद्यसार ४५% में बनावें। इसमें नारंग त्वक् आधा, एला आधा भाग भी डाल सकते हैं। मात्रा—आधा से १ ड्राम।

महातिक्ताचूर्ण -१० से ६० यव।

गुण प्रभाव तथा उपयोग—प्रायः किरात तिक्ता के समान है। विषमज्वर के लिये उपयोगी है

६-मुस्ता-नाम-हिन्दी—मोथा। लैटिन Cyperos Rotundum

प्राप्ति तथा वर्णन—यह जलीय प्रदेशों में विशेष तया प्राप्त होने वाला बहुवार्षिक क्षुप है। मूल में काले, सुगन्धित, गोल से, छोटे कंद होते हैं। इसका मूल औषधियों में काम आता है।

विश्लेषण—[Starch. Gum, Sugar] के अतिरिक्त एक बहुत थोड़ा सा क्षारीय तत्व भी होता है।

योग—मुस्तादि क्वाथ—मुस्ता, अतिविषा, शुण्ठी, बालक, इंद्रयव, समान २ मिला कषाय बनावें मात्रा-आधे से २ औंस। अतिसार विशेषतः बालातिसार। वै० ८०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुस्तादि क्वाथ—मुस्ता, पर्पट, नीलोत्पल, किराततिक्ता, उशीर, चंदन समान २ मिला १६ गुणा जल में चौथाई कषाय करें। ६ गुणा जल में फाण्ट भी बना सकते हैं। मात्रा—अर्धौंस से २ औंस। रोग—पित्तज्वर, पिपासा, दाह, वमन। भै० र०

गुण—रस मधुर, तिक्त, कषाय, गुण-लघु, वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष-कफ पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—मुस्ता महास्रोतस के दोषों को शान्त करता है। रक्त के पित्तजन्य प्रकोपों को भी शान्त करता है। ज्वरों में पिपासा, वमन, सर्वांग दाह, अतिसार आदि को शान्त करने के लिए मुस्ता के शीत फाण्ट में मिश्री डालकर थोड़ा २ पिलाया जाता है मूत्रदाह के लिये भी मुस्ता फांट मिश्री डालकर पिलाया जाता है।

७-धान्यक नाम-हिन्दी—धनिया। इंग्लिश Coriander लैटिन Coriandrum Sativum.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र पाया जाने वाला डेढ़ से ढाई इंच ऊंचा, वार्षिक, कोमल क्षुप। प्रारम्भिक पत्र २। ३ भागों में फटे हुये, वास्तविक पत्र पतले दो तीन भागों में फटे हुये, फूल श्वेत, बैंजनी छोटे २ गुच्छों में, फल भूमण्डलाकार, किनारीदार। फल औषधियों में काम आते हैं।

विश्लेषण—इसमें १% अस्थिर तेल और १५% स्थिर तेल होता है।

योग-धान्यक फाण्ट—४० गुणा जल में बनावें। मात्रा—१ से २ औंस।

धान्यक तेल - १ से ४ बूंद।

गुण—रस-तिक्त कषाय, गुण-स्निग्ध, वीर्य शीत, पाक-मधुर, दोष-त्रिदोषहर, विशेषतः पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—धान्यक शीत तथा पित्तहर है। नेत्र, आमाशय, मस्तिष्क, मूत्रनाली और श्वासनाली में विद्यमान दाह और शोथ को हटाती है। नेत्रशोथ नेत्रव्रण जैसे कि मसूरिका में होजाते हैं धान्यक फाण्ट द्वारा धोने से अच्छे होजाते हैं। मुख स्फोट व्रण में धान्यक फाण्ट के गंडूष दिये जाते और भल्लातक जन्य शोथ को हटाने के लिये भीगा कपड़ा रखा जाता है। पित्तजन्य तृष्णा, वमन अतिसार में मिश्री मिलाकर धान्यक फाण्ट थोड़ा थोड़ा पिलाया जाता है। इस फाण्ट में इमली आलुबुखारा या आमतकी मिलाकर दे सकते हैं। गर्भिणी के वमन के लिये धान्यक फाण्ट बड़ा उपयोगी है। आंतों में आध्मान शूल आदि में धान्यक फाण्ट या धान्यक तेल भी दे सकते हैं। रक्तप्रदर, रक्तार्श, सर्वाङ्गदाह राजयक्ष्मा के कारण श्वास नालियों से रक्तस्राव को रोकने के लिये धान्यक फाण्ट देते हैं। धान्यक का दूध में बनाया हुआ फाण्ट भी इन पित्तजन्य उपद्रवों को तथा मूत्रमार्ग की दाह को शान्त करता है।

८-उशीर-नाम-हिन्दी—खस। लैटिन Andropogon muricatum।

प्राप्ति तथा वर्णन—गीले प्रदेशों में एक झुण्ड के आकार का क्षुप। मूल अनेक, लम्बी, सुगंधित पत्र-१ से आधे इंच लम्बे, तंग आगे से तीखे। मूल औषधियों में काम आती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विश्लेषण—मूल में एक अस्थिर तेल होता है जिसे खस का इत्र कहते हैं।

योग-उशीरफाएट—२० गुने जल में बनावें। १ से २ औंस।

उशीरासव—उशीर, गन्धवाला, नीलोत्पल, काश्मरी, पद्मकाष्ठ, लोध्र, प्रियंगु, धमासा, मंजिष्ठा, किरातिक्त, पाठा, न्यग्रोध, उदुम्बर, शठी, पर्पट, पुण्डरीक, जम्बूत्वक् पटलो, कांचनारत्वक्, मोचरस प्रत्येक १, द्राक्षा २०, जल ५१२, शर्करा १००, मधु ५०, आसव बनावें। मात्रा २ से ८ ड्राम रोग—रक्तपित्त, रक्तार्शस्, शुक्रमेह, त्वग्रोग, पांडु।

गुण—रस-मधुर तिक्त, गुण-लघु वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष-पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह शीतल और ग्राही है रोगी के शरीर को ठंडा करने के लिये इसकी टट्टियां खिड़कियों पर लगाई जाती हैं। अतिज्वर में उशीर, गंधवाला चन्दन आदि में से किसी के ४० गुणा जल में बने शीत कषाय से रोगी को स्नान कराने से ताप परिमाण घट जाता है। पित्तज्वरों में दाह, पिपासा, वमन, अतिसार को हटाने के लिये उशीर फांटमें मिश्री डालकर पिलाना चाहिये। उशीर का चन्दन आदि के साथ मिलाकर बनाया हुआ पानक भी दिया जाता है। विषूचिका की तीव्र पिपासा को शान्त करने के लिये यह फाएड दिया जाता है। कभी २ पहिले पानक बनाकर अन्त में इसके इत्र की १-२ बूंदें भी मिला दी जाती हैं। पूयमेहसे उत्पन्न मूत्रदाह तथा मद्य आदि उष्ण औषधियों से उत्पन्न उन्माद को हटानेके लिये इसके फाएट पानक आदि दिये जाते हैं।

९--ह्रीबेर-नाम-हिन्दी—नेत्रवाला सुगंध वाला लैटिन Paronia odorata.

प्राप्ति तथावर्णन -भारत के उत्तर, पश्चिमीय भागों में होने वाला, सीधा क्षुप। पत्र २॥ से ३ इंच लम्बे, उथले नोकदार पत्तों वाले, मूल कस्तूरी के समान सुगंधित होती और औषधियोंमें काम आती है।

विश्लेषण—२% अस्थिर तेल तथा Tonnic acid होते हैं।

योग-ह्रीबेरफाएट—२० गुणा जल में बनावें। १ से २ औंस।

षडंगोदकफाएट तथा पानक—मुस्ता, पर्पट, उशीर, चंदन, ह्रीबेर, सुण्ठो समान २ मिला ६ गुणा जल में फांट बना द्विगुण खांड डाल पानक बनावें। मात्रा पानक की आधा से १ औंस। मात्रा फांट—१से ४ औंस। रोग—पित्तज्वर, वमन, पिपासा, दाह।

ह्रीबेरादि कषाय—अतिविषा, मुस्ता, बालबिल्व कुटजत्वक्, मञ्जिष्ठा; धान्यक, लोध्र, शुन्ठी, धातकी समान २। १६ गुणा जल में चौथाई कषाय करें। मात्रा-आधा से २ औंस। रोग प्रवाहिका, ज्वरातिसार। (भै० र०)

गुण—रस-मधुरतिक्त, गुण-लघुरूक्ष, वीर्य--शीत, पाक--कटु, दोष--पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यहतृषा, दाहहर, आमाशय क्षोभहर, ग्राही, रक्त पित्त हर है। ज्वरों में पिपासा, दाह, वमन, अतिसार को शान्त करने के लिये चन्दन उशीर आदि के साथ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बनाया इसका फांट या पानक किया जाता है रक्त पित्त में यही फांट या नीलोत्पल, चंदन मधुयष्ठी, उशीर, धान्यक, त्रिवृत के साथ बनाया हुआ इसका फांट खांड या मिश्री डालकर देनाचाहिये। मसूरिका आदि स्फोट ज्वरों में ह्रीबेर आदि शीत द्रव्यों काफांट देने से रोग का वेग हलका हो जाता है।

१०--चन्दन नाम हिन्दी—श्वेत चंदन,। इंग्लिश Sandal wo dtree लैटिन—Santa'um album रक्तचंदन,। लैटिन-Pterocorpus Santalus.

प्राप्तितथा वर्णन—मैसूरकी रियासत में होनेवाला सदा हरा मध्यमाकार वृक्ष है। त्वक् श्वेत, भूरी, काष्ट कठोर, सुगंधित, शाखायें पतली पत्ते आमने सामने, पुष्प छोटे, भूरे, बैंजनी रंग के, गंध रहित। काष्ठ काम आता है।

विश्लेषण—इसके काष्ठमें एक अस्थिर तेल Sandal Wood Oil होता है इसका इसका रंग फीका पीला, सुगंधित ६ गुणा मद्यसार में घुल जाता है। काष्ठ में Tannic acid भी होता है।

योग-चंदनतेल—५ से २० बूंद। बताशे, गोलियों या बबूल निर्यास जलीय घोल में मिलाकर दिया जाता है।

चंदनपानक—६ गुणा जल में फांट बना द्विगुण खांड डाल बनावें। या पहिले पानक बनाकर चंदन तेल मद्यसार में मिला १ औंस में ५ बूंद के हिसाब से मिलादें।

चन्दनासव—चन्दन, रक्तचन्दन, बालक, मुस्ता, गाम्भारी, नीलोत्पल, प्रियंगु, पद्माक, लोध्र, मञ्जिष्ठा, पाठा, किरात तिक्ता, न्यग्रोधत्वक्, पर्पट, मधुयष्ठी, पटोल, पिप्पली, शटी, रास्ना, कांचनार त्वक्, आम्रत्वक्, मोचरस प्रत्येक १; धातकी १६, द्राक्षा २०, गुड़ ५०; खांड १००, जल ५१२, आसव बनावें। मात्रा २ से ८ ड्राम। रोग-पूयमेह, शुक्रमेह, रक्तमेह। (भै० र०)

चन्दनादिचूर्ण—चन्दन, जटामांसी, लोध्र, उशीर, पद्मकेशर, नागकेशर, मुस्ता, मिश्री, बिल्व, ह्रीबेर, पाठा, इन्द्रयव, कुटजत्वक्, नीलोत्पल, अतिविषा, धातकी, रसाञ्जन, मोचरस, मंजिष्ठा सूक्ष्मएला, दाडिमफल त्वक्, शुण्ठी जम्बूबीज, आम्रबीज, प्रत्येक समान समान चूर्ण बनावे। मात्रा--१० से ६० यव। रोग--रक्ताशंस्, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, अतिसार, गर्भास्राव, वमन। [भै० र०]

गुण—रस--मधुर तिक्त, गुण--रूक्षलघु, वीर्य--शीत पाक- कटु, दोष--कफ पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह शरीर में पित्त प्रकोप को शान्त करता है जिससे हृदय की तीव्र गति सर्वांग दाह, पिपासा, बमन, रक्त पित्त आदि शान्त होते हैं। श्वेत की अपेक्षा रक्त चंदन अधिक ग्राहीहै। नेत्रशोथ, कोठ, स्फोट पिडिका, विसर्पपर, चंदन फांट में १०० बार धोया हुआ घृत लगाया जाता है। राजयक्ष्मा के ज्वर में चंदन आदि शीत द्रव्यों के बने हुये तेल के मलने से शरीर के दाह, ज्वर और स्वेद शांत होते हैं। जब कोई वायु द्वारा फैलने वाला संक्रामक रोग फैला हुआ हो तो श्वेत चंदन, रक्त चंदन, निम्बपत्र, तगर क-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पूर, लोबान, छरीला, जटमांसी, खस, सर्षप इत्यादि सुगंधित द्रव्यों को मिलाकर कोयलों पर रख कर इनका धुआँ घर में देना चाहिये। ज्वरों में दाह, वमन, पिपासा, को शांत करने के लिये चंदन का पानक पानी के साथ थोड़ी २ देर बाद देना चाहिये। रक्तमेह, रक्तवमन नासा रक्तस्राव आदि में चंदन के योग दिये जाते हैं। पूयमेह में चंदन के तेल को सूक्ष्मएला, शीतलचीनी, सरलद्राव, (चीड़ के द्रव) के साथ मिला गोलियों के रूप में दिया जाता है। बबूल निर्यास के घोल और थोड़े पोटासद्राव, (लाइकरपोटास] के साथ मिला इसका दूध या मिश्रणबना देसकते हैं।

११-उत्पल नाम हिन्दी—कमल। इंग्लिश-Lotus लैटिन-Nymphae Lotus.

प्राप्ति तथावर्णन—तलावों में श्वेत, रक्त, नील भेद से तीन प्रकार का कमल होता हैं। श्वेत कमल [Nymphe alba] के पत्ते बड़े बड़े ५ से १० इंच व्यास के, पानी पर तैरते हैं। फूल श्वेत, पानी से आध इंच ऊपर लगते, प्रातः खिलते, शाम को, बन्द हो जाते हैं। रक्तोत्पल (Nymphae lotus) के पत्ते श्वेत से, कुछ बड़े, फूल लाल बड़े २, फलहरे, इनके कोष्टों में १५, १६ बीज भरे होते हैं।

नीलोत्पल—(Nymphae stellata) का क्षुप छोटा २ और फूल भी नीले रंग का छोटा होता है। रात में खिलता दिन में बन्द हो जाता है। इनके मूल, पुष्प, बीज, औषधियों में काम आते हैं।

विश्लेषण—फूल में १, २ क्षारीय तत्व होते हैं (Tannicacid) और (Gallicacid) भी होते हैं।

योग-उत्पल बीज चूर्ण—आधे से २ ड्राम।

उत्पलपानक—फाण्ट में खांड डालकर बनावे। मात्रा-२ से ८ ड्राम।

गुण—रस-मधुर कषाय, गुण-लघु, वीर्य-शीत पाक-कटु, दोष-पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह शीत होता है। गर्भिणी स्त्री के वमन के लिये इसके बीज लाभदायक है, नीलोत्पल, मुस्ता, लाजा, वटांकुर के चूर्णों की शहद में बनी गोली मुख में रखने से पिपासा हट जाती है। मुख, गुदा, मूत्रमार्ग, नासा, गर्भाशय आदि से रक्त जाता हो तो इसका उपयोगकर सकते हैं। गर्भ स्राव का भय हो तो कमल बीज या उत्पलपानक का सेवन करना चाहिये। शरीर में पित्त की अधिकता से हृत्कम्प हो हो उत्पलपानक बहुत लाभदायक होता है। कमल डोडों का चूर्ण गर्भिणी को देने से गर्भ रक्षा होती और बालक का रंग अच्छा होता है

१२--वासा नाम हिन्दी—वासा। लैटिन (Adhatodavasica.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र होनेवाली, सदाहरी ४ से ५ फिट ऊंची और कभी २ तो १५ से २० फिट ऊंची झाड़ी होती है। पत्र-४से ८ इंच लम्बा, नोकदार, फूल गुच्छों में लगते, रंग में श्वेत और आकार में सिंह के खुले मुख के समान होते हैं। इसका एक भेद 'काला वासा' भी होता है जिसमें कांटे होते हैं। इसकी मूल, त्वक्, पत्र, पुष्प काम आते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विश्लेषण—इसकी मूल, त्वक्, तथा पत्तों में एक क्षारीय तत्व होता है जो (Vesicine) कहाता है। क्षारीय जल तथा मद्यसार में घुल जाता है। (Acids) के साथ मिलाने से इसके (Salts) बनते हैं।

योग—वासास्वरस २ से ४ ड्राम,

वासाकषाय—आधे से २ औंस।

वासापानक—वासा स्वरस या कषाय में समान मिश्री डाल कर बनावें। २ से ८ ड्राम (इसमें द्राक्षा, मधुयष्टी, केलिसयम हाइपोफास्फाइट उचित मात्रा में मिला वासादिपानक बनालें)

वासा रसक्रिया—२ से ८ ग्रेन (इसमें मधुयष्टी वंशलोचन, पिपली चूर्ण गोलियां बनावें।

वासिकासव—५ गुनां मद्यसार (६०%) में बनावें मात्रा-आधे से एक ड्राम।

वासारिष्ट—वासापत्र-२००, जल ५१२ भाग, कषाय कर चौथाई रक्खें। गुड़ १००, धातकी ८, चतुर्जातकमिलित-४ भाग, अरिष्ट बनावें। मात्रा-२ से ८ ड्राम। रोग-कास, रक्तपित्त, क्षयरोग।

वासा हरीतकी अवलेह—वासा १००, जल २०० भाग, चौथाई कषाय कर, मिश्री १६० भाग डाल पकाकर हरीतकी ६४, पिप्पली २, वंशलोचन, चतुर्जातक (मिलित) १, माक्षिक ८ भाग डालकर अवलेह बनावें। मात्रा-१ से ४ ड्राम, रोग-रक्तपित्त, कास, क्षय, श्वास, हृद्रोग।

वासा कूष्मांडावलेह—कूष्मांड ५० भाग को कद्दूकसकर घृत १६ भाग भर्जित कर, वासा कषाय ६४ भाग में खांड १०० भाग डालकर पानक बना, कूष्मांड तथा मुस्ता, आमलकी, वंशलोचन, त्रिजातक, भारंगी प्रत्येक चौथाई, एला, शुंठी, धान्यक, मरिच प्रत्येक १, पिपली ४, मधु ८ भाग डालकर गाढ़ा अवलेह बनावें। मात्रा १ से ४ चमचे। रोग-कास, रक्तपित्त, अम्लपित्त, हृद्रोग, क्षयकास।

वासाघृत—वासा कषाय-४, वासा पुष्पकल्क चौथाई भाग, घृत १ भाग। घृत बनावें। मात्रा-१ से ४ चमचे, रोग- रक्तपित्त।

वासावलेह—वासा स्वरस १६, मिश्री ८ भाग पकाकर गाढ़ा होने पर पिप्पली २, घृत २, मधु आठ भाग; डाल अवलेह बनावें। मात्रा-१ से ४ चमचे। रोग-उरः, क्षय, पार्श्वशूल, रक्तपित्त, कास।

गुण—रस-तिक्त, गुण-लघु, वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष-कफपित्तपर।

प्रभाव तथा उपयोग—श्वास नालियों पर वासा का कफ संस्रक और उद्वर्त हर प्रभाव होता है, जिस कारण यह कास श्वास हर है। शरीर में पित्त के उपद्रवों को शांत करता है। अन्तः तथा बहिः प्रयोग में रक्त शोधक तथा स्वच्छ है। यह परार्थयी जीवाणुओं के लिये घातक है। इसके रसकषाय आदि से मच्छर मकड़ी, जोंक आदि भागते तथा दद्रु कण्डू आदि के कृमि मर जाते हैं। खड़े पानी में इसके पत्ते डाल देने से इसमें मच्छर नहीं ठहरते और इस प्रकार विषम ज्वर नहीं फैलता। त्वचा के कंडू, कच्छू, पामादि के धोने के लिये निम्ब के ही समान वासा का

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कषाय लाभदायक है। स्वच्य तेलोंमें बासा भी डालाजाता है। मुखस्फोटमें इसके पत्ते चवायें, या कषायके गंडूश लें। पित्त, श्लेष्मा जन्यकास के लिये वासाके योग बड़े उपयोगी हैं। काली खांसी में इसके कषाय में यवक्षार मिलाकर देने से वेग कम होता है, और कफ़ सुगमता से निकलता है। श्वास रोग के लिये भी इसके प्रयोग लाभदायक हैं। बासा के पत्र और धत्तूर पत्तों को मिलाकर धूम देने से श्वास के वेग कम होते हैं। उरः क्षय रोग के लिये बासा विशेष उपयोगी है। इसके देने से रक्त और कफ़ का आना बंद हो जाता है और ज्वर कम हो जाता है। वासा रक्तपित्त के लिये विशेष औषधि है। भिन्न २ रक्त स्रावों जैसे रक्तप्रदर, रक्त वमन, रक्त निष्ठीवन, रक्तार्श, रक्तमेह आदि में उसका स्वरस या अन्य प्रयोग दिये जाते हैं। कफ पित्त ज्वरों, स्फोट ज्वरों में किराततिक्त, त्रिफला के साथ इसका कषाय देना चाहिये। उसी प्रकार मसूरिका के दिनों में मसूरिका से बचने से लिये वासा स्वरस का कषाय प्रतिदिन थोड़ा २ पीना चाहिये। अम्ल पित्त रोग के लिये अन्य तिक्त द्रव्यों के समान वासा का किराततिक्ता त्रिफला, गुड़ूची आदि के साथ कषाय वा अन्य योग प्रातः काल देना चाहिये।

१३–पटोल नाम हिन्दी—कड़वापरवल। लैटिन Trichosanthes Dioica

आकृतितथा वर्णन–उत्तर भारत में यह एक वार्षिक फैलने वाली बेल हैं। कांड लोमश, पत्र ३ इंच लम्बे, २ इंच चौड़े, पान की भांति कुछ २ किनारेदार फल २ से ३॥ इंच लम्बा संतरेके समान इसके फल और पत्र इत्यादि का स्वाद कडुवा होता है। पञ्चांग औषधियों में काम आता है

योग पटोलादि क्वाथ—पटोल, त्रिफला, कटुकी, शतावरी, गुडूची समान २। १६ गुना जल डाल के कषाय करें। मात्रा–आधा से २ औंस। रोग–वातरक्त, मुखस्फोट, । यदि इसी कषाय में शतावरी के स्थान पर शुण्ठी डालें तो यह अम्लपित्त, पित्ताजीर्ण, पित्तशूलहर है।

(भै० र०)

पटोलादिक्वाथ—पटोल, गुडूची, मुस्ता, वासा, धन्वयास, किराततिक्ता, निम्ब, कटुकी, पर्पट। कषाय बनावें। मात्रा–आधा से २ औंस। रोग–स्फोटज्वर, पित्तज्वर, मसूरिका।

(भै० र०)

पटोलपत्रादिक्वाथ—पटोल, निम्ब, जम्बू, आम्र, मालती के समान २ पत्रों का कषाय करें। रोग–मुखस्फोट, मुख पाक में गण्डूष दें।

पटोलमूलादिचूर्ण—पटोल, मूल, हरिद्रा, विडंग, त्रिफला प्रत्येक १, कम्पिल्ल २, नीलीमूल ३, त्रिवृत ४ भाग। चूर्ण बनावें। मात्रा– १० से ६० यव। रोग–जलोदर, श्वयथु, कामला, पांडु।

पटोलादिघृत—पटोल, त्रिफला, रसाञ्जन समान २ का कषाय कर घृत बनावें। मात्रा–१ से ४ चम्मच। रोग–बालकों के स्फोट।

गुण–रस–तिक्त, गुण–लघुस्निग्ध, वीर्य–शीत, दोष त्रिदोषहर विशेषतः पित्तकफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—किराततिक्त के समान यह आमाशय तथा सर्वाङ्ग में हुये पित्त प्रकोप को

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शान्त करता तथा रक्त शोधक है। पटोलमूल पित्तरेचक है। कफ पित्तज्वरों में पिपासा वमन, दाह, स्फोटों को हटाने के लिये इसके क्वाथ दिये जाते हैं। अम्लपित्त रोग में इसका त्रिफला कटुकी आदि के साथ बना कषाय प्रातः सायं भोजन से १ घंटा पूर्व पिलाया जाता है। रक्त शोधक कषायों तथा मुख स्फोट, मुख पाक के गण्डूषों में भी इसका प्रयोग होता है।

१४ पर्पट नाम-हिन्दी—पित्तपापड़ा, शाहतरा। लैटिन-Oldenlanadia carymbosa.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र खेतों में उपजने वाला सुकुमार सा १ फुट ऊंचा क्षुप है। पत्ते पत्र नाल रहित कोमल, फूल छोटे २ नीले या लाल रंग के होते हैं।

विश्लेषण-इसमें एक क्षारीय तत्व तथा Sodsum, Potassium, Calcium के Salts होते हैं।

योग-पर्पटादि क्वाथ—पर्पट, गुडूची आमलकी समान २ का क्वाथ करें। मात्रा-आधे से २ औंस। रोग-पित्तज्वर। (भै० र०)

गुण—रस-तिक्त, गुरु-लघु, वीर्य-शीत, दोष-पित्त कफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—पित्त ज्वरों की अरुचि, वमन, दाह, पिपासा में पर्पटादि क्वाथ बड़ा लाभ दायक है, किरात तिक्ता आदि के समान होने के कारण उनके साथ भी मिलाकर दिया जाता है।

१८-निम्ब नाम-हिन्दी-नीम। इंगलिश Morgosa लैटिन-Melia Azadiracht।

प्राप्ति तथा वर्णन—२० से २५ फुट ऊंचा, सर्वत्र पाया जाने वाला, सुन्दर वृक्ष होता है। काष्ट कठोर, डंठल ८ से १५ इञ्चलम्बे, जिनपर २ से ८ पत्तियों की जोड़ियां, पत्ता १ से ३ इंच लम्बी, आधेसे डेढ़ इंच चौड़ी, भालाकार कुछ टेढ़ी, दन्तुर गूढी हरी, एक पार्श्व पर दूसरे पार्श्व से लम्बी, फूल ५ से ८ इंच लम्बी डंडी परलगाते हैं फलहरे, पीले, लम्बे, गोल पकने पर मीठे। इसका पंचांग काम आता है। निम्ब का एक भेद महानिम्ब Melia azedarach) बकायन होता है।

विश्लेषण—निम्ब त्वक् में एक Resinous alkaloid होता है जिसे Morgosine कहते हैं। पत्तों में अपेक्षया यह कम होता है परन्तु अधिक घुलनशील होता है। यह क्षारीय तत्व जल में घुल जाता है। बीजों में एक तेल होता है जिसे नीम का तेल Margosa oil कहते हैं। यह उग्र गन्ध फीका पीला क्लोरोफार्म ईथर में घुलता तथा मद्यसार में नहीं घुलता। इस तेलमें Fattyacids का मिश्रण रूप एक अम्ल होता है जिसे Margosic acid कहते हैं। Sodium Potassium के साथ इसके Saltsभी बनाये गए हैं। यह तेलकी भी अपेक्षा अधिक जीवाणु हर होता है।

योग-निम्बत्वक्कषाय—१६ गुणा जल में चौथाई कषाय करें। २ से ४ औंस (विषम ज्वरहर) १ से २ औंस (रक्तशोधक)।

निम्बत्वक्चूर्ण—१० से ६० यव।

निम्बत्वक्रसक्रिया—५ से २० यव (विषमज्वरहर) २ से १० यव (रक्तशोधक)।

निम्बबीजतेल—बीजों को दबा कर या बीज कल्क को पानी में गरम करके बनाया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निम्बबीज प्रलेप—बीजकल्क १, तिलतेल२, गरम कर तुत्थ $\frac{1}{10}$ भाग डाल पीस कर लेप बनावें। रोग अर्शस्।

निम्बपत्रादिलेप—निम्बपत्र, दारुहरिद्रा, मधुयष्टी, तिलकल्क समान २ घृत तथा मधु में मिला लेप बनावें। रोग-व्रण।

निम्बादिचूर्ण—निम्बपत्र १०, त्रिफला ३, त्रिकटु ३, यवानिका ५, लवणत्रय ३, यवक्षार २, चूर्ण बनावें। मात्रा १० से ६० यव। रोग-अम्लपित्त, अजीर्ण कृमि।

निम्बषट्कचूर्ण—निम्ब, इन्द्रयव, बिडंग, हिंगु अजमोदा, सैन्धव प्रत्येक १ भाग मिला चूर्ण बनावें। मात्रा-१० से ६० यव। रोग-आन्त्र कृमि।

पञ्चनिम्बचूर्ण—निम्बत्वक्, मूलत्वक्, पत्र, पुष्प, फल, प्रत्येक ३, चित्रमूल बिडंग, कुष्ठ, भल्लातक, हरीतकी, बाकुची, आमलकी, चक्रमर्द बीज, त्रिकटु, हरिद्रा, आरग्वध, गोक्षुर, लोह भस्म; प्रत्येक एकभाग मिला, भृंगराज, खदिर सार, बीजक के कषायों से भावना देकर चूर्ण बनावें। मात्रा-२ से ४ माशे रोग-त्वक्रोग।

निम्बादिक्वाथ—निम्ब, पर्पट, पाठा, पटोल, दोनों चन्दन, वासा, दुरालभा, आमलकी, नेत्रवाला कटुकी समान २ का कषाय बनावें। मात्रा-आधा से २ औंस। रोग-स्फोट ज्वर, मसूरिका, त्वग् रोग।

पंचतिक्तघृत—निम्ब, पटोल, कंटकारी, गुडूची, वासा, प्रत्येक १०, जल २५६, चतुर्थांश कषाय कर, घृत १६ भाग, त्रिफला ४ भाग डाल कर घृत बनावें। मात्रा-१ से ४ चम्मच। रोग-त्वक् रोग, दुष्टव्रण, आंत्र कृमि।

जात्यादितेल—जातिपत्र, निम्बपत्र, पटोल, कटुकी, दोनों हरिद्रा, शारिवा, मञ्जिष्ठा, हरीतकी, मधूच्छिष्ट, तुत्थ, मधुयष्टी, करंजबीज समान २ का, तैल बिधिसे तैल बनावें। रोग-व्रण, क्षत, त्वग् रोग।

गुण—रस तिक्त, गुण लघु, वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष-कफ पित्तघ्न।

प्रभाव तथा उपयोग—निम्ब विषम ज्वर हर, अरुचि हर, रक्त शोधक तथा यकृत के लिये पित्तानुलोमक है। बहिः प्रयागमें जीवाणु हर है। प्रायः सब प्रकार के व्रणों, कंडमाला, व्रण फिरंगव्रण, पामाव्रण आदि को निम्ब कषाय से धोया जाता है और निम्ब के लेप लगाकर बांधा जाता है। कण्डू आदि त्वग्रोगों और स्फोट ज्वरों के लिये भी उपरोक्त जात्यादि तेल लाभदायक है। कुष्ट रोग पर निम्ब बीज तेल को समान चावलमोगरा तेल में मिलाकर लगाते हैं। दन्त रोगों में नीम की दातुन की जाती तथा उसके कषाय से गरारे किये जाते हैं। दन्त रोगों में जात्यादि तेल मसूड़ों पर लगाया जाता है। निम्ब पत्र कल्क को जल में डाल मन्थन कर उत्पन्न हुई झाग के लगाने से सब प्रकार की स्थानिक दाह शान्त हो जाती है। डेढ़ गुणा सर्षप तैल में निम्ब बीज जला थोड़ासा तुत्थ मिला वातःशीर्ष पर लगाया जाता है।

विषम ज्वर के लिये निम्ब मूल त्वक् का कषाय २ से ४ औंस की मात्रा में दिन में ३

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

४ बार दिया जाय तो सिक्थाना के रुहान ही लाभ होता है। प्रातः निम्ब का गुडूची के साथ बना कषाय या निम्ब रस क्रिया इस प्रयोजन के लिये दी जाती है। स्फोट ज्वरों मे निम्बादि काथ लाभदायक है। अम्ल पित्त में भी यही कषाय या निम्बादि चूर्ण प्रातःकाल देने चाहिये। कामला रोग में निम्ब कषाय या स्वरस में मधु डालकर पिलाने से पित्त मल द्वारा निकलने लगता है। त्वचा के चिरस्थाई रोगों में पथ्य पूर्वक पञ्चनिम्ब चूर्ण का दूध या जल से निरन्तर सेवन कराने से विशेष लाभ होता है। आंत्र कृमियों के लिये अन्य तिक्त द्रव्यों के समान निम्ब भी दिया जाता है। निम्ब षट्क चूर्ण खिलाया जाता है और गुद कृमियों के लिये निम्ब कषाय की वस्ति भी कुछ दिन तक दी जाती है।

१५-दूर्वा नाम-हिन्दी—दूब। लैटिन-Cynodon doctylon.

प्राप्ति तथा वर्णन—यह सर्वत्र होने वाली, ४ फुंदों के फूलों वाली घास है।

योग-दूर्वा स्वरस – आधा से २ औंस।

गुण—रस-मधुर कषाय, गुण-स्निग्ध, वीर्य-शीत दोष-कफ पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह रक्त पित्त हर है। नासा, मुख, व्रण, कहीं से अधिक रक्तस्राव हो तो इसके स्वरस या कषायका बहिः प्रयोग किया जाता है। ४ भाग स्वरस में १ भाग घृत डाल कर दूर्वा का घृत भी बनाया जाता है। इससे पामा और विसर्प पर लगाने से दाह शांत होती है। रक्तप्रदर, रक्तार्श, रक्त मेह के लिये दूर्वा कषाय या घृत दिया जाता है।

१६—तिक्ता नाम-हिन्दी—नीलकांत। बंगला-कडु इंग्लिश Gentian लैटिन Gentiana Kurrooa।

प्राप्ति तथा वर्णन—उत्तर, पश्चिम हिमालय में शिमले से काश्मीर तक ५ हजार से १० हजार फीट की ऊंचाई पर होता है। मूल मोटा, तना ४ से १२ इंच, पत्ते ३ से ५ इंच लम्बे, चौथाई से आध इंच चौड़े, कनेर के पत्ते की तरह होते हैं। इसका मूल औषधियों में काम आता है।

विश्लेषण—इसमें एक तिक्ततत्व होता है जिसे (Gentian Bitter) कहते हैं। (Gentianic acid) और (Pectin) भी होते हैं। किराततिक्ता के समान इसमें भी (Tannic acid) नहीं होता।

इसके योग, गुण, प्रभाव तथा उपयोग किराततिक्ता के समान ही हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वातहर तथा आमवात हर द्रव्य

१--- गुग्गुल नाम-हिन्दी—गूगल । लैटिन (Balsamod ndron Muku'.

प्राप्ति तथा वर्णन—सिंध, राजपूताना, खानदेश आदि में एक छोटा सा वृक्ष है। इसका निर्यास जो सुगंधित, पिच्छिल, स्वर्णतुल्य, सुनहरी, गरमी से पिघलने वाला तथा पानी से मिलकर श्वेत सा घोल बनाने वाला होता है गूगल कहाता है। पत्र आगे की ओर कुछ दन्तुर होते हैं। गूगल खंडों की पोटली बना कर त्रिफला कषाय में लटका गरम करते हैं। थोड़ा २ हिलाने से निर्यास का बहुत सा भाग जल में घुल जाता है। कषाय के ऊपर के भाग को नितार कर मन्दाग्नि पर रख जल भाग उड़ा देते हैं जिससे गूगल शेष रह जाता है।

विश्लेषण—इसमें एक अस्थिर तेल, एक तिक्त तत्व और (Gum resin) होते हैं।

योग-योगराज गुग्गुलु—चित्रमूल, पिप्पलीमूल, दोनों अजमोदा, विडंग, सर्षप, शतपुष्पा, कृष्णजीरक, देवदारु, चव्य, बड़ीएला, कुष्ट, रास्ना, गोक्षुर, धान्यक, त्रिफला, मुस्ता, त्रिकटु, त्वक्, उशीर, सर्जक्षार, यवक्षार, तालीशपत्र, लवंग, सुंठी, दन्तीबीज, गुडूची, हवुषा, अश्वगंधा, शतावरी, प्रत्येक १, लोह भस्म ४ भाग, गुग्गुलु सर्वतुल्य। इसका चूर्ण या ८ यव की गोली बनावें। मात्रा-२ से ४ गोली रोग-आमवात अर्शोऽङ्कुर शोथ, यो० र०

अमृतागुग्गुलु—गुडूची १००, दशमूलमिलत १००, पाठा, बला, कटुकी, दारुहरिद्रा, एरण्डमूल, मूर्वा प्रत्येक १०, हरीतकी २०० फल, आमलकी विभीतकी प्रत्येक १००, फल, जल ५१२ भाग। $\frac{१}{८}$ कषाय कर उसे गाढ़ा करें, उसमें गुग्गुलु १६, शुंठी, गुडूचीसत्व, पिप्पली प्रत्येक २भाग डालकर घृत के साथ ८ यव की गोली बनावे मात्रा-२ से ४ गोली। रोग-त्वक् रोग, आमवात, चिरस्थायी प्रतिश्याय, वातरोग।

(भै० र०)

रास्नादि गुग्गुलु—रास्ना, गुडूची, एरंडमूल, सुरदारु, शुंठी प्रत्येक १, गुग्गुलु ५ भाग मिला ८ यव की गोली बनावें। मात्रा-२ से ४ गोली रोग-नाड़ीव्रण, भगन्दर, आमवात। (यो० र०)

कांचनारगुग्गुलु—कांचनारत्वक् ५, त्रिकटुमिलित ३, त्रिफलामिलित १॥, बरुणत्वक् चौथाई, त्रिजातक प्रत्येक $\frac{१}{८}$ गुग्गुलु सर्वतुल्य। ८ यव की गोली बनावें मात्रा-१ से ४ गोली। अर्बुद ग्रन्थ, व्रण, भगन्दर, विद्रधि में कांचनार त्वक्षाय या अर्क से दें।

त्रिफलादि गुग्गुलु—त्रिफला १५, विडंग ७, लोह भस्म २, बाकुची १०, शिलाजतु आधा, पुष्करमूल १, चित्रमूल, आधा, त्रिवृत्त या दन्तीबीज आधा, त्रिकटु प्रत्येक आधा, त्रिजातकमुस्ता प्रत्येक चौथाई, भल्लातक १०० फल, गुग्गुलु २। खांड के पानक से मर्दन कर ८ यव की गोली बनावें। मात्रा २ से ४ गोली। रोग-चिरस्थायी त्वक् रोग, शिर, नेत्र, कंठ, मुख आदि के भिन्न २ रोग। (यो० र०)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पंचतिक्ता गुग्गूलुघृत—निम्ब, गुडूची, वासा, पटोल, कंटकारी; प्रत्येक१०, जल २५६ आधा कषाय करे। घृत १६ भाग और पाठा, विडंग देवदारु, गजहिप्पली, दोनों क्षार, शुंठी, मरिच, हरिद्रा मिश्रेया, चव्य, कुष्ट, कुटज, त्वक्, कटुकी, भल्लातक, त्रिफला, मञ्जिष्ठा अतिविषा, वचा, पिप्पलीमूल, चित्रमूल, जारक, तजोवती, यवानिका, प्रत्येक चौथाई गुग्गुलु ५ भाग डाल कर घृत बनावें। मात्रा-२ से ४ चमचे। रोग-चिरस्थायी त्वक्रोग, वातरोग, भगंदर, गंडमाला, व्रणनाड़ीव्रण।

सिंहनाद गुग्गुल—त्रिफला, कषाय ३ भाग, एरंडमूल कषाय ८ भाग, को गाढ़ा कर गंधक १, गुग्गुलु १, मिलाकर ८ यव की गोली बनावें। मात्रा-१ से ४ गोली। रोग-आमवात वातरक्त त्वग् रोग कीटशूल, नाड़ीशूल।

रसगुग्गुलु—रस-१०, गुग्गुलु १०, खंड ३०, घृत १० रत्ती मिलाकर ३० गोलियां बनावें। रोग-फिरङ्ग रोग में ३ दिन तक ३ ३ फिर ११ दिन तक १-१ गोली दें। अपथ्य लवण।

गुण—रस-कटु, तिक्त कषाय, गुण-लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष वात कफ हर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह उत्तम शोथहर औषधि है। बाहर की तथा अन्दरकी शोथ को हटाती है। पिड़िका; स्फोट आदि की शोथ पर गुग्गुलु का गरम जल में बना लेप या पलस्तर लगाया जाय तो शोथ बैठ जाती है। १ भाग गुग्गुल में आधा खदिरसार, आधा रसांजन और आधा भाग रसकर्पूर मिला प्रलेप बना कर व्रणों पर लगाते हैं। संधियों को शोथ तथा भग्नास्थि शोथ पर बबूल त्वक्, त्रिफला त्रिकटु समान २ में सर्वतुल्य गुग्गुल मिला गरम जल से प्रलेप बना लगा दें और ऊपर से खपचियों सी बांध दें तो शोथ हठ जाती है और अस्थि शीघ्र जुड़ जाती है। आमवात जन्य संधि शोथ अर्शोऽङ्कुर शोथ और नाड़ियों में शोथ के कारण उत्पन्न नाड़ी शूल में जैसे गृध्रसी, कटिशूल आदिमें गुग्गुल के योग दिये जाते हैं। भिन्न २ ग्रन्थियों की शोथों के लिये भी गुग्गुल बड़ा लाभदायक है। त्वचा में चिरस्थाई शोथ के कारण उत्पन्न त्वक् रोगों में भी गुग्गुल के उपरोक्त योग बहुत लाभ दायक हैं। त्वक् रोगों में गुग्गुल का सेवन करते समय उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल भोजन, अतिश्रम, आतप सेवन, अग्नि तथा मैथुन अपथ्य हैं। मूत्रमार्ग में कहीं भी कफ शोथ या चिरस्थायी शोथ हो चन्द्रप्रभा गुग्गुल दिया जाता है।

२ देवदारु तथा सरल नाम-हिन्दी—देवदारुतथा चीड़। इंग्लिश Cedar तथा Pin लैटिन Cedrus deodara तथा Pinuslongifobia

प्राप्ति तथा वर्णन—ये दोनों वृक्ष हिमालय पर २ हजार से ६ हजार फुट की ऊंचाई पर मिलते हैं। देवदारु का वृक्ष बहुत ऊंचा लगभग १६० या २०० फुट ऊंचा होता है। शाखायें लेटी हुई, पत्ते २० से ६० गुच्छों में लगते हैं तने की परिधि भी २४ से ३० फुट। फल अनन्नास की आकृतिका, कठोर चीड़ का वृक्ष १०० फुट ऊंचा, त्वक् फलकों में फटी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection.

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हुई, शाखा में कांड के चारों ओर निकलती हैं जिससे वृक्ष गोल और सुन्दर होते हैं। पत्ते ६ से १२ इंच लम्बे, बारीक फल इसे ५ इंच व्यास ४ से ८ इंच लम्बे। इनका काष्ठ या काष्ठ में से निकलने वाला गाढ़ा द्रव, सरल द्राव, गंधा, विरोजा औषधियों में काम आता है।

विश्लेषण—सरल द्राव में से जो एक प्रकार का (Coliorasin) है तिर्यक पातन द्वारा एक तेल पृथक् किया जाता है जो तारपीन के तेल के समान ही होता है। इसे चीड़ या देवदारु का तेल कहते हैं। नीचे बचे किट्ट को गंधा विरोजा कहते हैं। पातालयंत्र द्वारा भी सरल द्रव में से एक काला सा तेल निकालते हैं जो अशुद्ध तारपीन के तेल के समान ही होता है।

योग-देवदारु तेल या सरल तेल—देवदारु या सरल क्षीर में से ऊर्ध्वपातन द्वारा निकाला जाता है। यह नीरंग, विशेष गंध युक्त होता और तिल तेल में घुल जाता है। ६॥ गुणा मद्यसार में भी घुल जाता है। इसको और अच्छी तरह शुद्ध कर लेने पर शुद्ध तारपीन तेल (Rectifide turpentine) कहते हैं, मात्रा-२ से १० बूंद। इसमें चतुर्थांश कर्पूर अष्टमांश साबुन मिला लेप भी बना सकते हैं।

देवदारु अरिष्ट—सरल या देवदारु-५०, वासा२० मञ्जिष्ठा का, इंद्रयव, दन्तीबीज, तगर, दोनों हरिद्रा, विडंग, रास्ना, मुस्ता, शिरीष, खदिर सार, प्रत्येक १०, यवानी, कुटज त्वक् गुडूची, चित्रक, कटुकी चन्दन प्रत्येक ८, जल २०४८ भाग का $\frac{1}{8}$ कषाय कर धातकी १६, मधु ३००, त्रिकटु मिश्रित २, त्रिजातक मिलित ४, नागकेशर २, प्रियंगु ४ डालकर अरिष्ट बनावें। मात्रा २ से ८ ड्राम। रोग-आमवात, वातरोग, पूयमेह, मूत्र कृच्छ्र, ग्रहणी रोग।

देवदार्वादि कषाय—देवदारु वचा, कुष्ट, पिप्पली, शुंठी, कट्फल, किराततिक्त, मुस्ता, कटुकी, गुडूची, कर्कटशृंगी, धान्यक, दोनों कंटकारी, गोक्षुर, धन्वयास, अतिविषा, हरीतकी कृष्णजीरक, गजपिप्पली रोग सूतिका रोग।

देवदारु गुग्गुलु वटी—सरलक्षीर, गुग्गुलु, शुंठी समान २ मिला ५ यव की गोली बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली। रोग संधिशोथ।

देवदार्वादि प्रलेप—सरल या देवदारु, पुनर्नवा, राजिका, शुंठी, शिग्रुत्वक् समान २ चूर्णकर काञ्जिक से लेप करें। रोग शोथ।

गुण—रस-तिक्त, गुण-लघुस्निग्ध, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-वातकफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—सरल क्षीर तथा देवदारु तेल, वहिः प्रयोग में शोथहर हैं। अन्त प्रयोग में भी सरल और देवदारु शोथहर हैं। संधि फुफ्फुस, मूत्र मार्ग आदि की शोथों को हटाते हैं। अग्नि दीपक हैं। संधि शोथ या शूल, पार्श्वशूल, उदरशूल, पित्तगुल्म, आध्मान में देवदारु तेल से भीगा हुआ कपड़ा ऊपर रख गरम जल में भिगोकर निचोड़े हुये खद्दर के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कपड़े से सेक दिया जाता है। इन रोगों में देवदारु तेल में कर्पूर मिलाकर मला जाता है सरल क्षीर का पलस्तर लगाने से भी गहरी शोथ हटती है। आध्मान तथा गुद कृमियों के लिये आधा ड्राम तारपीन के तेल को १ सेर गरम जल में मिला वस्ति दी जाती है। संधिशोथ, आमवात, शूल युक्त ज्वरों और प्रसूति ज्वर में सरल या देवदारु के समान शुंठी, गुडूची, वचा, हरीतकी के साथ बना हुआ कषाय पिलाया जाता है। पूयमेह में सरल क्षीर में सूक्ष्म एला, शीतलचीनी, चंदन का चूर्ण या तेल, शिलाजतु आदि द्रव्य मिला गोलियां बनाकर दी जाती हैं। शुद्ध सुरदारु तैल की १०, १५ बूंद बताशे में डाल दूध की कच्ची लस्सी के साथ दिन में दो बार देने से मूत्र मार्ग की शोथ हट जाती है।

३ द्राक्षा नाम हिन्दी—दाख या किशमिश। इंग्लिश Grapes लैटिन। Vitisvinifora

प्राप्ति तथा वर्णन—पश्चिमोत्तर प्रदेश में एक बड़ी बेल होती है। पत्र ५ कक्षों में विभक्त ५ नाड़ियों वाले, फूल हरे, सुगंधित, फल अंडाकार, गुच्छों में। एक छोटी, दूसरी बड़ी द्राक्षा होती है। बड़ी छोटी की अपेक्षा मीठी होती है।

विश्लेषण—द्राक्षा में अंगूरी खांड (Grapessugar) और Potassium acidtartaroti होते हैं।

योग द्राक्षारिष्ट—द्राक्षा-५० भाग, जल ५१२ भाग में चौथाई कषाय गुड़ २००, धातकी ८, चतुर्जातक, विडंग, मरिच, पिप्पली, प्रियंगु प्रत्येक १ भाग डाल अरिष्ट, बनावें। मात्रा-४ से ८ ड्राम। रोग-क्षय, निर्बलता, कास, अर्शस्, मलबन्ध, मन्दाग्नि।

द्राक्षादि क्वाथ—द्राक्षा, मधुयष्टी, निम्बत्वक्, कटुकी समान २ कषाय करें। मात्रा आधे से २ औंस। रोग-पित्तज्वर, पित्तगुल्म, अम्लपित्त।

तार्तरिकाम्ल—यह द्राक्षा इमली आदि फलों में होता है विशेषतः द्राक्षा से निकाला जाता है। अंगूरों के रस को खमीरा होने के लिये रखा जाता है। कुछ काल बाद नीचे एक तलछट बैठ जाता है जो (Potassium tartarate) होता है। यह पहिले तो रस में घुला रहता है परन्तु रस के मद्यसार में बदल जाने पर मद्यसार में अविलेय होने के कारण नीचे बैठ जाता है। इसे पृथक् कर उबलते जल में घोल दिया जाता है और इसमें तबतक चाक का चूर्ण मिलाया जाता है जब तक शुर्शुराना बंद न हो जाय। (Tartarioacid) चाक से मिलकर (Calciumtartarate) बन कर नीचे बैठ जाता है। जो कुछ (Potassiumtartarate) के रूप में घुला रहता है। उसे निक्षिप्त करने के लिये (Calciumchloride) मिलाया जाता है जिसमें वह भी (Potassiumchl oride) और (Calciumtartarate में परिवर्तित हो जाता है। इनमें से (Calciumtartarate) निक्षिप्त हो जाता है। इस निक्षेप को अलगकर उसमें हल्का गंधकाम्ल डालें तो (Calcium sulphate) बनकर नीचे बैठजाता है और टार्टरिकाम्ल द्रव में रह जाता है। इस द्रव को

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

छानकर आग पर चढ़ा कर एकान्त में रख दिया जाता है जिससे टार्टरिकाम्लके स्फटिक नीचे बैठ जाते हैं। जो कि श्वेत खट्टे होते हैं। मात्रा-५ से २० यव।

गुण-रस-मधुर अम्ल, गुण-स्निग्ध सर गुरु, पाक-स्वादु मधुर, वीर्य-उष्ण; दोष त्रिदोष हर।

प्रभावतथाउपयोग—द्राक्षा मल स्रंसक और उत्तम बल्यद्रव्य है। बल्य होने से क्षय रोग की निर्बलता हटाने के लिये द्राक्षारिष्ट दिया जाता है। इससे मलबन्ध हटता है। कास, श्वास और स्वर भेद हट जाते हैं और शरीर में स्फूर्ति आती तथा बल आता है। शारीरिक निर्बलता के लिये यह उत्तम औषधि है। दीर्घ ज्वरों में निर्बलता हटानेके लिये इसे देना चाहिये। पित्त ज्वरों में द्राक्षादि क्वाथ तथा वात कफ ज्वरों में इसका शुण्ठी, गुडूची, शटी, पुष्करमूल आदि के साथ बना कषाय दिया जाता है। इसके रेचन के लिये इसका स्वर्णपत्री, अंजीर, बनफशा, सौंफ के साथ बना कषाय मीठा डाल कर पिलाया जाता है टार्टरिकाम्ल रोचक होता और भोजन के पीछे खाये जाने वाले रोचक दीपक चूर्णों में डाला जाता है।

३-विल्वनाम हिन्दी—बिल । लैटिन Aegle-marmelas.

प्राप्तितथावर्णन—हिमालयके निकटवर्ती प्रदेशों में मध्यमाकार वृक्ष, लगभग १ से ३ इंच लम्बे कांटे, फूल श्वेत हरेहरे से छोटे २ सुगन्धित फल ४ से ६ इंच व्यास सन्तरे के आकार का पकने पर पीला, जंगली बिल्व का फल छोटा और बाये हुये का बड़ा होता है। बाल बिल्व फल और मूल त्वक् काम आते हैं।

विश्लेषण—फल में Mcilage tannin pectin एक तिक्त तत्व होते हैं। मूल त्वक् में Lime और Iran के Phasphatas होते हैं।

योगबालविल्वचूर्ण—इसमें समान गुड़ और थोड़ा शुंठी चूर्ण मिलाकर दिया जाता है। मात्रा-१० से ६० यव।

बालविल्वपानक—बालविल्व मज्जा का कषाय कर खांड डालकर बनावें।

बालबिल्वरसक्रिया—२ से ८ यव।

लघुगंगाधरचूर्ण—मुस्ता, इन्द्रयव, बालबिल्व, लोध्र, मोचरस, धातकी, समान २ भाग का चूर्ण करे। मात्रा-१० से ६० यव। रोग-प्रवाहिका, अतिसार, रक्तपित्त।

बिल्वपंचकचूर्ण—बालबिल्व १०, मोचरस १०, आम्रबीज ७, जातिफल २, अहिफेन १ भाग चूर्ण बनावें। मात्रा-१५ से ३० यव। रोग-प्रवाहिका, ग्रहणीरोग।

बिल्वतैल—बालबिल्व १ भाग का थोड़े गोमूत्र में कल्ककर तिल तेल ४, अजाक्षीर १६, जल ६४ भाग में डाल तेल बनावें। रोग-बाधिर्य।

गुण—रस-मधुर कषाय, गुण-फलगुरु, मूललघु, वीर्य-उष्ण, दोष-वातश्लेष्माहर।

प्रभाव तथाउपयोग-बालबिल्व ग्राही है, मूल निर्बलताहर, ज्वरहर है तथा प्रवाहिका और ग्रहणी रोग में उपरोक्त बालबिल्व चूर्ण आदि योग तक्र के अनुपान से देने से रोग को बड़ा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

लाभ होता है। ग्रहणी रोग में बाल बिल्व को उबाल, पानक में डाल बनाया हुआ मुरब्बा और पानक भी दिये जाते हैं। बिल्वमूल त्वक् शरीर तथा हृदय की निर्बलता को हटाती इस लिये दशमूल में डाली जाती है। प्रवाहिका के लिये बिल्व विशेष औषधि है इसके चूर्ण में मोचरस मिला थोड़ी २ देर पर शहद से चटायें।

५--*अग्निमन्थनाम हिन्दी*—बड़ी अग्निमन्थ को अगथु, गनियारी, छोटी को अरणि, टेकारी कहते हैं। लैटिन Premna integrifolia

प्राप्तितथावर्णन – सर्वत्र होने वाला, एक छोटा, सदा हरा वृक्ष, तना और शाखा कंटक युक्त, पत्र २ या ३ इंच चौड़े अंडाकार। छोटी १० फुट ऊंची होती तथा बड़ी ३० फुट होती है इनकी मूल त्वक् औषधियों में काम आती है

विश्लेषण -इसमें एक तिक्त क्षारीय तत्व Tannir होते हैं।

गुण—रस-तिक्तकटु, गुण-लघु, वीर्य-उष्ण, दोष वात कफहर।

प्रभावतथाउपयोग – यह बल्य द्रव्य है। वात कफ जन्य ज्वरों में विशेषतः ऐसे ज्वरों में जिनमें नासा, श्वासमार्ग, फुफ्फुस आदि में शोथ हो दशमूल के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। इसके देने से ये शोथ हटती और हृदयको बल मिलता है। इसके संधि शोथहर होने के कारण संधि शूलों में दशमूल का प्रयोग किया जाता है।

६--*गम्भारी काश्मरीनाम हिन्दी*—खम्भारी, कुम्मेर। लैटिन Gmelina aborea

प्राप्तितथावर्णन—हिमालय के निचले भागों में एक ६० फुट ऊंचा वृक्ष, कांड ऊंचा, फूलपीले फल १ इंच लम्बे, पकने पर पीले से रंग के खाने में मीठे होते हैं। मूलत्वक् काम आती है

विश्लेषण—इसमें एक क्षारीय तत्व होता है।

गुण—रस-तिक्त कषाय, गुण-लघु, वीर्य-उष्ण, दोष-वात कफहर, गांभारीफल-रस-मधुर कषाय, गुण-गुरु, वीर्य-शीत, दोष-पित्तहर।

प्रभावतथा उपयोग—गम्भारी मूलत्वक् का कषाय देने से मल मूत्र अधिक मात्रा में निकलने से ज्वर ढीला हो जाता है अतः अनेक वात कफ प्रधान ज्वरों में दशमूल कषाय दिया जाता है।

७—*श्योनाक नाम-हिन्दी*--सोनापाठा, उल्लू। Latin Oroxylum Indicum.

प्राप्ति तथा वर्णन—हिमालय के गर्म प्रदेशों में होने वाला, बड़ा ऊंचा वृक्ष, पत्र बहुत बड़े, ३ से ५ फुट लम्बे, पत्तियां अनेक २ से ४ इंच लम्बी, फूल पीले रंग के, अन्दर से गुलाबी, बाहिर से लाल, बैंजनी, लम्बे गुच्छों में लगते हैं, फली २ फुट लम्बी, ३ से ४ इंच चौड़ी। मूल त्वक् काम आती है।

विश्लेषण—इसमें एक विशेष तत्व है जिसे Oroxylan कहते हैं।

गुण—रस-कषाय तिक्त, गुण-रूक्ष, वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष-त्रिदोषहर।

प्रभाव तथा उपयोग—मूल त्वक् स्वेद, ग्राही, बल्य, दीपक है। सन्निपात ज्वरों में जिनमें ज्वरों के साथ अतिसार, प्रवाहिका, मन्दाग्नि हो इसका मूल त्वक् कषाय दिया जाता है

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जिससे दस्त बन्द हो जाते हैं और अग्नि प्रदीप्त होती है, इसके स्वेदक होने से पीड़ा युक्त ज्वरों में इसका कषाय लाभदायक है। दशमूल के रूप में अनेक सन्निपात ज्वरों में इसका प्रयोग होता है।

८-पाटला नाम-हिन्दी—पाटल, पाढर । लैटिन Stereospermum Suoueolens

प्राप्ति तथा वर्णन—एक बड़ा ३० से ६० फुट ऊंचा वृक्ष, पत्र ३ से ६ इंच लम्बे, फूल सुगंधित, किरमची, फली १८ से २४ इंच लम्बी, गोल। मूल त्वक् काम आती है।

गुण—रस-तिक्त कषाय, गुण-लघु, वीर्य-उष्ण, दोष-कफ वातहर।

प्रभाव तथा उपयोग—बल्य और मूत्रल होने से दशमूल के रूप में ज्वरों में इसका प्रयोग होता है।

९-शालपर्णी नाम-हिन्दी—सरिवन। लैटिन Hedysarum Gangeticum

प्राप्ति तथा वर्णन—एक छोटी ३ फुट ऊंची झाड़ी सर्वांग पर लोम, एक पत्तेमें ३ पत्तियां, पत्ती आलाकार ३ से ६ इंच लम्बी, फूल श्वेत ६ १० इंच लम्बी, पतली मञ्जरीपर, फलियां २॥ इंच लम्बी, लोमश पञ्चांग काम आता है।

विश्लेषण—इसमें एक क्षारीय तत्व होता है।

गुण—रस-मधुर तिक्त, गुण-लघु, वीर्य-उष्ण, दोष त्रिदोषहर।

प्रभाव तथा उपयोग—बल्य और ज्वरहर होने से दशमूल में डाला जाता है।

१०-पृश्निपर्णी नाम-हिन्दी—कबरा, पिठवन। लैटिन Uraria picta १-लम्बे पत्ते वाली २-गोल पत्ते वाली Uraria Lagopoides.

प्राप्ति तथा वर्णन—Uraria picta एक छोटा क्षुप है। जिसके पत्ते संकीर्ण तथा लम्बे और रंग बिरंगे होते हैं। Uaria Lagopoieds छोटा क्षुप, पत्ते लगभग गोल, पत्ते तीन २ इकट्ठे अगला बड़ा, पिछले छोटे फूलों की मंजरी लोमड़ी की पूंछ जैसी होती है पञ्चांग काम आता है।

गुण—रस-मधुर, गुण-लघु, वीर्य-उष्ण, दोष-त्रिदोषहर।

प्रभाव तथा उपयोग—बल्य और ज्वरहर होनेसे दशमूल में ज्वरों में दी जाती है।

११-बृहती तथा कण्टकारी नाम-हिन्दी—कटेरी या कंटकारी। लैटिन Solanum xonthocarpum.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र होने वाली कटीली झाड़ी के दो भेद हैं। "छोटी कटहरी (Solanum xanthocarpum) यह पृथ्वीपर फैली रहती है और कांटे से भरी रहती है, फूल बैंजनी, केशर पीले रंग के, फल हरे, श्वेत, चित्रित। बड़ी कटहरी (Solanum Indicum) जमीन पर लेटी न होकर खड़ी रहती है, फल भी बड़े होते हैं, इसको संस्कृत में बृहती कहते हैं। मूल तथा पञ्चांग काम आता है।

विश्लेषण—इनके मूल तथा पञ्चांग में एक क्षारीय तत्व Solanume होता है।

योग कण्टकारी अवलेह—कंटकारी १००, जल २५६ का चौथाई कषाय कर, खांड ९० भाग

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

डाल पानक बनाकर गुडूची, चव्य, चित्रक, मुस्ता, कर्कटशृंगी, त्रिकटु, धन्वयास, भारंगी रास्ना शठी समान २ घृत ८, तेल ८, मधु ८, वंशलोचन ४, पिप्पली ४ भाग डाल लेह बनावें। मात्रा-आधा से १ तो० रोग-वातकास शा० भ०

व्याघ्री हरीतकी—कंटकारी १०० हरीतकी १०० पल, जल २५६ भाग चौथाई कषाय करें खांड १०० भाग डाल पानक बनावें। त्रिकटु, चतुर्जातक प्रत्येक १, कंटकारी पुष्प ६ भाग डाल लेह बनावें। हरीतकी फलों को पोटली में बांधकर कषाय में डाल दें फिर उनकी गुठली निकाल कल्क कर कपड़े में छानकर अन्य द्रव्यों के साथ पानक में मिला दें। मात्रा—आधा से १ तोला रोग-कास।

व्याघ्री तैल—कण्टकारी, दन्तीमूल, वचा, शिग्रु, तुलसी, त्रिकटु सैन्धव समान २ मिलाकर १, तैल ४, जल १६, भाग तेल बनावें रोग-पूति प्रतिश्याय। नस्य दें।

गुण—रस-कटु तिक्त, गुण-सरलघु रूक्ष, पाक-कटु, दोष-वात कफहर।

प्रभावतथाउपयोग—ये श्वास नालियों के शोथ तथा उद्धर्त को हटाती है। कासहर श्वासहर और मूत्रल है। दन्तशूल को हटाने के लिये कंटकारी फल के गरम कषाय के गंडूष तथा फल का धूम दिया जाता है। भिन्न प्रकार के कास, श्वास रोग और विशेषतः बालकों के कास के लिये कंटकारी के योग बड़े लाभ दायक हैं। कहा जाता है कि श्वेत पुष्प की कंटकारी मूल का रस या कषाय स्त्री को ऋतु मती होने के पीछे देने से वह गर्भवती होती है।

९—गोक्षुरनाम हिन्दी—गोखरु। लैटिन Tribulūs terrestras

प्राप्तिस्थावर्णन—सर्वत्र रेतीले प्रदेशों में पाया जाता है। पत्ते में पत्तियों की ५-७ जोड़ियां आमने सामने रहतीं, फूल चमकीले, पीले, पृथक २, फल के ५ खंड होते जिनमेंसे प्रत्येक पर १-१ कांटा होता है। बड़ा गोखरू (Pedalium murex) दक्षिण में समुद्र के पास रेतीले प्रदेशों में होता है। पत्र आमने सामने, १ से १॥ इंच चौड़े, अंडाकार, लेसदार, फूल पीले फल आधासे पौन इंच, चतुष्कोण, चारो किनारों पर १-१ कांटा होता है। इसका फल काम आता है।

विश्लेषण—इसके फलों में एक क्षारीय तत्व होता है।

योग गोक्षुरचूर्ण—१० से ६० यव।

गोक्षुरकषाय—२ से ४ औंस।

गोक्षुररसक्रिया—२ से ८ यव।

गोक्षुरआसव—५ गुना मद्यसार ७०% में बनावें आधा से १ ड्राम।

गोक्षुरादिचूर्ण—गोक्षुर ६, शीतलचीनी नागकेशर देवतचीनी, शोरक प्रत्येक ३, भाग मिला चूर्ण बनावें। मात्रा-१० से ३० यव। रोग-मूत्राघात, सर्वांग श्वयथुः।

गोक्षुरादि गुग्गुलु—गोक्षुरका $\frac{१}{१६}$ कषाय, गुग्गुलु, त्रिफला, मुस्ता, त्रिकटु प्रत्येक १ भाग मिला कर ६-८ ग्रेन की गोलियां बनावें। मात्रा-१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

से ४ ग्रेन । रोग-पूयमेह जन्य, आमवात, मूत्रकृच्छ, शुक्रमेह । यो० र०

गोक्षुरादिमोदक—गोक्षुर, कोकिलाक्ष, अश्वगंधा, शतावरी, मुसली कौंचबीज, मधुयष्ठी, बला, नागबला, समान २ मिला ८ गुणा दूध में पका खोयाकर घृत में भून द्विगुण खाण्ड मिला मोदक बनावें । मात्रा-आधा से १ तोला । रोग-शुक्रमेह, क्लीवरोग, मूत्रकृच्छ्र ।

गुण—रस-मधुर, गुण-गुरु, वीर्य-शीत, दोष-त्रिदोष हर ।

प्रभावतथाउपयोग—यह मूत्रल तथा जननेन्द्रिय के लिये बल्यद्रव्य है । सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात और अश्मरी के लिये गोक्षुर कषाय या गोक्षुर का पाषाणभेद, पंचतृणमूल के साथ बना कषाय या गोक्षुरादि चूर्ण देने चाहिये । गोक्षुर कषाय के साथ शिलाजतु, यवक्षार, आदि देने से भी मूत्र अधिक मात्रा में आता है । जननेन्द्रियों की निर्वलता के लिये गोक्षुरादि मोदक बड़ा लाभ दायक है । गोक्षुर चूर्ण को थोड़े दूध में पका गाढ़ा कर चूर्ण के समान भार या कुछ न्यून जावित्री, जातीफल, लवंग, चतुर्जातक, मुषली कौंचबीज, अकरकरभ त्रिकटु, मोचरस, समुद्रशोक, कनकबीज, विजया, आमलकी, केशर, कपूर, लोहभस्म का सम्मिलित चूर्ण डाल सबसे ४ गुणा खांड डाल पाक भी बनाकर देते हैं ।

दशमूल

योगदशमलक्वाथ—उपरोक्त दसों औषधियों को १६ गुणा जल में चौथाई कषाय कर बनालें मात्रा-आधा से २ औंस । रोग-श्वास ज्वर, कासज्वर, पार्श्वशूल, आमवात, सूतकाज्वर, हृदयनैर्बल्य, सर्वांगनैर्बल्य ।

दशमूलहरीतकी (कंसहरीतकी)—दशमूलकषाय २५६ तोला, कषाय में पोटली बांधकर, लटकाकर, पकाई हुई हरीतकीफल, १००, को कपड़ छान करलें कषाय में ४००, तो० गुड़ डाल पानक बनावें । हरीतकीफल [illegible] त्रिकटु, यवक्षार, प्रत्येक १६, तो० त्रिजातक, प्रत्येक १ तो० डालकर अवलेह बनावें । मात्रा आधा से १ तो० । रोग-श्वयथुः, जलोदर, पांडु ।

दशमूलारिष्ट—दशमूल ५०, चित्रमूल २५, पुष्करमूल २५, लोध्र २०, गुडूची २०, आमलकी १६ धमासा १२, खदिर ८, विजयसार ८, हरीतकी ८, कुष्ठ, मंजिष्टा, देवदारु, विडंग, मधुयष्ठी, भारंगी, कपित्थ, बिभीतकी, पुनर्नवा, चव्य, जटामांसी, प्रियंगु, सारिवा कृष्ण जीरक, त्रिवृत, रास्ना, रेणुका, पिप्पली, सुपारी, सठी, हरिद्रा, शतपुष्पा, नागकेशर, मुस्ता, इन्द्रयव, कर्कटश्रृंगी, अष्टवर्ग, पद्मकाष्ट प्रत्येक २ भाग मिला ८ गुना जल में चौथाई कषाय करें । द्राक्षा ६०, भाग चतुर्गुण जल में पौन कषाय करें । दोनों को बर्तन में बन्द कर मधु ३२, गुड़ ४००, धातकी ३०, तथा कंकोल, बालक, चंदन, जातिफल, लवंग चतुर्जातक, पिप्पली, प्रत्येत २, कस्तूरी $\frac{1}{16}$ भाग डाल अरिष्ट बनावें । मात्रा-२ से ८ ड्राम रोग-श्वासरोग । कास, क्षय, निर्वलता, मन्दाग्नि, कफवाताधिक सन्निपातज्वर प्रसूतिज्वर ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दशमूलतैल—दशमूल प्रत्येक ५, जल २५६, भाग $\frac{1}{8}$ कषाय कर, आद्रक रस १६, निर्गुंडी रस १६, तेल ३२, पंचकोल, त्रिकटु, दोनों जीरक, सर्षप या राजिका, सैन्धव, यवक्षार त्रिवृत्त, दोनों हरिद्रा, प्रत्येक चौथाई भाग डाल तेल बनावे। रोग शिरः शूल, सूर्यावर्त, नाड़ीशूल, कर्णशूल, शोथ, बाधिर्य, पलितरोग। इस तेलका नस्य भी दिया जाता है।

प्रभाव तथा उपयोग—त्रिदोषहर विशेषतः वातकफहर, श्वासहर, कासहर, शोथहर, निर्बलताहर, और गर्भाशय शोधक है। गर्भाशय श्वास नालियों, संधियों में शोथके कारण उत्पन्न हुये भिन्न २ सन्निपात ज्वरों में इसका कषाय या आसव दिया जाता है। हृदय और शरीर की निर्बलता को हटाता है। निर्बलता हर च्यवनप्राश, नारायण तेल आदि में इसी कारण इसका प्रयोग होता है।

१३—भल्लातक नाम हिन्दी—भिलावा। लैटिन Semecarpus Anacardium.

प्राप्ति तथा वर्णन—हिमालय के गरम प्रदेशों में एक सुन्दर २० से ४० फुट ऊंचा वृक्ष, पत्र बड़े ६ से ३० इंच लम्बे, ५ से १२ इंच चौड़े अग्रभाग गोल, फूल हरा श्वेत या हरा पीला, फल १ इंच लम्बा, पौन इंच चौड़ा, अंडाकार लाल, चिकना, ऊपर की त्वचा मोटी फल के अन्दर एक दाहक रस होता है जो हवा लगने पर या पकने पर काला हो जाता है। इसका बीज मीठा और एक प्रकार के तेल से युक्त होता है। औषधियों में फल काम आता है। फलों को तोड़ ईंट के चूरे में डाल देते हैं जिससे उसका बहुत सा दाहक रस चूसा जाता है। दो तीन दिन के बाद इनको निकाल कर, धोकर, सुखा लिया जाता है।

विश्लेषण—फलकी बहिः त्वक् में छालाडाल देने वाला एक दाहक तेल ३२% होता है जो ईथर में घुल जाता है।

योग-भल्लातक कषाय—शुष्क फलों को १६ गुणा जल और ताजे फलों को ८ गुणा जल में उबाल आधा जल रख मोटे कपड़े में छान लें मात्रा-आधा से २ औंस।

भल्लतकादिक्वाथ—भल्लातक, गुडूची, शुंठी, हरीतकी, देवदारु, पुनर्नवा, दशमूल समान २ मिला कषाय करें। मात्रा-आधा से २ औंस। रोग-आमवात; उरुस्तम्भ, नाड़ीशूल।

भल्लातकादि मोदक—भल्लातक, तिल, हरीतकी, गुड़ समान २ मिला ८ यव की गोली बनावें। मात्रा-१ से ४ गोली। रोग-अर्शस्, अजीर्ण, आमवात।

भल्लातकादि वटी—भल्लातक, लशुन, तिल, अजमोदा, नारिकेल, गुड़ समान २ मिला ८ यव की गोली बनावें। मात्रा-१ से ४ गोली। रोग-आमवात।

भल्लातकरसायन—भल्लातक, हरीतकी, पारद प्रत्येक १, लोहभस्म आधा आमलकी रस और कुमारी रस से अनेक बार मर्दन कर २-४ यवकी गोलियां बनावें। मात्रा-१ गोली रोग-वृद्धावस्था, पलित, क्लीव रोग, त्वग्रोग, में २१ दिन सेवन करायें।

संजीवनीवटी—विडंग, शुण्ठी, पिप्पली

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्रिफला, वच, गुडूची, वत्सनाभ, भल्लातक समान २ गोमूत्रमें मर्दनकर १ रत्ती की गोली बनाये। तीव्र वात कफाधिक ज्वरोंमें ४ गोली अजीर्ण में १। विषूचिका में २ गोली।

भल्लातक रसकर्पूरादि बटी—भल्लातक १०, रस कर्पूर, हिंगुल, भर्जित तुत्थ, चित्रमूल प्रत्येक १ भाग मिला कर ८-८ यव की गोली बनावें। मात्रा—१ से २ गोली। रोग-फिरंगजन्य व्रण, अर्बुद।

अमृत भल्लातक या भल्लातक घृत—भल्लातक १, ४ भाग जल में चौथाई कषाय कर, दूध १ भागडाल फिर चौथाई कषायकर घृत १ भाग डाल और खांड़ चौथाई भाग डाल घृत बनावें ७ दिन बाद उपयोग करें। मात्रा-१ से ४ चमचे रोग-शरीर निर्बलता यथा दन्तनैर्बल्य, बुद्धिमान्द्य, पलित, त्वग् रोग, कुष्ट।

सर्वांग सुन्दरीगुटी—भल्लातक शुद्ध १ हजार फल, त्रिफला कषाय, १२ सेर, चौथाई कषाय कर शर्करा, गुग्गुल प्रत्येक आध सेर, बाकुची ४ तोला, निम्ब, मञ्जिष्ठा, खदिरसार, बीजक, इन्द्रवारुणी, चित्रमूल, दोनों हरिद्रा, हरीतकी भारंगी, बच प्रत्येक २ तोला डालकर ८-८ यव की गोली बनावें। मात्रा १ से ४ गोली। रोग-चिरस्थायी त्वग् रोग, आमवात।

भल्लातकादि तेल—भल्लातक, अर्कमूल, मरिच, सैंधव, विडंग, दोनों हरिद्रा, चित्रमूल समान २ मिलित १, तैल ४ भृंगराज रस १६ तैल बनावें। रोग-व्रण, नाड़ी व्रण।

भल्लातक तेल लेप—भल्लातक तेल की ३२ गुणा तिल तेल या घृत में मिलाकर बनायें। या फलों को ३२ गुणा तेल में पका, छानकर बनायें। रोग-श्वित्र, छिलके वाले त्वग् रोग।

भल्लातकादिलेप—भल्लातक, बृहती फल, दाड़िम फल, त्वक् समान २ मिला हुआ १, तेल ६ भाग मिलाकर लेप बनावें। रोग-क्लीवरोग में लेप करें।

गुण—रस-कटुतिक्त, कषाय, गुण-तीक्ष्ण, वीर्य उष्ण, पाक-मधुर, दोष-वात कफ हर।

प्रभाव तथा उपयोग—आमाशय के लिये दीपक वात नाड़ियों, श्वास संस्थान, हृदय, त्वचा के लिये उत्तेजक यकृतके लिये पित्तनिस्सारक है। तेलमें दग्ध किये हुये भल्लातक के चूर्ण में लवण मिला मंजन बना दांतों पर मला जाता है जिससे हिलते हुये दांत स्थिर होते हैं। श्वित्र पर भल्लातक तेल लेप लगाने से छोटे २ छाले पड़ जाते जो सूख कर काला दाग छोड़ जाते हैं फिर ये मिलकर त्वचा को सवर्णकर देते हैं पुराने व्रणोंपर भल्लातकादि तैल लगाया जाता है। संधि शोथों में गहरा शोथ हटाने के लिये भल्लातक तेल लेप लगाते हैं। क्लीवरोग के लिये शिश्नेन्द्रिय पर भल्लातकादि लेप लगाने से हलके छाले पड़ जाते और अंदर का रक्त संचय हट जाता है।

आमबात, संधि शूल में भल्लातक का कषाय या गुटिका भी बड़ी लाभदायक है। भारी चोट लगने से शरीर में तीव्र शोथ हो जाय तो एक शुद्ध भल्लातक को तोड़कर घृत में तल उस घृत से बनाया हुआ हलवा गुड़ का खिलाया जाय तो शोथ को बहुत शीघ्र आराम होता है। बात नाड़ियों की निर्बलता से उत्पन्न होने वाले अर्दित, एकांगवात, पक्षाघात

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में इसके कषाय वातगंजांकुश के साथ दिये जावें तो रोगी को शीघ्र आराम होता है। नाड़ीशूलों, शोथों जैसे गृध्रसी, सूर्यावर्त, कटि शूल आदिमें भी इसके योग विशेष लाभदायक हैं। चिरस्थायी त्वग् रोगों, फिरंग जन्य व्रणों अर्बुदों में इसके उपरोक्त योग देने चाहिये। श्वास रोग चिरस्थायी कास, प्रतिश्याय आदि में कुछ काल निरन्तर भल्लातक घृत या किसी अन्य योग का सेवन करना चाहिये। वात कफ जन्य अजीर्ण और मन्दाग्नि के उपद्रवों तथा अर्शस् रोग में इसके योगों का सेवन कराया जाता है। कष्टार्तव में भी इसका कषाय या घृत आदि देने से आर्तव खुलकर आता है। कहा जाता है कि जो शरद ऋतु में इसके घृत का सेवन करता है। वह रोगों से बचा रहता है, वृद्धावस्था देर से आतीहै। बाल देरतक काले रहते हैं और दांत भी देर तक दृढ़ रहते हैं। भल्लातक का प्रयोग उष्ण ऋतुमें नहीं किया जाता। इसका प्रयोग करते समय लवण धूप में भ्रमण और मैथुन अपथ्य हैं। घृत, दुग्ध, खांड़, चावल आदि पथ्य हैं। पित्त प्रकृति रक्त पित्ती, गर्भिणी, मूत्र रोगी को इसका सेवन नहीं करना चाहिये। इसकी अधिक मात्रा खा जाने से मूत्र लाल और मात्रा में थोड़ा हो जाता है। त्वचा पर कोठ स्फोट आदि हो जाते हैं। इनके शमन के लिये नारियल का तैल, तिल, हरीतकी का सेवन कराना चाहिये।

१४ लशुन पलाण्डु नाम *हिन्दी*—लहसन तथा प्याज English Garlic तथा Onion लैटिन Allium Sativum तथा Allium Cepa.

प्राप्ति तथा वर्णन—काश्मीर, पंजाब, गढ़वाल आदि में बोया जाता है। लशुन के मूल में से प्रति वर्ष नया क्षुप निकलता है। पत्ते लम्बे, चपटे कंद के बीज में से फूल का डंठल निकल ऊपर आता है। इसके शिरे पर फूल लगते हैं लशुन के कंद के अंदर की गोलियों को लेकर पृथक् कर रात भर तक में रख, धोकर सुखा लेते हैं।

विश्लेषण—लशुन तथा पलांडु में एक अस्थिर तेल होता है जिसमें गंधक के समासों के कारण दुर्गंध होती है। तेल को ऊर्ध्व पातन द्वारा निकाला जाता है। यह स्वच्छ पारदर्शक, भूरा, पीला दुर्गंधित होता है।

योग—*लशुनक्षीरकषाय*—लशुन एक भाग को १० भाग दूध, १० भाग जल में तब तक उबालें जब तक दूध शेष रह जावे। मात्रा २ से ८ औंस। रोग-योषाअपस्मार, गृध्रसी, आध्मान।

लशुनाष्टक चूर्ण—लशुन, त्रिकटु, हिंगु, कृष्ण जीरक, सैन्धव, गंधक समान मिला चूर्ण बनावें। मात्रा-१५ से ६० यव। रोग आमातिसार, विषूचिका, अजीर्ण ग्रहणी रोग।

लशुनपिंड-लशुन ४०, सौवर्चल, यवानिका, हिंगु, सैंधव त्रिकटु, कृष्णजीरक प्रत्येक १ भाग मिला ८-८ यव की गोली बनावे। मात्रा-१ से ४ गोली। रोग-वातरोग, आमवात, गृध्रसीशूल, कटिशूल, नाड़ीशूल, अर्दित एकांगघात, अपस्मार, अजीर्ण।

गुण—रस-अम्लवर्जित शेष पञ्चरस, गुण-स्निग्ध

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तीक्ष्ण गुरु, वीर्य उष्ण, पाक-कटु, दोष-बात कफ हर।

प्रभाव तथा उपयोग—सर्वांग पर विशेषतः आमाशय, श्वास संस्थान गर्भाशय, वातनाड़ियों, जननेन्द्रियों पर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है। मूत्रमार्ग की शोथ के कारण मूत्ररोध हो तो सीवन प्रदेश पर तथा संधि शोथ पर अलसी और आटे में लशुन मिला पुल्टिस बना बांधने से दर्द को बड़ा आराम आता है। आघात जन्य व्रणों पर हरिद्रा तथा लशुन कल्क को घृत में मिला गरम कर बांधने से शोथ और शूल बन्द हो जाते हैं। कर्णशूल में लशुन और हिंगु का तेल गरम कर थोड़ा २ तेल कान में डालते हैं। नासा रक्तस्राव के लिये लशुन के स्वरस का नस्य दिया जाता है। आमातिसार विशूचिका, ग्रहणी रोग अजीर्ण के लिये लशुनाष्टक बड़ा उपयोगी है। नाड़ीशूलों में जैसे कटिशूल, गृध्रसीशूल में लशुनपिंड देना चाहिये। श्वास ज्वर में मूंग या अरहर के पानी में लशुन या पलाण्डु का स्वरस डालकर दिया जाय तो विशेष लाभ होता है। बातिक अंत्रशूल और आमवात में इनका सेवन लाभकर है विषम ज्वर के दिनों में तथा शीत वसंत और वर्षाऋतु में इसका सेवन करना चाहिये।

१५-कौंच नाम-हिन्दी—कौंच। लैटिन Mucuna Pruriers.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र होने वाली, एक वार्षिक चढ़ने वाली एक बेल सर्वांग पर छोटे २ लोम, पत्तियां मूलपर फैली हुई आगे संकुचित, नोकदार; लोमश, मूल गहरे बैंजनी, फलियां ढाई से ३ इंच लम्बी, आध इंच चौड़ी दोनों शिरों पर मुड़ी हुई, लोमश,बीज ४ से ६ अंडाकार, चौथाई इंच लम्बे। बीज काम आते हैं।

विश्लेषण--बीजों में एक Active principle होता हैं।

योग-- कौंचबीज चूर्ण १० से ६० यव।

वानरी पाक—कौंचबीज, ४, दूध १६, आग में उबाल, छिलके उतार, कल्क कर, इसी दूधके बने खोये में मिला, शक्कर पारों की तरह घृत में भर्जित कर उनसे द्विगुण खांड से बने पानक में डाल खांड चढ़ालें। मात्रा-आधा से १ तो० रोग-एकांगघात, क्लीबरोग।

गुण—रस-मधुरतिक्त, गुण-लघु, वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष-बातहर।

प्रभावतथा उपयोग—कौंचबीज बात नाड़ियों की निर्बलता को हटाता और बाजीकरण है। शुक्रमेह, क्लीबरोग, अर्दित आदि भिन्न २ रोगों की निर्बलता में कौंच बीज चूर्ण तथा इसके पाक दिये जाते हैं।

१६-बला नाम हिन्दी—कघी या खरैंटी लैटिन Sida Cordifolia

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र होने वाला, एकवार्षिक सीधा, ४ से १० फुट ऊंचा क्षुप, प० १॥ से २ इंच लम्बे, १ से १॥ इंच चौड़े, फूल छोटे २, वर्षा ऋतु और शीत ऋतु में निकलते हैं। दूसरा भेद अतिबला, लाल वरियारा (Sida Rombifolia) जिसके पत्तेका निम्न पृष्ठ श्वेत होता है, पत्ता मूल पर संकुचित, फूल प्रायः पीले, पुष्प दण्डिकापत्रनाल से लम्बी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

होती है। तीसरा भेद गंगेरन या गुलशकरी (Sida Spinosa) है जो बड़ी शाखाओं वाला छोटी झाड़ी होती है, तना लामश, पतला पत्ते १ से २ इंच लम्बे, अंडाकृति, दन्तुर, ऊपर कोमल नीचे लोमश, पत्रनाल लोमयुक्त, फूल श्वेत आधाइंच व्यास का।

विश्लेषण —बला मूलमें Asparagin एक विशेष तत्व होता है, पत्तों में Mucilage तथा Tannicacid होते हैं।

योग बलाबीजचूर्ण—१० से ६० यव।

बलारिष्ट—बला १००, अश्वगंधा १००, जल १०२४, भाग चतुर्थांश कषाय कर, गुड़ ३००, धातकी १६, शतावरी ३, एरण्डमूल २, रास्ना १, एला १, प्रसारणी १, लवंग १, उशीर १, गोक्षुर १ भाग डालकर अरिष्ट बनावें। मात्रा-२ से ८ ड्राम। रोग-वात रोग, निर्बलता।

क्षीरबला तैल तथा घृत—बला १ जल ८ भाग चौथाई कषाय कर तैल १, बलाकल्क ४, क्षीर ४, भाग डाल घृत या तैल बनावें। (दुबारा, तिबारा, अनेक बार आवर्तित करने से अधिक गुणकारी होता है।) मात्रा-१से४ चमचे (घृत)। रोग-वातरोग यथा एकांगवात पक्षाघात, अर्दित, गृध्रसी शूल, नाड़ी शूल।

चंदन बला लाक्षादि तैल—चन्दन, बलामूल, लाक्षा, लामज्जक, प्रत्येक १६ जल २५६ भाग। चौथाई कषाय कर तैल-३२ भाग, चन्दन, उसीर, मधुयष्टी, शतपुष्पा, कटुकी, देवदारु, हरिद्रा, कुष्ट, मञ्जिष्ठा, अगुरु, बालक, अश्वगन्धा, बला, दारु हरिद्रा, मूर्वा, मुस्ता, एला, त्वक्, नागकेसर, रास्ना, लाक्षा मूलिका, (क्षीरिणी) सुगन्धिक, चम्पक, पीतसार, सारिवा चोरक समान २ सम्मिलित ८ भाग, क्षीर, ६४ भाग डाल तेल बनावें। रोग-क्षयज्वर, अंगदाह कृशता। यो० र०।

बलादि घृत —बला, नागबला, अर्जुन समान समान १ भाग, जल ४ भाग में चौथाई कषाय कर घृत १ भाग मधुयष्ठी चौथाई भाग डाला कर घृत बनावें। मात्रा १ से ४ चमचे रोग-हृद्रोग रक्त पित्त।

गुण —रस-मधुर, गुण-गुरुस्निग्ध, वीर्य-शीत, पाक मधुर, दोष-त्रिदोषहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह वात नाड़ियों के लिए उत्तम बल्य हैं। वात नाड़ियों की शोथ को ह टाती है। रक्त में पित्त के प्रकोप को शान्त करती है तथा मूत्र मार्ग और महा श्रोतस के क्षोभों को शान्त करती है। फिरंग रोग में बला स्वरस को हाथ पर रख आधा ड्राम पारद डाल तब तक मला जाता है जब तक पारद लुप्त न हो जाय। कुछ दिन बाद इसी प्रकार करने तथा लवण और अम्ल छुड़ा देनेसे रोगी को बड़ा लाभ होता है। अर्दित, पक्षाघात एकांगवात में क्षीर बला तेल निरन्तर दो तीन सप्ताह तक मला जाता है। और क्षीर बला घृत खाने के लिये दिया जाता है। हृदय की निर्बलता, अन्य शारीरिक अंगों की निर्बलता तथा सर्वांग नैर्बल्य में बलाबीज चूर्ण दूध के साथ या बलारिष्ट प्रति दिन पिलाया जाता है। क्षय रोग जन्य शारीरिक निर्बलता कृशता में चन्दन बला लाक्षादि तेल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शरीर पर मला जाता है। इसके सर्वांगदाह या हाथ पैरों की दाह हटती है। पूयमेह रक्तमेह, मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राशय शोथों में बला मूल कषाय या बला बीज चूर्ण को मिश्री के साथ पिलाने से मूत्र की दाह और शोथ शान्त होता है।

१६ शतावरी नाम हिन्दी—शतावर या शकाकुल
लैटिन Asparagus Racemosus

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र होने वाली, सीधी, कंटीली, अनेक शाखाओं वाली छोटी सी झाड़ी, कुछ २ बेल की आकृति की होती है; मूल में अनेक लम्बे, पतले, गोल कन्द; कांटे चौथाई से आधा इंच लम्बे, सीधे होते हैं। मूल औषधियों में काम आती है।

विश्लेषण—Mucilage ४३ से ५२ % होता है।

योग-शतावरीचूर्ण—१० से ६० यव (दूध में)।

शतावरीघृत—शतावरी स्वरस ४, घृत १, दूध ४, शतावरी कल्क चौथाई भाग डाल घृत बनावें। मात्रा-१ से ४ चमचे रोग-पित्त रोग, रक्त पित्त, अम्लपित्त, शुक्रमेह, रक्तमेह, क्लीवरोग अनुपान—शर्करा, मधु, पिप्पली।

शतावर्यादिकषाय—शतावरी, मधुयष्टी, बलाबीज, कुशमूल, गोक्षुर समान २ कषाय बनावें। मात्रा आधे से २ औंस। रोग-पित्तगुल्म, अम्लपित्त, रक्तमेह, पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त। (सैं० र०)

फलघृत—मञ्जिष्ठा, मधुयष्टी, कुष्ठ, त्रिफला, मिश्री बला, दोनों मेदा, दोनों काकोली, अश्वगंधा, अजमोदा, दोनों हरिद्रा, प्रियंगु, कटुकी, उत्पल कुमुद, लाक्षा, दोनों चंदन, प्रत्येक १, घृत १६, शतावरी रस ६४, क्षीर ६४, भाग डाल घृत बनावें। मात्रा १ से ४ चमचे। रोग-गर्भाशय, गर्भस्राव, प्रदर, बन्ध्यारोग, शुक्रमेह। (यो० र०)

नारायणी तेल—बिल्व, अग्निमंथ, श्योनाक, पाटला, पारिभद्र, प्रसारिणी, अश्वगंधा, बृहती, कंटकारी, बला, अतिबला, गोक्षुर, पुनर्नवा प्रत्येक १०, जल १०२४ भाग। चौथाई कषाय कर शतपुष्पा, देवदारु, जटामांसी, शैलेय, वचा, चन्दन, तगर, कुष्ठ, एला, शालपर्णी, रास्ना, अश्वगंधा, सैंधव, पुनर्नवा प्रत्येक २ भाग शतावरीरस ६४ गोक्षीर २५६, तैल ६४ भाग डाल तैल बनावें। रोग-सर्ववातरोग, एकांगवात, पक्षाघात, एकांगनैर्बल्य, सर्वांग नैर्बल्य, जिह्वा, कर्ण, गर्भाशय, मस्तिष्क आदि की निर्बलता, बन्ध्यारोग, शिरशूल।

गुण—रस-मधुरतिक्त, गुण-गुरुस्निग्ध, वीर्य शीत पाक-मधुर, दोष-वात पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—अन्तः तथा बहिः प्रयोगों में यह उत्तम वात शामक और बल्य द्रव्य है। शरीरके भिन्न २ निर्बल अंगों को बल देता है। उत्पादक अंगों की निर्बलता को घटाता है। रक्त में पित्त के प्रकोप को शांत करता है। मूत्रमार्ग में विद्यमान पित्त प्रकोपों के लिये उपयोगी है। पुरुषों तथा स्त्रियों के उत्पादक अंगों की निर्बलता सम्बन्धी नाना रोगों में शतावरी के पाक, मोदक घृत आदि लिये जाते हैं। बन्ध्या स्त्रियों तथा गर्भस्राव, प्रदर, आदि से ग्रस्त स्त्रियों के लिये फल घृत लाभ दायक हैं। नारायण तैल को बताशे में डाल कर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

खिलाने तथा उसकी मालिश करने से शरीरका कोई भी निर्बल हुआ अंग फिर अपना कार्य करने में समर्थ हो जाता है। वात रोगों और वात शूलों के लिये यह बहुत प्रयुक्त होता है। रक्तमेह, पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र में शतावरी गोक्षुर का दूध में किया हुआ कषाय मिश्री डालकर पिलाना चाहिये और शतावरी घृत खिलाना चाहिये। शतावरी शृत दूध पीने से जच्चा का दूध बढ़ता है।

१६ अश्वगंधा नाम-हिन्दी—असगंध। लैटिन Withania Somnifera.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र होने वाली एक छोटी ५ फुट ऊंची झाड़ी, शाखायें नरम गोल, पत्ते २ से ४ इञ्च लम्बे, अंडाकृति, आगे से नोकीले मूल पर संकुचित, फूल शाखाओं के अंत में समूह में लगते हैं पंखड़ियां हरी पीली, फल चने के बराबर, लाल बीजों से युक्त। मूल काम आती है।

विश्लेषण—इसमें एक क्षारीयतत्व होता है जिसे Somniferine कहते हैं।

योग-अश्वगन्धाचूर्ण—१० से ६० यव।

अश्वगंधादि वटी—अश्वगंधा, शतावरी खुरासानी अजवायन, चोबचीनी, पुष्करमूल जातीफल, त्रिकटु, लोहभस्म प्रत्येक १ कारस्कर आधा भाग, ४ रत्ती की गोली दिन में ३ बार। आमवात, वातरोग।

अश्वगन्धा घृत—अश्वगंधा कषाय ४, क्षीर ४, घृत १, अश्वगंधा कल्क चौथाई भाग मिला कर घृत बनावें। मात्रा-१ से ४ चमचे रोग-वातरोग, कृशता, शोष।

अश्वगन्धाद्यारिष्ट अश्वगंधा, मुशली, मञ्जिष्ठा, हरीतकी, दोनों हरिद्रा, मधुयष्टी, रास्ना, विदारी, अर्जुन, मुस्ता, त्रिवृत, अनन्तमूल प्रत्येक १०, श्यामा, दोनों चन्दन, वचा, चित्रमूल, प्रत्येक ८, जल २८४८ भाग, चौथाई कषायकर उसमें धातकी १६, माक्षिक ३००, नागकेशर २, त्रिकटु २, त्रिजातक ४, प्रियंगु ४ भाग डाल अरिष्ट बनावें। मात्रा २ से ८ ड्राम। रोग वातरोग, उन्माद, अपस्मार, शोथ, कृशता, मूर्छारोग, मन्दाग्नि।

अश्वगन्धा बला लाक्षा तैल—अश्वगन्धा, बला, लाक्षा प्रत्येक १६, जल २५६ भाग, चौथाई कषाय कर, तैल २४, दधिमस्तु ९६ भाग, हरिद्रा, अश्वगन्धा, देवदारु, कुष्ट, मुस्ता, चन्दन, लाक्षा, कटुकी, मधुयष्टी, रेणुका, मूर्वा दारुहरिद्रा, मूलिका, उशीर, शारिवा, शतपुष्पा, मञ्जिष्ठा समान २ मिलित ६ भाग डाल तेल बनावें। रोग-क्षयरोग। (यो० र०)

गुण—रस-मधुरतिक्त, गुण-गुरु, वीर्य-उष्ण, पाक कटु, दोष-वात कफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह बल्य और शोषक औषधि है। बाह्य शोथों पर मूल, पत्र आदि का लेप करने से शोथ हट जाती है। आघात जन्य शोथों पर अश्वगन्धा के पत्ते गरम करके या मूल चूर्ण की पुलटिस बांधी जाती है। संधिशोथों पर अश्वगन्धा के तैल मले जाते हैं। कृश तथा निर्बल बालकों, स्त्रियों और वृद्धों को १५ से २० ग्रेन चूर्ण मिश्री और दूध के साथ या अश्वगन्धा घृत प्रतिदिन देना चाहिये। अश्वगन्धा के प्रयोग से साधारण

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शारीरिक कृशता, निर्बलता रहती है। शुक्र सम्बन्धी निर्बलता रहती और पुंसत्व शक्ति बढ़ती है इसकेलिये वृद्ध दारु के साथ इसका चूर्णखाना चाहिये। निर्बल स्त्रियां आर्तव के पहिले तथा पीछे इसके प्रयोग से गर्भ धारण करने के योग्य होती हैं। यदि निर्बलता के कारण निद्रा नष्ट होगई हो तों इसके प्रयोग से आने लगती है। कटिशूल, आमवात, गठिया में इसके घृत आदि देने से लाभ होता है।

१८ *कृष्णमुशळी नाम-हिन्दी*—स्याह मुशली। लैटिन Curculigo Orchioides

प्राप्ति तथा वर्णन—भारत के गर्म प्रदेशों में एक छोटा क्षुप मुख्य मूल गूदेदार, दृढ़ अंगुली के बराबर मोटी और काले रंग की होती है। कांड नहीं होता, पत्ते पत्र नाल रहित, खजूर के पत्तों की तरह नाड़ी युक्त, ६ से १८ इंच लम्बे आधे से १ इंच चौड़े, भालाकार आगे से तीक्ष्ण, फूल चमकीले, पीले, नलिका कार फल आध इंच लम्बे, १ से ४ बीजों से युक्त होता है। मूल झुर्रीदार, लगभग ४ इंच लम्बी चिपचिपी सी बाजार में मिलती है। इसका दूसरा भेद 'सफेदमुसली (Asparagus Adscendens) का क्षुप पश्चिम हिमालय तथा पजाब में होता है। जिसका तना दृढ़ सीधा, छोटा, कांटे चौथाई से आध इंच, पुष्पदंडिकायें १ से ३ इंचलम्बी, पुष्प नाल चौथाईसे आध इंच, फूल श्वेत, छोटे, फल चौथाईसे तिहाई इंच, बीज एक, मूल श्वेत।

विश्लेषण—मुशली में Mucilage की मात्रा बहुत अधिक होती है।

योग मुशली चूर्ण—१० से ३० यव।

मुशल्यादि चूर्ण—मुसली १०, शीतलचीनी ५, बंग, अभ्रक, प्रवाल, तथा बंशलोचन, एला प्रत्येक १ भाग मिला चूर्ण बनावें। मात्रा-२० से ३० यव। रोग-शुक्रमेह, श्वेतप्रदर।

मेहान्तकरस—रस, गंधक, लोह, बंग, रजत, अभ्रक प्रत्येक १, सुवर्ण $\frac{१}{६}$ भाग, मुशली इन सब के तुल्य मिला चूर्ण करें। मात्रा—२० से ३० यव। रोग-शुक्रमेह, क्लीबरोग।

गुण—रस-मधुर, गुण-गुरुपिच्छिल, वीर्य-शीत, पाक मधुर, दोष-वातपित्तहर।

प्रभावतथाउपयोग—मुशलीका उत्पादक अंगोंपर बल्य और शीत प्रभाव होता है। शुक्रमेह, क्लीबरोग, श्वेत प्रदर के लिये प्रायः इसके योग दिये जाते हैं।

१९ *-कोकिलाक्ष नाम हिन्दी*—तालमखाना।

लैटिन—Hygrophila Spinosa

प्राप्तितथावर्णन—जलयुक्त प्रदेशों में एक वार्षिक कीचड़ में पैदा होने वाला क्षुप, २ से ५ फुट ऊंचा, अनेक कांटों वाला, प्रत्येक गांठ पर से पत्ते निकलते हें जो ६ होते हैं, जिनमें दो वाहर के बड़े २ से ५ इंच लम्बे, ४ अंदर के १॥ इंच लम्बे, प्रत्येक पत्ते पर एकसीधा तीखा १ इंच लम्बा, दोनों ओर से नोंकीला कांटा होता है। मूल बैंजनी- प्रत्येक गांठ पर फली आधा इंच लम्बी, बीजों से युक्त बीज चिपचिपे होते हैं। मूल तथा बीज काम आते हैं।

विश्लेषण—इसके बीजों में Mucilage तथा एक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्थिर तेल २३% होता है। मूलमें एक Alkaloidal principle जिसे Cholesterol कहते हैं होता है।

योग-कोकिलाक्षबीज चूर्ण—१० से ३० यव। इक्षुरमूलकषाय—१ से २ औंस।

गुण—रस-मधुर, गुण-पिच्छिल, वीर्य-शीत, पाक-मधुर, दोष-वातहर।

प्रभाव तथाउपयोग—इक्षुरबीज, उत्पादक अंगोंके लिये बल्य, शुक्रवर्धक तथा इक्षुर मूल मूत्रल है। पूयमेह तथा अन्य मूत्रकृच्छ्रों में इक्षुर मूल का कषाय पिलाने से मूत्र अधिक आता और दाह शान्त होती है। शुक्रमेह, शुक्रनैर्बल्य क्लीबरोग आदि में इसके बीजों के गोक्षुर के साथ बने चूर्ण या अन्य पाक दिये जाते हैं। बीजों को नारियल के गोले में बड़ के दूधके साथ भर कर, सुखा कर, चूर्ण कर छानकर छुहारों में भर उन्हें तागों से बांध देते हैं। चार पांच छुहारे दूध में उबाल कर दूध के साथ खाने से कृमि रोग दूर होते हैं।

२०—जटामांसी तथा तगर नाम—हिन्दी बालछड़ लैटिन Valeriana Jatamansi या Nardostachys Jatamansi.

प्राप्ति तथा वर्णन—नैपाल, भूटान, सिक्कम आदि में हिमालय पर १७००० फुट की ऊंचाई पर होता है। बहुवार्षिक क्षुप है जिसका मुख्यमूल बालों से युक्त, तना ४ से २५ इंच लम्बा, लोमश तथा ऊपर की ओर खड़ा हुआ। मौलिक पत्र ६ से ८ इंच लम्बे, १ इंच चौड़े, नीले संकुचित ऊर्ध्वपत्र आमने सामने, १ से ३ इंच लम्बे, फल ६ इंच व्यास वाले होते हैं। इसका एक भेद सुगन्ध मांसी या मुश्कवाले बाल या बिलायती जटामांसी (Valeriana officinalis) होता है जिसका अंग्रेजी दवाइयों में भी प्रयोग होता है। यह उत्तर कश्मीर सिंध में भी मिलती है। यह एक बहुवार्षिक क्षुप है तना १ से ३ फुट ऊंचा, गांठों वाला, लोमश, पत्ते पत्रों में फटे, दन्तुर या पूर्णधार होते हैं।

विश्लेषण—इनमें एक अस्थिर तेल ५ % है जो Oleum Jatamansi कहाता है। यह इसका क्रियाशील तत्व होता है। इनमें Valarianic acid भी होता है।

तगर (Valeriana Wallichii P. N. ५११ A.) हिमालय पर काश्मीर से भूटान तक मिलता है। १००० फुट की ऊंचाई पर बहुवार्षिक क्षुप नीचे लोमश, तना १ से ५ फुट ऊंचा, पत्र १ से ५ इंच लम्बे, पत्रों में फटे, फल लोमश होता है, मूल काम आता है।

विश्लेषण—इसमें भी एक अस्थिर तेल तथा (Valerianic acid) होता है।

योग-जटामांसी तथा तगर फांट—६ गुणा जलमें बनावें। मात्रा १ से २ औंस।

जटामांसी तैल—२ से ६ बूंद। जटामांसी चूर्ण १० से ६० ग्रेन।

जटिलासव तथा तगर मुलासव—जटामांसी २, अमोनियाद्राव १, मद्यसार (९०%) ८ भाग मिला आसव बनावें, मात्रा आधे से २ ड्राम।

जटिलादिचूर्ण—जटामांसी ४, तमालपत्र १, शीतल चीनी १, सौंफ १, शुंठी १, मिश्री २,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भाग मिला चूर्ण बनावें। मात्रा आधे से २ ड्राम। रोग-आध्मान, शूल, योषापस्मार।

गुण—रस-कषाय तिक्त, गुण-लघु स्निग्ध- वीर्य उष्ण, पाक-कटु, दोष-विशेषतः बातहर, साधारणतः त्रिदोषहर।

प्रभावतथा उपयोग—तगर तथा जटामांसी दीपक, पाचक, उद्वर्तहर, सुषुम्ना तथा अन्य वात नाड़ियों के लिये क्षोभहर हैं। ये आर्तव प्रवर्तक भी हैं। अपस्मार योषापस्मार में होने वाले आंत्र उद्वर्त, आनाह, कम्प आदि लक्षणों में जटिलादि चूर्ण या बातहर चतुर्भुज रस के साथ दशमूल, हरीतकी, जटामांसी समान २ का कषाय देते हैं।

२१ लोबान नामहिन्दी—लुबान। अंग्रेजी Benzoin लैटिन Styrax Benzoin.

प्राप्ति तथा वर्णन—यह स्याम और सुमात्रा में पाया जाने वाला वृक्ष है। इस वृक्ष पर काटने से उत्पन्न होने वाली गोंद हमारे देश में आती है जिसे लुबान कहते हैं। यह कठोर, भंगुर, श्वेत से गोल सुगन्धित खंडों के रूप में पाई जाती है। गरम करने पर पिघलती और सुगन्ध देती है

विश्लेषण—इस गोंद में १८% एक अम्ल होता है जो (Benzoic acid) या लुबानाम्ल कहा जाता है। एक उड़ने वाला अस्थिर तेल होता है। गोंद तथा Cinnamic acid होते है।

योग-लुबानचूर्ण—५ से १५ ग्रेन। लुबानासव (१० गुणा मद्यसार ६०% में) आधे से २ ड्राम।

लुबानाम्ल--(Benzoic acid) निकालने के लिये बुझे हुये चूने वाले पानी के साथ लुबान के चूर्ण को मिला उबाला जाता है। जिससे (Calcium Benzoate) बनकर पानी में घुल जाता है। इसे छानने वाले कागज से छानकर उसमें थोड़ा लवणाम्ल डालने से (Benzoic acid) नीचे बैठ जाता है जिससे हलके. श्वेत, सूच्याकार, सूक्ष्म, स्फटिक होते हैं। यह १७ गुना उबलते जल, ३ गुना मद्यसार में घुलता है। पानी में थोड़ी खाने की गोंद मिलाने से अच्छा घुलता है। मात्रा—५ से १५ यव।

लुबानाम्ल के योग—Ammonium benzoate- Benzoic acid को अमोनिया से उदासीन करने से बनता है। इसके श्वेत फलकाकार स्फटिक होते हैं। जो ६ गुणा जल में घुल जाते हैं। मात्रा-५ से १५ ग्रेन।

Sodium Benzoate-Benzoic acid को सर्जक्षार में उदासीन कर बनाते हैं। यह श्वेत स्फटिकीय चूर्ण होता है। जो ६ गुणा जल में घुल जाता है। मात्रा ५ से ३० ग्रेन।

प्रभाव तथा उपयोग—लुबान तथा लुबानाम्ल रोगों में जीवाणु हर है। यदि आंत्र श्वास मार्ग और मूत्रमार्ग में दुर्गन्ध हो तो उसे हटाते है। इसका निष्क्रमण मूत्रमार्ग से होता है। रोगी गृहों को शुद्ध करने के लिये जलते कोयले या उबलते पानी में लुबान चूर्ण या आसव डाल देने से लुबान के धूम या गन्ध से कमरे के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। गलशोथ, कंठशोथ आदि में लुबान को गरम पानी में डाल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उसकी वाष्प मुख में नलिका द्वारा पहुँचाई जाती है। इसी प्रकार कास उरः क्षय आदि रोगों में लुबान चूर्ण व आसवके वाष्प श्वास द्वारा अन्दर लेने से थूक की दुर्गन्ध मिटती और श्लेष्मा अधिक मात्रा में निकलता है। पूयमेह में लुबान या लुबानाम्ल के योग देने मूत्र खुलकर आता और उसकी दुर्गन्ध जाती रहती है, आमवात में भी इसका प्रयोग लाभ दायक है। जननेन्द्रिय के लिये उत्तेजक होने से लुबान बाजीकरण की गोलियों में भी डाली जाती है।

२२ *गन्धपूर नाम-हिन्दी*—गन्धपूर । इंग्लिश Winter Green लैटिन Gaultheric Fragrantissima.

प्राप्ति तथा वर्णन—नीलगिरी पर्वत तथा नैपाल भूटान में एक छोटी, फैलने वाली सदा हरी झाड़ी है। पत्र कुछ अंडाकार मोटे, चिकने चमकीले और दन्तुर, फूल हलके गुलाबी फल किरमची लाल रंग के छोटे २ होते हैं। पत्तों का तेल काम आता है जो भपके से निकाला जाता है। मात्रा ५ से १५ बूंद।

विश्लेषण—इसके पत्तों में एक अस्थिर तेल होता है जो रसायनिक दृष्टि से Methyle-Salicylate होता है, इस तेल में से एक अतिउपयोगी द्रव्य निकलता है जिसका नाम गन्धपूराम्ल (Salicylic acid) है। इसे निकालने के लिये तेल में दाहक सोडा मिला कर भपके में उड़ावें तो Methyle alcohal ऊपर उड़ जाती और नीचे Soda salicylate रह जाता है। इसको पानी में घोलकर थोड़ा लवणाम्ल मिलाने से Salicylic acid अलग होकर नीचे बैठ जाता है जो श्वेत स्वाद में मीठा खट्टा होता है और १५ गुना गरम जल में घुलता है। मात्रा-१५ से २० यव।

गन्धपूराम्ल के योग—Sodium salicylate-Salicylic acid को सर्जक्षार द्वारा उदासीन करने से बनता है। इसके श्वेत, छोटे २, चमकीले पत्राकार स्फटिक होते हैं। यह समान जल में घुल जाता है। मात्रा १० से ३० यव।

Acetyl Salicylic acid या Aspirin—Acetyl chloride को Salicylic acid से मिलाकर बनाते हैं। यह श्वेत, स्फटिकीय चूर्ण है जो पानी में नहीं घुलता। मात्रा ५ से १५ यव।

नोट—Acetyl chloride को Salicylic acid और Phosphorus Trichloride द्वारा बनाते हैं।

प्रभाव तथा उपयोग—गन्धपूर का तेल, गन्धपूराम्ल जीवाणुहर हैं। इनके २% घोल में प्रायः सब जीवाणु मर जाते हैं। इनके या इसके योगों के देने से अति स्वेद आता है। तथा शरीर की ताप परिणाम गिर जाता है। यदि शरीर में किसी प्रकार का वातिक शूल हो तो वह शांत हो जाती है। Aspirin का यह विशेष प्रभाव है। गंधपूर तेल, या अम्ल के २ से ४% जलीय घोल या वैसलीन में बनी हुई मरहम पामा, शीत पित्त, कंडू को शांत कर देती हैं। तीव्र आमवात शूल, कटिशूल, गृध्रसीशूल, शिरःशूल, पार्श्वशूल, नाड़ीशूल में तेल ३० बूंद की मात्रा में या गंधपूराम्ल या उसके योगों के २-२ घंटे बाद देने से एक ही दिन में शूल शांत हो जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कफ तथा कास हर द्रव्य

१ शठी नाम-हिन्दी—कचूर। इंग्लिश Round zedoary लैटिन। Curcuma zedoaria

प्राप्ति तथा वर्णन—यह पूर्वीय हिमालय में होती तथा सर्वत्र बोयी जाती है। मुख्य मूल मोटा कन्दयुक्त, कंद लगभग हरिद्रा के समान, सुगन्धित होते हैं, पत्ते १ से २ फुट लम्बे, भालाकार, आगे तथा मूल पर नोकीले, फूल फीके पीले। मूल काम आता है।

विश्लेषण—इसमें एक अस्थिर तैल १.७६% होता है तथा एक विशेष तत्व (Curcumin) होता है।

योग-शठी गुटिका—मिश्री के साथ मिलाकर बनावें। रोग-गलशोथ, स्वरभंग।

शठ्यादि कषाय—शठी, पुष्करमूल, कंटकारी, कर्कटशृंगी, धन्वयास, गुडूची, शुण्ठी, पाठा, किराततिक्त, कटुकी समान २ मिला कषाय करें। मात्रा आधा से २ औंस। रोग-कफ, वाताधिक सन्निपात ज्वर, पार्श्वशूल, श्वास-रोग कफ रोग।

शठ्यादि क्वाथ—शठी, शुण्ठी, हरीतकी, बचा, देवदारु, अतिविषा, गुडूची समान २ मिला कषाय करें। मात्रा-आधा से २ औंस। रोग-आमवात।

शठ्यादि चूर्ण शठी, त्रिकटु, हरीतकी दोनोंक्षार पिप्पलीमूल, लवण समान २ बीजपूर रस की भावना देकर चूर्ण बनावें। मात्रा-१० से ३० यव। रोग-मन्दाग्नि, वात श्लेष्म, ग्रहणीरोग।

गुण—रस-कटु तिक्त, गुण-लघु, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष वात कफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह दीपक, कफघ्नसक, गलशोथ, कंठशोथहर है। इसे गुड़ या मिश्री के साथ मुख में रख चबाने से गलशोथ हटती है। कास, प्रतिश्याय युक्त श्लेष्मा ज्वरों में शठ्यादि कषाय बड़ा उपयोगी है। वात-कफाजीर्ण तथा ग्रहणी रोग की ओषधियों में शठी का प्रयोग किया जाता है।

२-कुष्ट तथा पुष्करमूल नाम-हिन्दी—कूठ तथा पुहकरमूल इंग्लिश Costus लैटिन Saussurea Lappa तथा Saussurea Auriculata.

प्राप्ति तथा वर्णन-कुष्ट का काश्मीर में एक छोटा दृढ़ क्षुप होता है। तना ६ फुट ऊंचा और अंगुली के समान मोटा होता है। पत्र दंतुर खंडों में विभक्त अग्रिमखंड बड़ा, निचले पत्ते पत्र नाल सहित २-३ फुट लम्बे, ऊपर के पत्ते ६ से १२ इंच लम्बे, इनका पत्र नाल छोटा या नहीं होता, फूल की पंखड़िया बैंगनी रंग की। मूल आश्विन मास में निकाली जाती है। सूखकर भूरी और भंगुर सी हो जाती है। कुष्ट की गंध उत्तम तथा स्वाद कर्पूर सा होता है। इसी का एक भेद पुष्करमूल भी काश्मीर में २ हजार से १६ हजार फुट की

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ऊंचाई पर मिलता है। क्षुप डेढ़ से २ फुट ऊंचा, पत्र २ से ३ इंच लम्बे, दंतुर, मूल भंगुर, तोड़ने पर अंदर श्वेत, फूलकी पंखड़ियां संख्या में ७, बेंगनी रंग की।

विश्लेषण—कुष्ठ में एक अस्थिर तेल होता है जो तीव्र जीवाणु हर है। एक Glucoside, एक क्षारीयतत्व तथा एक Valeric acid का Salt होता है।

योग—कुष्ठ चूर्ण तथा पुष्कर चूर्ण—१० से ६० यव।

कुष्ठ फाण्ट तथा पुष्कर फाण्ट—१० गुणा जल में। १ से २ औंस।

कुष्टासव तथा पुष्कर मूलासव—५ गुणा मद्यसार ६० % में। आधा से १ ड्राम।

चातुर्भद्र चूर्ण—कटफल, पुष्करमूल; कर्कटश्रृंगी पिप्पली समान २ मिला चूर्ण करें। मात्रा १० से ३० यव। रोग-कास, श्वासरोग, श्लेष्मज्वर, हिक्का।

कुष्ठादि चूर्ण—कुष्ठ, दोनों क्षार, तीनों नमक, त्रिकटु, दोनों जीरक, बचा, हिंगु, चव्य, चित्रक, दन्तीमूल समान २ मिला चूर्ण करे। मात्रा-१० से ६० यव। रोग-उदर शूल।

अग्निमुख चूर्ण—हिंगु १, बचा २, पिप्पली ३, शठी ४, अजमोदा ५, हरीतकी ६, चित्रमूल ७, कुष्ठ ८ मिला चूर्ण करें। मात्रा-१० से ६० यव। रोग-बात, कफाजीर्ण, उदर शूल, आध्मान, कास, श्वास।

पुष्करमूलाद्यरिष्ट—पुष्करमूल १००, दुरालभा ५० धान्यक २५, त्रिकटु मिलित २५, कुष्ट, मरिच देवदारु, विडंग, चव्य, पिप्पलीमूल, रास्ना, भारंगी, शुण्ठी, मजिष्ठा, कपित्थ, लोध्र, उशीर प्रत्येक २, जल १०२४। चौथाई कषाय कर धातकी २०, गुड़ ३००, मरिच १, त्रिवृत १, चतुर्जात क प्रत्येक १, पिप्पली ४ डाल अरिष्ट बनावें। मात्रा-२ से ८ ड्राम। रोग-कास श्वासरोग, पार्श्वशूल, कफरोग।

कुष्ठादि तैल—कुष्ठ, हिंगु, वचा, देवदारु, शतपुष्पा, शुंठी, सैन्धव समान २ मिलित १, तेल ४, अजामूत्र, १६ भाग तेल बनावें। रोग—कर्णशूल।

कुष्ठप्रलेप—४ गुणा वैसलीन में थोड़ा सा तुत्थ डालकर बनावें। रोग-व्रण, पामा, कंडु।

गुण—रस-तिक्त, गुण-तीक्ष्णरूक्ष, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-बात कफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह जीवाणुहर, शोथहर, अग्निदीपक, उद्वर्तहर, सर्वांग उत्तेजक, कफ स्रंसक और श्वासरोग हर है। व्रण, पामा, कंडु, दद्रु आदि के लिये काम आनेवाले तेलों में प्रायः कुष्ठ डाला जाता है। स्फोटों व्रणों पर कुष्ठ चूर्ण और आटे की बनी पुल्टिस बांधी जाती है तथा कुष्ठ प्रलेप लगाई जाती है। कुष्ठ का Methylated spirit में बना आसव शोथों के लिये आयोडीन के समान उपयोगी है। श्वासरोग में पुष्करमूल चूर्ण फाण्ट या आसव को यवक्षार के साथ या पुष्करमूल और दशमूल का कषाय दिन में ३। ४ बार दिया जाय तो कफ निकल कर श्वास का वेग हट जाता है। श्वासरोग, कास, प्रतिश्याय, पार्श्वशूल आदि कफ के रोगों में इनके योग बड़े लाभदायक हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उदरशूल तथा आंतों के उद्वर्त हटाने के लिये इनके चूर्ण दिये जाते हैं।

३--*कर्कटशृंगी नाम-हिन्दी*—ककड़ाश्रृंगी । लैटिन Rhus Succedanea.

प्राप्ति तथा वर्णन—पंजाब में पेशावर से शिमला तक की पर्वत श्रेणियों तथा गढ़वाल, कुमायूँ, टिहरी में एक मध्यमाकार वृक्ष होता है। त्वक् श्वेत, भूरी, खुरदरी, छोटी शाखाओं के पत्र सुगन्धित, पत्तियों की ४ से ६ जोडियां जिनके आगे एक पत्ती होती है, पत्तियां लंबी भालाकार, फूल छोटे, पंखडियों से रहित होते हैं वृक्ष पर एक प्रकार की लाख लगती है जो सींग के आकार की होती है। यह २ इञ्च तथा कभी कभी ६-७ इञ्च भी होती है।

विश्लेषण-इसमें Tannic acid ७५% होता है।

योग-बालश्रृंग्यादि चूर्ण-कर्कटश्रृङ्गी, अतिविषा, मुस्ता समान २ मिलाचूर्ण करें। मात्रा १० से ३० ग्रेन। बालकों के लिये १ से १० यव। रोग-बालकों के कास, वमन, अतिसार ज्वर।

शृंग्यादि चूर्ण-श्रृंगी, पुष्करमूल, त्रिकटु, शठी, मुस्ता, शर्करा समान २ मिला चूर्ण बनावें। मात्रा-१० से ६० ग्रेन। रोग-श्वास, कास, प्रतिश्याय। (भै० र०)

गुण—रस-कषाय तिक्त, गुण-गुरु, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-वात कफ हर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह गल, कंठ तथा श्वास नालियों की शोथ को हटाती है। आमाशय आंतों के क्षोभ को शांत करती है अतः वमन हर, अतिसार हर है। बालकों के दांत निकलते समय के वमन, अतिसार, कास, ज्वर आदि में बालश्रृंग्यादि चूर्ण शहद से चटाना चाहिये। साधारण कफ रोगों के लिये श्रृंग्यादि चूर्ण बहुत लाभदायक है।

४-*कटफल नाम हिन्दी*—कायफल। लैटिन Myrica Nagi

प्राप्ति तथा वर्णन—हिमालय पर रावी से पूर्व की ओर तथा खसिया पर्वत की श्रेणियों में एक छोटा, सुगंधित, कोमल, सदाहरा वृक्ष। पत्र शाखा के अंत में जमघट में रहते हैं, भालाकार, ३ से ५ इञ्च लम्बे होते हैं, छोटी शाखाओं के पत्ते ५ से ८ इञ्च लम्बे, दन्तुर, फूल सूक्ष्म। त्वक् काम आती है।

विश्लेषण—इसमें Tannic acid ११ से १४% होता है।

योग-कटफलादि कषाय—कायफल, अतिविषा, मुस्ता, कुटज, शुण्ठी समान-समान मिला कषाय करें। मात्रा-आधे से २ औंस। रोग अतिसार।

कटफलादि नस्य—कायफल १, कर्पूर १२वां भाग मिला चूर्ण बनावें। रोग- प्रतिश्याय।

गुण—रस-कटु तिक्त कषाय, गुण- लघु, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-वात कफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह ग्राही, गलशोथ, कण्ठ शोथ हर द्रव्य है। विशूचिका आदि के सर्वांग शैत्य में ठंडे हुए हाथ पैरों में समान २ शुण्ठी और कटफल के चूर्ण को रगड़ने से गरमी आती है। प्रतिश्याय में नासिका की अन्तः शोथ हटाने के लिये कट्फलादि नस्य देते हैं। दन्त मांस शोथ के लिये कटफलादि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नस्य का मंजन भी कर सकते हैं। कर्ण शोथ में इसी नस्य का चूर्ण कान में भी डाल सकते हैं। गल शोथ, कंठ शोथ, कास में चातुर्भद्र चूर्ण मधुसे चटाया जाता तथा अतिसार विशेषतः बालकों के अतिसार में कटफलादि कषाय दिया जाता है। कट्फल से बनाया तेल लगाने और घृत खाने में आमवात, मांस शूल हर है।

५ *अर्क नाम हिन्दी*—आक या मदार। लैटिन-Calotropis Gigenta.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र होने वाली, मध्याकार झाड़ी, पत्र मोटे ४ से ८ इंच लम्बे, १ से २ इंच चोड़े, नोकदार, क्षीरयुक्त, फूल गन्धरहित, पंखडियां बैंजनी या श्वेत, पुराने वृक्षका मूल त्वक् काम आता है। मूल को उखाड़ २४ घंटे छाया में सुखा त्वक् पृथक् कर लेनी चाहिये। क्षीर भी काम आता है।

विश्लेषण—इसमें एक कड़वा Resin होता है जो इसका क्रियाशील तत्व है।

योग वज्रक्षार—४ लवण, ३ क्षार प्रत्येक समान २ मिला अर्क क्षीर स्नुही क्षीर से ३। ३ दिन मर्दन कर सर्वतुल्य अर्क पत्र ऊपर नीचे रख गजपुट दें, फिर त्रिकटु, त्रिफला, यवानी, जीरक, चित्रमूल समान २ मिलित क्षार के तुल्य मिला चूर्ण बनावें। मात्रा-१० से ६० यव। रोग-प्लीहा वृद्धि, यकृतवृद्धि, मन्दाग्नि, वात कफाजीर्ण, उदरशूल, । भै० र०।

अर्क मूलादि वटी—अर्क मूल त्वक्, कृष्ण जीरक, त्रिकटु, भारंगी, शुंठी पुष्करमूल, कंटकारी मूल समान २ मिला ८ ग्रेन की गोली बनावें। मात्रा १ से ४ गोली। रोग-कफरोग, कास श्वास। यो० र०।

अर्क मनःशिला या अर्क हरिद्रा तेल—अर्क क्षीर १, हरिद्रा या मनःशिला चौथाई तैल ४ भाग मिला तैल बनावें। रोग-पामा, कंडू, व्रण।

गुण—रस-कटु, गुण-लघुतीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-वातकफ हर।

प्रभाव तथा उपयोग—अर्कमूल त्वक् तथा क्षीर त्वच्य, कफ स्रंसक तथा रेचक हैं। दद्रु कंडू, नाड़ी व्रण आदि त्वग्रोगों पर अर्क तैल, मरिचादि तैल या वच तैल बड़े लाभ प्रद होते हैं। प्रतिश्याय जन्य शिरःशूल में प्रतिश्याय को हटाने और शिर को हलका करने के लिये तंडुल चूर्ण को अर्क क्षीर से भावना दे और सुखाकर नस्य दिया जाता है। नासाकृमि या कर्ण कृमि निकालने के लिये अपामार्ग के बीजों को अर्क क्षीर से भावना देकर उसका धूम नासा या कर्ण द्वारा दिया जाता है। क्लीबरोग में १-१ भाग अर्क क्षीर और सोमल को २ भाग घृत में अच्छी तरह मिला शिश्न पर लेप दिया जाता है। कफ के उपद्रवोंमें अर्क मूलादिवटी लाभदायक है। लवण के साथ बनाया अर्क पत्र क्षार या वज्रक्षार प्लीहा, यकृत्, वृद्धि में बहुत अधिक प्रयुक्त होता है। फिरंग जन्य त्वग् रोगों पर इसके १० ग्रेन चूर्ण में १ ग्रेन रस कर्पूर मिलाकर दिनमें प्रतिदिन १ बार देने से शीघ्र लाभ होता है।

६ *स्नुही*—पत्र स्नुही-पत्ता थोहर (Euphorbia

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Nerifolia) सर्वत्र पर्वतीय प्रदेशों में एक छोटा दृढ़, कोमल. वृक्ष होता है, गांठों पर एक जोड़ा कांटो का, तना नलिकाकार, शाखायें गोल, पत्र थोड़े, ६ से १२ इञ्च लंबे पत्रनाल की ओर संकुचित, भालाकार, शाखा के प्रांत भाग पर लगते हैं, फल १ से १॥ इंच चौड़े और ३ खंडों में विभक्त होता है। दूसरा भेद त्रिधार स्नुही-त्रिधार थोहर [Euphorbia Antiquorum] १५ से ३० फुट ऊंचा, तना सीधा ३ फुट, शाखाये अनेक हरी, ३ चौड़े पार्श्वोंवाली, पत्ते छोटे २। से २॥ इञ्च लंबे, पत्र नाल रहित, नाड़ो रहित, शीघ्र गिरने वाले होते हैं। तीसरा भेद त्रिकंटक स्नुही [Euphorbia Tirucally] १० से २० फुट ऊंचा तने का व्यास ६ से १० इञ्च, शाखायें अनेक, पतली, जोड़ों वाली, पत्र पत्रनाल रहित, आध इञ्च लंबे, शाखाओं के प्रांत भाग पर लगते हैं। गांठों पर तीन कांटे इकठ्ठे होते हैं। इनका स्वरस, दुग्ध, फल आदि काम आते हैं।

विश्लेषण-इसके दूध में एक विशेष तत्व Euphorbium ३५% तथा दो Resins होते हैं।

योग स्नुह्यादि तैल—स्नुहीक्षीर, अर्कक्षीर, गुञ्जा, इंद्रवारुणी, भ्रंगराज, लांगली समान २ मिलित चौथाई, सर्षप तेल १, अजामूत्र, गोमूत्र मिलित ४ भाग मिला तेल बनावें। रोग-खालित्य रोग, क्लीबरोग।

वज्रतैल—सप्तपर्ण, अर्कमूल या अर्कक्षीर, करवीर, स्नुहीक्षीर या मूल, चित्रकमूल, शिरीषमूल, सारिवा, त्रिफला, त्रिकटु, दोनों हरिद्रा, सर्षप, विडंग, चक्रमर्द प्रत्येक १. करंजबीज २ भाग तेल सब से ४ गुणा, गोमूत्र १६ गुणा मिला तेल बनावें। रोग-त्वग्रोग, नाड़ीव्रण दुष्टव्रण, अर्शस्, खालित्य।

कासीसादि तैल—स्नुहीक्षीर, अर्कक्षीर प्रत्येक ८, कसीस, लांगली, लवंग, विडंग, कुष्ठ, शुंठी, पिप्पली, करवीर, चित्रमूल, वासा दंतीबीज, मनः शिला, हरताल, स्वर्णक्षीरीमूल, कोशातकी बीज, सैंन्धव प्रत्येक १, तेल ६४ भाग, गोमूत्र तेल से चतुर्गुण तेल बनावें। रोग त्वग् रोग अर्शस् के अंकुर।

गुण—रस-कटुतिक्त, गुण-गुरु तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण पाक-कटु, दोष-वात कफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—बहिः प्रयोगों में स्नुही क्षीर दाहक और त्वग्रोग नाशक है। अन्तः प्रयोगों में क्षीर तथा मूल त्वग् विरेचक और श्वासरोग हर है। कंडू दद्रु आदि त्वग् रोग खालित्य रोग वातिरोगपर इसके उपरोक्त तेल लगाये जाते है। जलोदर, प्लीहावृद्धि आदि ऐसे रोगों में जितमें तीव्र विरेचन की आवश्यकता होती है, स्नुहीक्षीर भावित कम्पिल्ल चूर्ण या त्रिवृत चूर्ण दिया जाता है। इसी प्रकार भीषण त्वग् रोगों, फिरंग जन्य त्वग्रोगों में विरेचन देने के लिये इसके क्षीर से भावित औषधि दी जाती है। उदाहरणतः २ छटांक लवंगों को १ सेर दूध में मास डेढ़मास रख सुखाकर ३६० यव रसकर्पूर मिलाकर १८० गोलियां बना ली जातीं हैं ऐसी १ गोली या २ गोली कुछ दिन तक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रोगी को सोते समय मलाई में मिलाकर खिलाई जाती है जिससे प्रातः दस्त हो जाते हैं। पीनेके लिये रोगी को गरम जल तथा घृत और दूध विशेषतः दिये जाते हैं। श्वासरोग में पत्र स्नुही के स्वरस को समान मधु में मिला १० से २० बूंद की मात्रा में या इसके फलों से बनाये पानक को आधा ड्राम की मात्रा में दिन में ३, ४ बार दिया जाय तो श्लेष्म सुगमता से निकल जाता और वेग शांत हो जाता है।

मादक तथा संज्ञाहर द्रव्य।

१-कारस्कर नाम-हिन्दी—कुचला। इंग्लिश—Nuxvomica. लैटिन-Strychnos Nuxvomica.

प्राप्ति तथा वर्णन—भारत के गरम प्रदेशोंमें एक बड़ा सुन्दर ४० फुट ऊंचा वृक्ष, तना सीधा, पत्ते चौड़े, अंडाकृति, आमने सामने, पूर्णधार, ३" से ६" लम्बे; ३ से ५ नाड़ियों वाले, फूल, हरे से श्वेत, अनेक छोटे २ शाखाओं के अन्त में पतली पुष्पनालों पर गुच्छों में लगते हैं, फूलों में हरिद्रा जैसी गन्ध आती है, फल भूमण्डलाकार, चिकना, नारंगी जितना, नारंगी रंगका होता है। ऊपर के पतले छिलके के अन्दर नरम, श्वेत, कड़वा, लिचलिचा गूदा होता है जिसमें २ से ५ बीज होते हैं। बीज आधा इंच व्यास, चपटा, गोल, एक पृष्ठ नतोदर, दूसरा उन्नतोदर, चमकीले, रेशमी बालों से युक्त, भूरा, विषैला, और कड़वा होता है। बीज काम आते हैं। लोह फलक पर थोड़ा घृत डाल बीजों को हलका सा भर्जित कर या थोड़ी देर दूध में उबाल कर ऊपर के कड़े छिलके और बीज की जिह्वा को निकाल कर चूर्ण करलिया जाता है।

विश्लेषण—इसमें आधा % एक क्षारीय तत्व होता है। जिसे Strychnine कहते हैं। एक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

और क्षारीय तत्व भी चौथाईसे १ % होता है जो Brucine कहाता है।

योग-कारस्कर चूर्ण—१ से ५ यव। कारस्कर रस क्रिया-मद्यसार (७० %) में बनाये। चौथाई से १ यव। या १ से ३ बूंद।

कारस्करासव—शुद्ध जल ३, रसक्रिया आधा, मद्य सार (६० %) १२ भाग, मिलावे। मात्रा-५ से १५ बूंद।

कारस्करतैल—८ गुणा तेल में पकाकर बनावें। रोग-पक्षाघात, अर्दित, एकांगघात,

वातगजांकुशरस—पारद ३, कारस्कर ३, भाग मिला मर्दन कर गंधक १, त्रिफला, त्रिकटु, मिलित प्रत्येक ३ भाग मिला, जम्बीर रस से गोलियां बनावें। मात्रा-२ से ८ यव। रोग-अर्दित, एकाङ्गघात, एकांगनैर्बल्य, मन्दाग्नि आमवात, नाड़ी शूल।

अग्नितुण्डीवटी—पारद, वत्सनाभ, गंधक, तीन लवण, तीनक्षार, त्रिकटु, त्रिफला, अजमोदा, चित्रमूल, जीरक, विडंग प्रत्येक समान २, कारस्कर सब के तुल्य मिला जम्बीर रस से मर्दन कर गोलियां बनावें। रोग-मन्दाग्नि।

कारस्करादिवटी—कारस्कर, जातिफल, लवंग, कर्पूर प्रत्येक १, स्वर्णभस्म $\frac{1}{12}$, कस्तूरी, $\frac{1}{12}$, रससिंदूर ४ भाग, मिला गोलियां बनावें। मात्रा-२ से ८ यव। रोग-सर्वाङ्ग नैर्बल्य, एकाङ्गनैर्बल्य, हृदयनैर्बल्य, क्लीवरोग, मंदाग्नि, । क्लीवरोग के लिये इसमें डेमियाना, भी मिला सकते हैं।

Strychnine Hydrochloride—कारस्कर के क्षारीय तत्व Strychnine को लवणाम्ल के साथ मिला कर बनाया जाता है। यह श्वेत, बहुत तिक्त चूर्ण होता है। ६० गुणा जल में घुल जाता है। मात्रा-$\frac{1}{64}$ से $\frac{1}{16}$ ग्रेन। इसके १ भाग को मद्यसार (६० %) २५ और जल ७४ भाग मिला कर इसका द्राव बना लिया जाता है। जिसकी मात्रा-२ से ८ बूंद है तथा इसके $\frac{3}{4}$ ग्रेन को ११० बूंद शुद्ध जल में मिला उसकी ५ से १० बूंद सूचीवेध द्वारा त्वचा में भी दे सकते हैं।

गुण—रस-कटुतिक्त, गुण-लघुतीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-वातहर।

प्रभाव तथा उपयोग—कारस्करके देने से आमाशय तथा अन्य पाचक अंगोंकी निर्बलता हटती है। अंगों की मांसपेशियों की शक्ति भी बढ़ती है जिससे मल बंध हटता है। श्वास के स्थान को उत्तेजित करता है जिससे श्वास-काठिन्य हटता, श्वास गहरा और बलवान हो जाता है। मस्तिष्क की शक्तियों को बढ़ाता है। वात नाडियों को उत्तेजित करके मांस पेशियों को दृढ़ तथा उत्तेजित करता है। जिससे हृदय बलवान होता, श्वास भी बलवान होता और शरीर में सारे अंग बल अनुभव करते हैं। उत्पादक अंग भी बलवान होते है। दृष्टि, श्रवण आदि की शक्तियां भी बढ़ती है।

निर्बलता के कारण उत्पन्न हुई मंदाग्नि के लिये उत्तम औषधि है। भोजन के पीछे अग्नितुण्डी वटी दें या प्रातः सायं पञ्चतिक्त पानक के साथ इसके आसव की ५ से १० बूंद

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मिलाकर दें। निर्बलता से उत्पन्न मल बंध में कारस्कर चूर्ण और कुमारीक्षार समान २ मिला गोलियां बनाकर दी जाती हैं। आंतों की निर्बलता से उत्पन्न गुदभ्रंश को हटाने के लिये कुछ काल तक इसका प्रयोग करना चाहिये। कारस्कर वात नाडियों की निर्बलता को हटाता है अतः एकांगवात, पक्षाघात, अर्दित तथा वात नाडियों की शोथ से उत्पन्न कटिशूल, ग्रध्रसी शूल, संधिशूल में वात गजांकुश या कारस्करादि बटी निरंतर कुछ काल दी जाती और इसके तैल की मालिश की जाती है। हृदयकी निर्बलता को हटानेके लिये यह उत्तम औषधि है। श्वास ज्वर, कफाधिक सन्निपात ज्वरों में, सर्वांग शैत्य, विषूचिका, सर्पदंश आदि तीव्र रोगों में हृदय निर्बल हो जाता है, उसे उत्तेजित करने के लिये कारस्करादि वटी मधु से चटाते या स्ट्रिकनीन हाइड्रोक्लोराइड को सूची वेध द्वारा रोगी की त्वचा में डाल दिया जाता है। या कारस्करासव की कुछ बूंदें मद्य या आसवों के साथ दी जाती है। क्लीवरोग के लिये कारस्कर का अन्तः प्रयोग तथा अनेक तैलों में बहिः प्रयोग किया जाता है। भिन्न २ अंगों की निर्बलता में जैसे बालकों के सुप्ति मेह में मूत्राशय की निर्बलता तथा निर्बलता जन्य श्वेत प्रदर आदि रोगों में कुछ काल तक उपरोक्त कारस्करादि वटी देनी चाहिये। कहा जाता है कि अलर्क विष में यदि १ मास तक प्रति दिन ५ से १० यव कारस्कर चूर्ण घी दूध के साथ खिलाया जावे तो विष नहीं चढ़ता। सर्प विष में तथा अहिफेन आदि नींद लाने वाली विषों की अधिक मात्रा खायेजाने पर [Strychnine hydrochroride] को $\frac{१}{३०}$ भागसे $\frac{१}{१६}$ भाग यवकी मात्रा में सूचीवेध द्वारा देना चाहिये।

विषलक्षण—कारस्कर या [Strychnine]की अधिक मात्रा खाई जाने पर आधा या १ घंटे बाद लक्षण उत्पन्न होते हैं। पहिले पृष्ठ, बाहु जंघाओं में शूल होती है फिर भिन्न २ मांसपेशियोंमें स्तम्भ हो जाता है और स्तम्भ रोगके समान लक्षण होते हैं पर अति शीघ्रतासे होते हैं। स्तम्भ रोग में प्रारम्भ से ही हनु स्तम्भ हो जाता है पर कारस्कर विष में हनु स्तम्भ प्रारम्भ में न होकर अन्त में होता है। इसके लिये वमन देनी चाहियें। हरीतकी कषाय पिलावें। लक्षणों को शांत करने के लिये Morphine का सूचीवेध दें या Chloral Hydrate ३० से ६० यव की मात्रामें अथवा Brömides दो ड्राम से १ औंस की मात्रा दें। अथवा Chloroform और Amylnitrite सुँघावें।

२ अहिफेन नाम-हिन्दी—अफीम। इंगलिश-Opium; लैटिन—Papauer somniferum

प्राप्ति तथा वर्णन—भारत में सर्वत्र बोयी जाती हैं। बिहार की अफीम को 'पटना अफीम' कहते हैं जो औषधियों में काम आती है। राजपूताना, मध्य भारत की अफीम को 'मालवा अफीम' कहते हैं जो खाने के काम आती है; पोस्त का क्षुप वार्षिक २ से ४ फुट ऊंचा; शाखा रहित होता है, इसके कांड से रस निकलता है, पत्र लम्बे, अंडाकृति, कुछ २

Vaidyaraj Zandu Bhattji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No.........................

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पत्रों में फटे हुये, दन्तुर, फूल बड़े, श्वेत, कभी २ लाल और बेंजनी, फली १ इंच व्यास, १ कोष्ठ की होती है, बीज अनेक श्वेत, सुंदर तेल युक्त होते हैं जिन्हें खशखश कहते हैं। पौदों की फलियों की तरुणावस्था में रात्रि को एक औजारसे सीधे ऊपर से नीचे समानान्तर घाव कर दिये जाते हैं जिनसे रस निकल कर जम जाता है जो सबेरे इकठ्ठा कर लिया जाता है, जबतक रस निकलता रहे तब तक घाव करते रहते हैं। जल भाग उड़ जाने पर यह गाढ़ा हो जाता है। इसे कुछ पानी में घोल, छान गाढ़ा कर लेते हैं जो अफीम है। अफीम पहिले तो नरम और भूरे रंगकी होती है पीछे कठोर गहरी भूरी हो जाती है। इसकी गंध तीव्र, स्वाद तिक्त और स्पर्श में मुलायम होती है। गरम पानी में घुल जाती और धूप से ढ़ीली हो जाती है। जलाने से कोयला नहीं बनता और धूम्र रहित जलती है। बाजार में यह प्रायः अशुद्ध अवस्था में मिलती है। असली अफीम को आर्द्रक रस की २१ भावनायें देकर काम में लाया जाता है।

विश्लेषण—इसमें अनेक क्षारीय तत्व हैं जो लगभग १८ हैं जिनमें से मुख्य Morphine ५ से ७ % Narcotine २ से ८ %, Codeine २ से ७ % हैं।

योग-अहिफेन चूर्ण—आधे से २ यव।

अहिफेनासव—अहिफेन १, गरम शुद्ध जल २॥, मद्यसार [६०%] २॥ भाग, मिलाकर २ दिन बाद छान लें। मात्रा- २ से १० बूंद।

अहिफेनावासव—मधूक मद्य १००, अहिफेन ४, मुस्ता १, जातिफल १, इंद्रयव १, एला१ भाग मिला आसव बनावें। मात्रा-५ से १५ बूंद। रोग-अतिसार विषूचिका।

अहिफेन कर्पूरादिवटी—अहिफेन ३, कर्पूर ३, पारसीकय यवानी ६, रस सिंदूर १ भाग, विजया स्वरस से मर्दन कर गोलियां बनावें। मात्रा-२ से ८ यव। रोग-निद्रानाश, शूल, कास, श्वास, क्लीवरोग।

स्वल्प ग्रहणी कपाट—हिंगुल, गंधक, वंशलोचन अहिफेन, वराटभस्म समान २ मिला गोलियां बनावें। मात्रा २ से ८ यव। रोग-ग्रहणी, अतिसार।

दुग्धवटी—लोहभस्म १, अहिफेन, वत्सनाभ प्रत्येक २, अभ्रकभस्म १० भाग, मिला गोलियां बनावें। मात्रा २ से ८ यव। रोग-चिरस्थाई ग्रहणी रोग, अम्लपित्त, श्वयथु। पथ्य-केवल दूध।

अग्निकुमार रस—पारद, गंधक, वत्सनाभ, अहिफेन, त्रिकटु, टंकण, लोहभस्म, अजमोदा प्रत्येक १ भाग, अभ्रकभस्म सबके समान मिला चित्रमूल कषाय से ७ भावनायें दे, गोलियां बनावें। मात्रा २ से ८ यव। रोग-ग्रहणीरोग अजीर्ण।

अकारकरभादिवटी—अकारकरभ, शुंठी, लवंग, कुंकुम, पिप्पली, जातिफल, जावित्री, चंदन प्रत्येक १ भा०, हिंगुल, गंधक प्रत्येक चौथाई भाग, अहिफेन४ भाग मिला, विजया स्वरस से मर्दन कर गोलियां बनावें। मात्रा-२ से ८ यव। रोग-अतिसार, ग्रहणीरोग, क्लीवरोग, शूल। (भै० र०)

अहिफेन लेप—अहिफेन २, नरम साबुन २, कपूर१, जल २, मद्यसार (६० %) १२ भाग मिलाकर छानकर बनावें। रोग शूल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अहिफेन प्रस्तर—अहिफ़ेन १, गन्दाविरौजा १ भाग गरम कर, मिला कपड़े पर लेप करके बनावें। रोग-शूल।

अहिफेन कर्पूरतैल—अहिफेन १, कपूर २, गरम सर्षपतेल ८ भाग मिलावें। रोग-शूल।

अहिफेन गुदवर्ती—अहिफ़ेन १, नरम साबुन २ भाग मिलाकर गुदवर्ती बनावें। रोग-गुदशूल (अर्शस्)।

Morphine hydrochloride--यह अफीम के क्षारीय तत्व, Mophine का Hydrochloride है जो श्वेतचूर्ण होता है, २५ गुणा जल, ८ गुणा ग्लिसरीन और ५० गुणा मद्यसार में घुलता है। मात्रा—$\frac{१}{८}$ से आधा यव इसके एक भाग को हलका लवणाम्ल २, मद्यसार (६० %) २५, और शुद्ध जल १०० भागतक मिलाकर इसका जलीय द्राव बना लिया जाता है। मात्रा १० से ६० बूंद।

Morphine Acetate—morphine को सिरकाम्ल में उदासीन कर सुखाकर प्राप्त किया जाता है। यह श्वेत सा चूर्ण होता और २॥ गुना जल, ५ गुना ग्लिसरीन और १०० गुना जल में घुलता है। मात्रा $\frac{१}{८}$ से आधा यव। इसके भी १ भाग को हलका सिरकाम्ल २, मद्यसार (६० %) २५, शुद्धजल १०० भाग तक मिला इसका जलीय द्राव बना लिया जाता है, जिसकी मात्रा १० से ६० बूंद है।

Morphine Tarterate-यह Morphine को टार्टरिकाम्ल से उदासीन कर बनाया जाता है। यह श्वेत चूर्ण रूप होता है जो ११ गुना पानी में घुल जाता है। मात्रा $\frac{१}{८}$ से २ यव। इसका भी पूर्ववत् जलीय द्राव बना लिया जाता है जिसकी मात्रा १० से ५० बूंद है। इसको सूचीवेध के द्वारा भी दिया जाता है।

गुण—रस-तिक्त, गुण-तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक कटु, दोष-श्लेष्महर।

प्रभाव—बाहिर लगने से यह शूलहर है। महास्रोतस पर प्रभाव-मुख द्वारा देने से मुख, तालु, जिह्वा, गले, आमाशय और आंतों के स्राव सूख जाते हैं। यह इन अंगों के न केवल स्रावों किंतु गतियों और संज्ञाओं को भी मन्द कर देती है। जिससे क्षुधा नष्ट हो जाती, अग्निमंद पड़ जाती और इनमें किसी तरह की वेदना होने पर शांत हो जाती है। आंतों पर यह प्रभाव अधिक स्पष्ट होता है उनके स्वाभाविक स्राव और चेष्टायें मन्द पड़ जाती, मलबन्ध हो जाता, यकृत से पित्त का स्राव कम हो जाता है। अतः अहिफेन उद्वर्तहर, शोषक, ग्राही और शूल हर है। श्वास पर प्रभाव-अहिफेन के देने से श्वास मन्द हो जाता है। यदि अत्यधिक मात्रा में दियाजावे तो १८ की जगह सिर्फ़ ३, ४ श्वास ही रह जाते है। इसलिये अहिफेन के जहर में श्वास की मन्दता से ही मृत्यु होती है। साधारण मात्रा में अहिफेन श्वास नालियों की माँस पेशियों को शिथिल करती हैं। जिससे उद्वर्त कम हो जावे तथा शुष्क कास को आराम आता है। अहिफेन का मुख्य प्रभाव नाड़ी मंडल पर होता है। थोड़ी मात्रा में देने

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

से मस्तिष्क उत्तेजित होता है जिससे अहिफेन खाने वाले को प्रसन्नता और आराम अनुभव होता है। कई लोग थोड़ी अफीम खा कर ही अपना काम ठीक कर सकते हैं। इस उत्तेजना के पीछे मन्दता, उसके पीछे तन्द्रा और फिर निद्रा की अवस्था आती है। थोड़ी मात्रा खाने पर केवल मन्दता की अवस्था तक प्रभाव होता है। और शेष दोनों अवस्थायें नहीं आतीं। मन्दता की अवस्था में श्रवण, दर्शन, स्पर्शन की इंद्रियाँ कुछ कुण्ठित हो जाती हैं। निद्रा और तन्द्रा की अवस्था में शरीर की सब प्रकार का शूल नष्ट हो जाता है। अफीम की अधिक मात्रा खाने पर प्रथम उत्तेजनाकी अवस्था क्षणिक ही होती है तथा शीघ्र ही निद्रा या मोह निद्रा की अवस्थायें आ जाती हैं जिससे मस्तिष्क की सब क्रियायें मन्द होजाती हैं। पुतली संकुचित होकर कई बार सूई की नोक के बराबर रह जाती है। इसलिये अहिफेन नाड़ी मंडल की उत्तेजक, शूलहर, निद्राजनक, मादक हैं। उत्तेजक प्रभाव बहुत थोड़ी देर रहता पर पीछे मन्दता का प्रभाव ही स्थिर रहता है। अहिफेन का मांस पेशियों पर भी मन्दता काप्रभाव होता है पर अधिक मात्रा में दिये जाने पर भी मांस पेशियोंमें पूर्ण मन्दता नहीं आतीअहिफेन की विषैली मात्रा खाये जानेपर भी रोगी को सहारा देकर उसकी टांगोपर चलासकते हैं।

अहिफेन के देने से मूत्र की मात्रा घटजाती है यह स्रावों के लिये शोषक है पर स्वेद और स्तन्य पर इसका शोषक प्रभाव नहीं होता। मूत्र के साथ यदि खाण्ड आती हो तो वह भी कम हो जाती है। अहिफेनका निष्क्रमण आँतों द्वारा होता है।

उपयोग—शूल-प्रायः सभी आघात जन्य शूलों या अन्तः शोथ जन्य शूलों पर पोस्त के डांडे को १६ गुना जल में उबाल, छानकर, जलमें भीगे हुये कपड़े से सेक दिया जाता है। सन्धिशूल कोष्ठ शूल, कटि शूल, कर्णमूलग्रन्थिशूल, नाड़ी शूल, आदि पर अहिफेन के तैल या लेप लगाकर ऊपर गरम कर पुलटिस बांधी जाती है। केवल अहिफेन के लेप या तेल लगानें से भी शूल को आराम होता है। मन्यास्तम्भ पर इसका लेप करके सेक दिया जाता है। कर्ण शूल में अहिफेन तेल गरम करके या अहिफेनासव कान में डालते हैं। दन्त कृमि के शूल में कपूर और अहिफेन मिला कर दांत की गुहा में रख देते हैं। नेत्राभिष्यन्द शूल में नेत्र के पलकों पर अहिफेन और रसौत का लेप किया जाता है। पोस्तके डांडों के गरम जल में भीगे कपड़े को आंख पर रखते हैं। स्फटिकी आदि से बने नेत्र बिन्दुओं में अहिफेन मिलाकर आंख में टपकाई जाती है।अहिफेनासव को समान सिरके और ३ गुना गुलाब जल में मिलाकर आंख धोते हैं। तीव्र गुद शोथ में अहिफेन का तेल लगाकर ऊपर गरम पुलटिस बांधी जाती है। अहिफेन मायाफल, कत्था, कपूर, शीतलचीनी, भांग समान २ की वेसलीन में बनाई मलहम गुदा में लगाई जाती है।

सब प्रकार की तीव्र वमन को बन्द करनें के लिये अहिफेन उपयोगी है। अतिसार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चिरस्थाई ग्रहणी में अहिफेन का प्रयोग बहुत अधिक होता है। विशूचिका के लिये तो यह अमूल्य औषधि है। आंत्र शूल के लिये एरंड मूल के घोल में अहिफेनासव मिलाकर थोड़ी थोड़ी देर बाद दिया जाता है तथा गरम जल में १५ से २० बूंद अहिफेनासव या ५ ग्रेन अहिफेन डालकर उसकी वस्ति दी जाती है। प्रवाहिका में भी इसी तरह एरण्ड तेल के साथ इसे दिया जाता है और २, ३ औंस चावलों की मांड़ में थोड़ा अहिफेनासव या अहिफेन डाल कर छोटी वस्ति दी जाती है, जिससे बार २ प्रवाहण या गुदा की शूल शांत होती है। बार २ उठने वाले वातिक शुष्क कास में अहिफेन की कपूर के साथ बनी हुई गोलियां दी जाती हैं। पर श्लेष्म कास में जब श्वास नालियों में श्लेष्मा भरा हो और उसका निकालना अभीष्ठ हो तो अहिफेन न देनी चाहिये। पार्श्व शूल में तथा शुष्क कास के हटाने के लिबे अहिफेन बड़ी लाभदायक है। प्रतिश्याय में भी कपूर के साथ बनी अहिफेन की गोलियां देने से आराम होता है। इसमें पोस्त के डोडों के पानी से बना हलवा भी दिया जाता है। खशखाश का शर्बत या खशखाश बनफसा उन्नाव का कषाय दें। श्वास ज्वर तथा कास ज्वर के प्रारम्भ में अहिफेन की कुछ मात्रा दे देने से रोग अधिक नहीं बढ़ता। ज्वरों तथा अन्य शूलयुक्त ज्वरों में बेचैन रोगी को निद्रा लाने के लिये अहिफेन का सूचीवेध उपयोगी है। सोने से १ घंटा पहिले १ ग्रेन अहिफेन की ४ ग्रेन कपूर के साथ गोली बनाकर दें अथवा १० से १५ बूंद की मात्रा में अहिफेन आसव दें। कई बार निद्रा लाने के लिये अहिफेनासव को ब्रांडी के साथ मिलाकर देते हैं। साधारणतः जिनको निद्रा नहीं आती खसखस का सेवन करने से उन्हें नींद आने लगती है। वातिक शूलों को शान्त करने के लिये अहिफेन सर्वोत्तम औषधि है। उदाहरणतः कोष्ट सम्बन्धी नानारोग, पित्ताश्मरी शूल, वृक्कशूल, गृध्रसीशूल, अस्थिभंग तथा सन्धिभंगजन्य शूल, संधिशूल, आंत्रशूल, तीव्र कष्टार्तव शूल, आदि भिन्न २ शूलों के लिये १५ से २० बूंद अहिफेनासव या अहिफेन की गोलियां या Morphine का सूचीवेध दिया जाता है। गर्भ स्राव या पातकी आशंका में अहिफेनासव १५ से ३० बूंदकी मात्रामें दिया जाता है, या दो ग्रेन अहिफेन प्रति दूसरे घंटे में दी जाती है। प्रसूतिका शूल के लिये १५ से २० बूंद आसव कर्पूरार्क के साथ दे देते हैं। रक्त प्रदर तथा श्वेत प्रदर आदि में स्रावों के बन्द करने के लिये अहिफेन को अशोक रस क्रिया के साथ मिलाकर देते हैं। अहिफेन के देने से मधुमेहमें विशेष लाभ होता है। शिलाजतु और जम्बूरस क्रिया में अहिफेन मिलाकर गोलियां बनाकर निरंतर कुछ दिन देनी चाहिये। किसी कारण भी शरीर में तीव्र अपेता या स्तम्भ होने पर अहिफेन या Morphine का सूचीवेध दियाजाता है। स्तम्भरोग तथा Strychnine की विषैली मात्रा खाये जान पर इसका प्रयोग होता है। उन्माद के तीव्र वेगों को शान्त करने के लिये भी इसे दिया जा सकता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अहिफेन तथा Morphine दोनों ही के समान गुण हैं पर इन में कुछ भेद हैं जो निम्न लिखित हैं।

अहिफेन।	मार्फीन।
१—इसका प्रभाव धीरे २ और स्थायी होता है।	१—इसका प्रभाव शीघ्र और स्थायी नहीं होता।
२—इसके देने से मलबन्ध, अजीर्ण, और अरुचि, के लक्षण होते हैं।	२—अजीर्ण, अरुचि, मलबन्ध, आदि नहीं होते या कम होते हैं।
३—शूलशामक और निद्राजनक गुण कुछ निर्बल होते हैं।	३—शूलशामक और निद्रा जनक गुण प्रबल होते हैं।
४—आंतों पर स्थानिक प्रभाव बहुत अधिक होता है।	४—आंतों पर स्थानिक प्रभाव थोड़ा होता है।
५—इसे सूचीवेध द्वारा नहीं दे सकते।	५—इसे सूचीवेध द्वारा दे सकते हैं।
६—मूत्र में खाण्ड की मात्रा को पर्याप्त कम करती है।	६—मूत्र में खाण्ड की मात्रा को वैसा कम नहीं करती।

अहिफेन के प्रयोग में सावधानताएं—(१) बच्चोंपर अहिफेन का विषैला प्रभाव थोड़ी मात्रा में भी हो जाता है, अतः एक वर्ष तक के बच्चे को नहीं देनी चाहिये यदि देनी ही हो तो आधा बूंद अहिफेनासव दे सकते हैं। (२) कइयों को इसकी थोड़ी मात्राभी अनुकूल नहीं होती है। (३) निरन्तर अहिफेन देने से इसकी साधारण मात्रा स्वाभाविक हो जाती है अतः इसकी मात्रा बढ़ानी पड़ती है। (४) तीव्र शूलों में रोगी अहिफेन अधिक मात्रा में भी सहलेता है। (५) अहिफेन के साथ Belladona या धतूर मिला देने से इसका मलबन्धक प्रभाव कुछ कम हो जाता है। (६) हृदय फुफ्फुस और वृक्क के रोगों में अहिफेन बड़ी सावधानी से देनी चाहिये।

विषलक्षण—जिसने अहिफेन को विषैली मात्रा में खा लिया हो वह मोह निद्रा में पड़ा होता है और उसे पुकार कर जगाना कठिन होता है। त्वचाशीत मुख और ओष्ट कुछ श्याम वर्ण, नाड़ी अति निर्बल और मन्द, श्वास मंद तथा विषम, पुतली संकुचित होती और मृत्यु श्वास के रोध से होती है।

चिकित्सा—(१) राई या मदनफलको गरम पानी से मिलाकर वमन देनी चाहिये। या वमन के लिये Apomorphime $\frac{१}{१०}$ से $\frac{१}{५}$ यव सूचीवेध द्वारा दें। (२) देर हो गई हो तो ३-४ ड्राम त्रिवृत देकर विरेचन देना चाहिये। (३) काफी या चाय का तीव्र फाण्ट पिलाना चाहिये। (४) अन्य उत्तेजक औषधि जैसे ब्राण्डी, स्ट्रिक्नीन $\frac{१}{६०}$ ग्रेन का सूचीवेध दें, अमोनियां सुघावें। (५) हृदय के बल देने लिये Atropine sulphate $\frac{१}{२०}$ यव का

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सूचीवेध या कनकासव या बैलाडोना आसव ३० बूंद की मात्रा में पुतली फैलने तक एक २ घंटे पीछे दें।

३–विजया नाम-हिन्दी भांग। इंग्लिश-Indian Hemp. लैटिन-Cannabis Sativa.

प्राप्ति तथा वर्णन–काश्मीर और पश्चिमी हिमालय में तथा सर्वत्र मैदानों में होने वाला एक ऊंचा, सीधा, वार्षिक क्षुप, तना ४ से ८ फुट लम्बा, पत्ते ७ अंगुलियों वाले होते हैं। प्रत्येक पत्र लम्बा, दन्तुर और नोकीला होता है, फूल छोटे पत्तों के अन्त में लगते हैं जिनमें छोटे २ फल लगते हैं। एक २ फल में एक २ बीज होता है। फूल तथा फलों की मञ्जरी, बीज पत्र या इन पर लगा हुआ Resin काम आता है। मादाक्षुप के Resin से युक्त अपक्व पुष्पों को "गांजा" कहते हैं। अपक्व पुष्पों में मादक पदार्थ अधिक रहता है और पक जाने पर कम हो जाता है। गांजे में Cannabis resin २०% होता है। क्षुपके तरुण पत्रों और फलों को 'भांग' कहते हैं। भांग में Resin १० % होता है। पत्तों तथा फलों पर स्वभावतः उत्पन्न हुये Resin को इकट्ठा किया जाता है और इसे 'चरस' कहते हैं। यह Resin प्रायः ६००० से ८००० फुट की ऊंचाई पर होने वाले क्षुपों पर अधिक आता है। इस चरस में Cannabin resin ४० % होता है इसे तम्बाखू के साथ मिलाकर कई लोग पीते भी हैं।

विश्लेषण–भांग में Resin होता है जो इसका क्रिया शील तत्त्व है। और Cannabis Resin कहाता है।

योग-विजयापत्र या बीज चूर्ण–पत्तों को घी में सेक तथा बीजों को दूध में उबालकर बनावें। मात्रा ४ से ८ यव।

विजया रसक्रिया–पत्र, बीज आदि की मद्यसार (९०%) में घोलकर मद्यसार को ऊर्ध्व पातित करके बनावें मात्रा- चौथाई से १ यव।

विजयासव–विजया रसक्रिया ५० ग्रेन, मद्यसार (९०%) १००० बूँद। मात्रा-५ से १५ बूंद।

जातिफलादि चूर्ण–जातिफल, विडंग चित्रमूल तगर, तालीश पत्र, चन्दन, शुण्ठी, लवंग, कृष्णजीरक, कर्पूर, अभया, आमलकी, मरिच, पिप्पली, चतुर्जातक, वंशलोचन प्रत्येक १भाग, विजया बीज सबके समान, खांड़ इस सबके समान मिला चूर्ण बनावे। मात्रा-१५ से ३० यव। खाण्ड का पानक बना इसके मोदक भी बना सकते हैं। रोग-ग्रहणी रोग, अतिसार, कास, प्रतिशयाय, श्वास रोग, मन्दाग्नि, क्लीबरोग।

आनन्द मोदक–अभ्रकभस्म ३, पारद, गंधक, लोह भस्म, कर्पूर, सैन्धव, जटामांसी, आमलकी, एला, त्रिकटु, जातिफल, जावित्री, पत्र, लवंग, दोनों जीरक, मधुयष्टी, वचा, कुष्ट, हिज्जलबीज, हरिद्रा, भारंगी, टंकण, शुण्ठी, नागकेशर, तालीशपत्र, कर्कटश्रंगी, द्राक्षा, चित्रमूल, दन्तीमूल, बला, त्वक्, धान्यक, अतिबला, गजपिप्पली, शटी, मुस्ता, नेत्रबाला प्रसारिणी, विदारी, शतावरी, कौंचबीज, गोक्षुर, वृद्धदारुबीज, अर्कमूल, देवदारु, विजया बीज, प्रत्येक १ भाग शतावरी, रस से ३, ५ भावना दें। शाल्मली मूल इस सबका चौथाई भाग, विजया चूर्ण, इस सबका आधा, खाण्ड

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सम्पूर्ण से द्विगुण, दूध खाण्ड से द्विगुण। दूध में खांड डाल पाक कर उपरोक्त चूर्ण मिला तथा इसमें उचित मात्रा में मधु, घृत, मिला मोदक बनावें। मात्रा-१ से ३ माशे। रोग मन्दाग्नि, ग्रहणीरोग, कास, शुक्रमेह, क्लीवरोग, अपस्मार, उन्माद, वातरोग।

गुण—रस-तिक्त, गुण-लघुरूक्ष, वीर्य-उष्ण, पाक कटु, दोष-वात कफ हर।

प्रभाव—विजया थोड़ी मात्रा में अग्नि दीपक, क्षुधा वर्धक है। अहिफेन के समान अतिसार, प्रवाहिका हर है। किन्तु मलबन्धक नहीं है। इसका विशेष प्राभाव मस्तिष्क पर होता है। थोड़ी मात्रा में हर्ष जनक, मध्यम मात्रा में प्रलापक और अति मात्रा में निद्राजनक है। प्रथमावस्था में खाने वाले को शरीरिक और मानसिक परिश्रम का स्मरण नहीं रहता, वह बहुत प्रसन्न चित्त प्रतीत होता है। उसे समय और व्यक्ति का ठीक २ ज्ञान नहीं रहता, दूसरी अवस्था में अर्थात् जब विजया कीमात्रा कुछ अधिक होतो मादक प्रभाव होताहै। मनुष्य प्रत्येक बात पर खूब हंसता और उच्छृंखल हो कर बोलता है। यदि अधिक मात्रा दी जावे तो मनुष्य निद्रित हो जाता और शरीर शिथिल हो जाता है। मस्तिष्क के अतिरिक्त वात नाड़ियों पर भी इसका प्रभाव होता है। संज्ञा वाहिनियों के निसंज्ञ हो जाने से संज्ञा नाशक प्रभाव त्वचा पर होता है। शरीर की शूल न्यून हो जाती या लुप्त हो जाती है। अतः शूल हर है। यद्यपि अहिफेन और धतूर की अपेक्षा इसमें यह गुण निर्बल होता है। यदि मांस पेशियों में तीव्र उद्वर्त, आक्षेप हों तो वे शांत हो जाते हैं, जिससे आक्षेप रोग हनुस्तम्भरोग तथा अन्य वात रोग शांत होते हैं। थोड़ी मात्रा में देने से यह वाजीकरण है

उपयोग—अर्शस् में होने वाली गुदशूल या शोथ पर अलसी और विजया पत्र की गरम पुलटिस बांधने से आराम होता है विजया और पारसीक यवानिका का धुआं भी देते हैं। नेत्र शोथ पर भी विजया का गरम कल्क बांध सकते हैं। कर्णशूल में इसका गरम स्वरस कान में डालते हैं।

मन्दाग्नि, अतिसार, ग्रहणीरोग, चिरस्थाइ प्रवाहिका में जातिफलादि चूर्ण बहुत अधिक प्रयुक्त होता है। विजया के देने से क्षुधा बढ़ती, अतिसार और शूल शांत होते हैं। चिरस्थाई उदर शूलों में बिजया के प्रयोग तथा रसक्रिया बड़े लाभदायक हैं। अन्य आंत्र रोगों में अहिफेन के समान ही इसका प्रयोग कर सकते हैं। काली खांसी, वातिककास, तथा श्वास रोग में इसकी आधे से २ ग्रेन रस क्रिया धतूर रस क्रिया के साथ गोली बनाकर देने से या जाति फलादि चूर्ण देने से विशेष लाभ होता है। इसके देने से इन रोगों के वेग घट जाते हैं। शिरःशूल, उदरशूल, कष्टार्तव शूल में इसकी रसक्रिया या आसव का प्रयोग किया जाता है। निद्रानाश के लिये अहिफेन के लिये इसकी आधा ग्रेन की मात्रा भी मिला दी जाती है। पांव पर इसके कल्क या इससे बनाये घृत के लिये देने से भी निद्रा आती है। हनुस्तम्भ रोग तथा अन्य रोगों के आक्षेपों को शांत करने के लिये इसकी रस-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्रिया आधे से १ ग्रेन में २-३ बार देते हैं। योषापस्मार में हिंगु के साथ इसकी रसक्रिया की गोली बनाकर दी जाती है, क्लीवरोग शुक्र सम्बन्धी निर्बलताओं में इसके भिन्न २ अवलेह लाभदायक हैं।

विषलक्षण—इसकी अधिक मात्रा खायी जाने पर रोगी का शरीर शिथिल हो जाता है और वह बेहोश हालत में पड़ा रहता है। इसके लिये निम्बू का रस या अन्य वानस्पतिक खटाई खिलावें। कारस्कर, Strychnine आदि उत्तेजक औषधि देवें।

३-धत्तूर तथा बलाडोना नाम-हिन्दी—धतूरा। लैटिन Datura Alba या Datura Nigra तथा Atropa Belladonna.

प्राप्ति तथा वर्णन—गरम प्रदेशों का १ से २ फुट ऊंचा वार्षिक क्षुप। पत्ते ३ से ६ इंच लम्बे, त्रिकोण, अंडाकार, मूल पर गोल दोनों पार्श्व विषम, पूर्णधार या कुछ दन्तुर होते हैं। फूल सफेद या काले, बड़े २, घंटाकार, फल छोटे सेव जितने, कांटे से ढ़के हुये, बीज फल में बहुत भरे होते, चिकने, काले और वृक्काकार होते हैं। इसके पत्ते Belladona तथा Hyoscyamus के पत्तों से बहुत मिलते हैं, भेद इतना है कि Belladona का पत्ता कम झुर्रियों वाला होता तथा Hyosoyamus का पत्ता लोमश होता है। इसके पत्ते मूल तथा बीज काम आते हैं। बीजों को थोड़ी देर दूध में उबाल सुखाकर लिया जाता है। बलाडोना नैनीताल आदि स्थानों पर बोया जाता है। २-३ फुट ऊंचा धत्तूर के समान ही क्षुप है। फूल फीका बैंजनी, घंटाकार तथा फल गोल तीनचौथाई इंच व्यास का काला बैंजनी होता है।

विश्लेषण-इसमें Hyoscyamine, Hyoscine तथा Atropine तीन क्षारीय तत्व होते हैं। बीज में ये अन्यभागों की अपेक्षया अधिक होते हैं। Atropine मद्यसार, क्लोरोफार्म, ईथर में घुलता, जलमें नहीं घुलता है। मात्रा—$\frac{१}{२००}$ से $\frac{१}{१००}$ ग्रेन

योग-कनकपत्र चूर्ण—१ से ३ यव। धूम द्वारा १५ से ३० यव। कनकबीज चूर्ण आधा से १यव।

कनकपत्र रसक्रिया तथा बलाडोना रसक्रिया-मद्यसार (७५%) में बनावें। मात्रा-चौथाई से १ यव।

कनकबीजासव—५ गुणा मद्यसार (६०%) में बनावें। मात्रा-५ से १५ बूंद।

कनकासव—कनकपत्र, वासामूलत्वक् प्रत्येक ४, मधुयष्ठी, पिप्पली, कंटकारीमूल, नागकेशर, शुंठी, भारंगी, तालीशपत्र, प्रत्येक २, धातकी १६, द्राक्षा २०, जल ५१२, खांड १०० मधु ५० भाग मिला आसव बनावें। मात्रा-१ से ४ ड्राम। रोग-श्वासरोग, कास, उरःक्षय।

महाज्वरांकुशरस—पारद, गंधक, वत्सनाभ, प्रत्येक १, कनकबीज ३, त्रिकटु, सम्पूर्ण से द्विगुण मिला जम्बीर, आर्द्रक रससे मर्दन कर गोलियां बनावे। मात्रा-४यव। रोग-विषम ज्वर, वातश्लेष्माधिक ज्वर। (यो० र०)

आनन्दभैरववटी—हिंगुल, वत्सनाभ, त्रिकटु

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

टंकण, ताम्रभस्म, धत्तूरबीज, गन्धक प्रत्येक१, भाग विजयास्वरस, से मर्दन कर गोलियां बनावें। मात्रा-२ यव। रोग-वातश्लेष्माधिक ज्वर, श्वासरोग।

ज्वरादिअस्त्र अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, पारद, गंधक, वत्सनाभ, धत्तूरबीज, प्रत्येक २, त्रिकटु, ५भागमिला जलसे गोलियां बनावें। मात्रा२से ४ यव। रोग सन्निपातज्वर, विषमज्वर,श्वास।

श्वासकुठार—हिंगुल, मनःशिला, टंकण, वत्सनाभ, धत्तूर बीज, त्रिकटु समान २ मिला आर्द्रक रस से मर्दनकर गोलियां बनावें। मात्रा-४ यव। रोग-श्वासरोग, श्वासज्वर, श्लेष्म, ज्वर।

विषगर्भ तैल—धत्तूर स्वरस २०, तैल २०, कांजिक ६४, मरिच, धत्तूर बीज, वत्सनाभ प्रत्येक आधा, कुष्ट, वचा प्रत्येक २, वृद्धदारु चौथाई, लवण डेढ़ भाग मिला तैल बनावें। रोग-वातशूल।

धत्तूर तैल—धत्तूर स्वरस १६, तैल ४, धत्तूरकल्क १ भाग मिला तैल बनावें। रोग-सर्व वातशूल, शोथ, यूकालिक्षा।

कनक प्रस्तर तथा बलाडोना प्रस्तर—कनक रसक्रिया या बलाडोना रसक्रिया १, गन्दा विरोजा २ भाग, मिलाकर कपड़े पर लेप कर बनावें। रोग-शोथ शूल।

कनक लेप या बलाडोना लेप—कनक रसक्रिया या बलाडोना रसक्रिया ५, कपूर १, जल २ भाग। मद्यसार (६०%) २० भाग तक मिला लेप बनायें। अथवा कनक रसक्रिया के थोड़े उबलते पानी में घोल समान ग्लिसरीन में मिलाकर लेप बनावें। रोग-शूल, शोथ।

कनक धूम वर्ति—कनक पत्र, वासापत्र, सुराह्वार समान२ में थोड़ा त्रिकटु तथामनः शिला डाल धूम वर्तियां बनालें। रोग-श्वासरोग।

ATROPINE SULPHATE—हल्के गंधकाम्ल में Atropine को डालकर बनाया जाता है जो श्वेत स्फटिकाकार चूर्ण होता है। मात्रा-$\frac{१}{२००}$ से $\frac{१}{१००}$ यव। इसके १ यव को ११० बूंद जलमें घोलकर 'एट्रोपीन द्राव'बनाया जाता है। मात्रा-आधा से १ बूंद। ५ यव को१ औंस शुद्ध जलमें मिला "एट्रोपीन नेत्र-बिन्दु" बनाया जाता है।

गुण—रस-तिक्त, गुण-तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-श्लेष्माहर।

प्रभाव—यदि त्वचा पर धत्तूर या बलाडोना के लेप लगाये जावें तो स्थानिक शूल और शोथ कम हो जाती है। इसके लगाने से स्थानिक स्राव भी सूख जाते हैं। स्तन परलगाने सेदूध का निकलना बन्दहो जाताहै। जिस स्थान पर अधिक स्वेद आता होतो इसकालेप लगाने से स्वेद बन्द हो जाता है। शूल तथा स्रावों को कम करने का कारण यह है कि ये संज्ञावाहिनियों तथा स्रावों की उत्तेजक वातनाड़ियों के सिरों को निश्चेष्ठ कर देते हैं। ये यूकालिक्षा तथा दद्रु आदि के कृमियों को नष्ट करते हैं।

मुख द्वारा इनके देनेसे शरीरकी सब संज्ञा वाहिनियों के सिरे कुछ निस्संज्ञ हो जाते हैं। अतः यदि शरीर के किसी भाग पर शूल हो तो वह मंद हो जाती है अर्थात् यदि आंत्र मूत्र मार्ग आदि में किसी प्रकार की शूल होतो वह मंद हो जाती है। मुख द्वारा देनेसे ये स्रावोंको

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भी सुखाते हैं। मुख और गला सूख जाते हैं। त्वचा पर का स्वेद भी सूख जाता, स्तनों से दूध की मात्रा घट जाती, श्वास नालियों की श्लेष्मा सूख जाती तथा शुक्रका स्राव भी बन्द होजाता है, श्वास नालियोंमें उद्वर्त हो अर्थात् दमा हो तो वह शान्त हो जाता है। इनके देने से हृदय तथा नाड़ी की प्रति मिनट गति बढ़ती है, तथा इनकी ताकत भी कुछ बढ़जाती है। अतः हृद्य हैं। इनके नेत्र में डालने से नेत्र का शूल शान्त होती है और पुतली फैलजाती है। धत्तूर का विषम ज्वर पर विशेष प्रभाव होता है।

उपयोग—प्रायः सब प्रकार का शोथ और शूल पर जैसे पिडिका, विद्रधि, कर्णमूलग्रन्थिशोथ, आघातजन्यशोथ, स्तन्यग्रन्थि शोथ, अंडशोथ, इत्यादि पर इनके लेप, प्रस्तर लगाये जाते या धत्तूर के पत्तों की बनी पुल्टिस बांधी जाती हैं। वातिक शूलों पर विष गर्भ तैल की मालिश की जाती है। कर्णशूल में धत्तूर तैल कान में डाला जाता है। यूकालिक्षा को मारने के लिये यह तेल सिर पर भी लगाया जाता है। हाथ पांव आदि के अति स्वेद को हटाने के लिये लेप या तेल लगाये जाते हैं। नेत्र की तीव्र शूलों में जैसे आंख दुखने या आंख में व्रण होजाने पर होता है धत्तूर स्वरस की एक २ बूंद या एट्रोपीन नेत्र बिन्दु डाला जाता है।

आन्त्रशूल तथा मूत्रमार्ग के भिन्न २ शूल जैसे वृक्काश्मरी शूल, मूत्राशय शूल में इनके आसवों को बड़ी मात्रा में दिया जाता है। ऐसे ज्वरों में जिनमें प्रतिश्याय, श्वास, कास गलशोथ, आदि लक्षण हो तो धत्तूर के उपरोक्त योग दिये जाते हैं। श्वास ज्वर की प्रथमावस्था के लिये श्वासकुठार या इसके अन्ययोग बड़े उपयोगी हैं। विषमज्वर के लिये भी धत्तूर प्रयोग भी लाभ दायक है। श्वासरोग, सूखी खांसी, तथा बच्चोंकी काली खांसी के लिये तो ये औषधियां विशेषतः लाभ दायक है। इनके मुख द्वारा देने के अतिरिक्त तीव्रवेग को शान्त करने के लिये इनकी धूमवर्ति पिलायी जाती या धत्तूर पत्र और शोरक के मिलित आधा तोल चूर्ण को कोयलों पररख उसका धुंवा दिया जाता है। श्वासरोग के तीव्रवेग को शांत करने के लिये एट्रोपीन का सूचीवेध बड़ा लाभ दायक है। हाथ पैर के अति स्वेद को तथा क्षय रोग के रात्रि स्वेद को हटाने के लिये इनका आसव देना चाहिये। युवकोंके शुक्रमेह तथा बालकों के रात्रि मेह के लिये धत्तूर के लक्ष्मीविलास आदि योग वा इनके आसव सोने से पहिले दिये जाते हैं। हृत्कम्प तथा हृत्शूल में इनके प्रस्तर हृत्प्रदेश पर लगाने से रोगीको आराम आता है। इनके योगोंके मुखद्वारा देने तथा एट्रोपीनके सूचीवेध देनेसे भी हृदयकी शक्ति बढ़जाती है स्तम्भरोग के घावपर धत्तूर पत्रों कीपुल्टिस बांधी जाती तथा उसके आसव की २० से ३० बूंद दिन में ३-४ बार दी जाती है। इससे स्तम्भ के वेग हलके पड़ जाते हैं। वेग कम हो जाने पर औषधि की मात्रा कम कर दी जाती है। इसके साथ रोगी के पृष्ट वंश पर धतूर के स्वरस या लेप की दिन में ३-४ बार मालिश भी करनी चाहिये।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अलर्क विष—कसौली की संस्था के बनने से पूर्व कुत्ते के विष की चिकित्सा धतूर सेकी जाती थी। कुत्ते के काटने के दो सप्ताह बाद तथा चौथे या पांचवें सप्ताह से पहिले यह चिकित्सा की जाती थी। प्रातः २ से ४ ड्राम कोयलेका चूर्ण खिला आध घंटा पीछे १ औंस धत्तूर स्वरस पिलाया जाता था। वमन रोकने के लिये गुड़ आदि खिला देते थे। रोगी को ४-५ घंटे धूप में रखने से उसमें पागलपन के लक्षण प्रगट हो जाते थे। जिससे पता लगता था कि रोगी को पागल कुत्ते ने काटा है तथा वह अवश्य ठीक हो जायगा। इन लक्षणों के प्रकट होने के बाद उसे ठंडे जल से स्नान कराते थे, इस स्नान से रोगी डरता और शोर करता था। अतः उसे पहिले ही से बांध दिया जाता था। स्नान के बाद वह ठीक होने लगता और फिर उसे हलका भोजन दिया जाता था। यदि कुत्ते को ज़हर का प्रभाव पहिले ही आराम हो जाता तो रोगी के मस्तक पर चाकू से थोड़ा छेदन करके धतूर रस डाल देते और मुख द्वारा भी कनकासव या धतूर रस की १-२ ड्राम की मात्रा पिला देते थे।

विष लक्षण—इनके अधिक खाये जाने पर मुख सूख जाता। निगलने में कठिनता होती, त्वचा सूख जाती और मूत्र का स्राव भी बन्द हो जाता है। पुतली फैलजाती है। अधिक मात्रा खाये जाने पर रोगी प्रलाप करता, लड़खड़ा कर चलना, उसकी नाड़ी तथा हृदय तीव्रता से चलते हैं। इसके लिये प्रथम वमन करादें वमन के बाद चाय या काफी का तीव्र घोल पिलादें, यदि विष का वेग अधिक हो तो (Morphine) का सूचीवेध दें, मूत्र बन्द होने पर शलाका से मूत्र निकालें।

४-कोका-नाम हिन्दी—कोका। इंग्लिश Coca plant लैटिन। Erythroxylon Coca.

प्राप्ति तथा वर्णन—दक्षिण अमेरिका से लाकर भारत में चाय के साथ बोया जाने लगा है। इसकी ६ से ८ फुट ऊंची झाड़ी होती है। पत्ते लम्बे, अंडाकृति, इनमें चाय के समान गंध आती है। फूल छोटी डंडियों पर, छोटे २ पीले श्वेत रंग के लगते हैं फल छोटे २, लाल होते हैं। इसके पत्ते तथा उनमें पाया जाने वाला क्षारीय तत्व काम आता है।

विश्लेषण—इनके पत्तोंमें १ % Cocaine नामक क्षारीय तत्व होता है जो श्वेतसा चूर्ण होता है और जीभ पर लगाने से जीभ का वह भाग निःसंज्ञ हो जाता है। यह जल में नहीं घुलता मात्रा-$\frac{१}{२०}$ से आधा ग्रेन।

योग—Cacaine Hydrochloride-कोकेन को लवणाम्लमें डालकर यह द्रव्य बनायाजाता है। यह श्वेत सा स्फटकीय चूर्ण होता है। अपनें से आधे जल में घुल जाता है। मात्रा—$\frac{१}{१०}$ से चौथाई यव। ११० बूंद शुद्ध जल में इसके ५ यव डाल कोकेन द्राव बनाया जाता है, जिसकी ५ से १० बूंद सूचीवेध द्वारा किसी दर्द को हटाने के लिये दी जाती है। १ औंस शुद्ध जल में इसके २० यव डालकर "कोकेन नेत्रबिन्दु" बनाया जाता है जिसको आंख में डालकर आंख पर शल्य कर्म कर सकते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रभाव तथा उपयोग—त्वचा पर कोकेन द्राव का प्रभाव नहीं होता परन्तु यदि इसे सूचीवेध द्वारा त्वचाके नीचे डाल दें तो वह स्थान निःसंज्ञ हो जाता है। इसी प्रकार यदि किसी झिल्ली पर कोकेन द्राव लगा दिया जावे तो वह स्थान निःसंज्ञ हो जाता है तथा वह जगह काटने से भी कोई पीड़ा नहीं होती। यदि ४ % कोकेन द्राव आंख में डाल दिया जाय तो नेत्र का श्वेत पटल निसंज्ञ हो जाता और आधे घंटे तक यह असर रहता है। भांग के समान कोकेन के खाने से मनुष्य शारीरिक और मानसिक श्रम को भूलकर अपने को प्रसन्न अनुभव करता है तथा इसके खाने से उत्पादक अंगों की उत्तेजना शान्त होती है।

नेत्र के भिन्न २ शल्य कर्मोंमें शल्य कर्म से पूर्व नेत्र में ४ से १० % कोकेनके जलीय घोल की १-२ बूंद थोड़ी २ देर बाद ३-४ बार डाल दी जाती है। इसी प्रकार नासिका, कर्ण गले इत्यादि के साधारण शल्य कर्मों में संज्ञाहरण के लिये कोकेन जलीयद्राव लगाया जाता है। साधारण विद्रधि पिडिका आदिके छेदन तथा दांत निकालने से पूर्व इनकी समीपवर्ती त्वचा के नीचे सूचीवेध द्वारा कोकेन जलीयद्राव की ५ से १० बूंद डाल दें तो रोगी को कोई वेदना नहीं होती। वृश्चिक दंश की तीव्र वेदना को सहसा शांत करने के लिये कोकेन जलीयद्राव का सूचीवेध बड़ा उपयोगी है।

विषलक्षण—इसके अधिक मात्रा में खाने से भांग के विष के समान ही उपद्रव होते हैं। रोगी हिलडुल नहीं सकता और उसे त्वचा के नीचे कोई चीज़ रेंगती सी प्रतीत होती है। इसके लिये वमन देकर काफी या चाय का तीव्र घोल पिला दें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मद्य तथा मद्यसार ।

यदि खांड, गुड़, यव आदि धान्यों को थोड़े जलमें डाल या द्राक्षा, इक्षु आदि के रस या सीरे को बर्तनमें बन्द कर एक गरम स्थान में खमीरा होने के लिये रख दिया जावे तो इन की खांड मद्यसार और कार्बन गैसमें परिवर्तित हो जाती है। कुछ खांड सिरके में भी परिवर्तित हो जाती है। खांड को सिर्फ मद्यसार में ही परिवर्तित करने के लिये उपरोक्त द्रवों में थोड़ा खमीर (Yeast) भी मिला दिया जाता है। इस द्रव को जिसमें कुछ अंश मद्यसार का भी होता है मद्य-कहा जाता है। जौ की मद्य बनाने के लिये जौके कल्कको बन्द कर खमीरा के लिये रख दिया जाता है। जौके अन्दर वर्तमान खमीर (Diastase) द्वारा जौ का निशास्ता खांड में परिवर्तित हो जाता है। फिर इस जौके कल्क को गरम पानी में घोल कर पानीको छान लिया जाता है। इस पानी में जौ की खांड आ जाती है। इस को ठंड़ा कर (Yeast) से मिलाकर बन्द वर्तनमें गरम स्थान पर रख दिया जाता है। जौ की खांड मद्यसार और कार्बन गैस में परिबर्तित हो जाती है। इस छने हुए द्रव को जौ की मद्य-(Bear) कहते हैं। इसी प्रकार अंगूरों के रस में खमीर (Yeast) मिलाकर संधान किया जावे तो उसे द्राक्षामद्य-(Wine)कहते हैं। ताल वृक्ष या खजूर केवृक्ष से बनाई मद्य को ताड़ी कहते हैं। इन मद्यों में जब मद्यसार की मात्रा १३% हो जाती है तो इतनी मद्यसार के कारण खमीर मर जाता है, जिससे ये मद्य और अधिक तीव्र नहीं होती। इस प्रकार गुड़ की बनाई मद्य में से नाड़ी यन्त्र द्वारा ऊर्ध्वपातित की हुई कृत्रिम मद्य(Spirit) 'रम' जौ की मद्य में से उसी प्रकार बनाई कृत्रिम मद्य को 'ह्विस्की' और द्राक्षा मद्यमेंसे उड़ाकर बनाई कृत्रिम मद्य को 'ब्रांडी' कहते हैं। इनमें मद्यसार की मात्रा अधिक होती और प्रायः ५० %तक होती हैं। मद्यमें से ही मद्यसारको पृथक् किया जाता है। एक वर्तनमें १६ औंस खांड को ७० औंस पानी में घोल लगभग १ औंस पानी में बने खमीर (Yeast) के कल्क को भी मिला कर इस बर्तन को ३,४ दिन गरम जगह में रक्खें। इसके बाद इस द्रव में से २०,२० औंस द्रव लेकर बालुका यन्त्र पर रखे। तिर्यक् पातन यंत्र में डालें जिसकी कुप्पी और नाली ठंडे पानी में पड़ी हों। इससे तबतक पातन करें जबतक एक भागद्रव में से तीसरा भाग उड़ चुके। इस प्रकार सब आये द्रवों का तोल ३० औंस से अधिक न हो। इस पातित द्रव को फिर तिर्यक् पातन यंत्र में डालें और तापमान देखनेके लिये ताप मापक लगाकर नीचे मन्द अग्नि दें। ठंडे वाष्प को लेने के लिये अनेक पात्र होने चाहिये। प्रारम्भ में आप बूंदों को

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१ पात्र में जमा करें। जब द्रव २-३ अंश अधिक गरम हो जावे तो बूंदों को अन्यपात्र में जमा करें, इस प्रकार कुछ तापमान बढ़ जाने पर नये २ पात्र बाष्प इकट्ठे करें। ताप परिमाण ८० ° शतांश पहुँचने पर ताप देना बन्द करदें और बाष्पों का इकट्ठा करते रहें। इन सब द्रवों का इकट्ठा करने पर मद्यसार का भाग अधिक और जल का भाग कम होगा। प्रायः इस द्रव में ६०% मद्यसार और १०% जल होता है। इसीको शुद्ध कृत्रिममद्य (Rectified Spirit)कहते हैं। यदि इसमें मद्यसार की मात्रा ५७ % होतो इसको Proof spirit कहते हैं। यदि इसमें पानी और भी कम करना हो तो उसमें छोटे २ अनबुझे चूने के टुकड़े डाल, कुछ घंटे पड़े रहने देकर हलकी सी आंच पर इसका तिर्यंक् पातन किया जाता है। यह शुद्ध मद्यसार प्राप्त होती है जो(Absolute Alchohal) कहाती है। जो एक स्वच्छ, उड़न शील जलने वाला द्रव है।

मद्यकेगुण—रस-मधुर, अम्ल, गुण-लघु, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, विषद, वीर्य-उष्ण, दोष-कफवातहर, पित्त प्रकोपक।

प्रभाव—मद्य तथा मद्यसार बहिः प्रयोग में जीवाणु हर हैं। आमाशय के लिये उत्तेजक होने से दीपक और पाचक है। मद्यके आमाशय में जाते ही हृदय उत्तेजित होता और मुख तथा शरीर लाल हो जाते हैं, अतः मद्य सर्वांग उत्तेजक है। परन्तु यदि मद्यका अभ्यास डाल लिया जाय तो वह आमाशय के लिये क्षोभक होती है। जिससे आमाशय के अन्दर की झिल्ली में हलकी शोथ होजाती और पित्ताजीर्ण हो जाता है। पचने के बाद मद्य आमाशय की शिराओं द्वारा यकृत में पहुँचती है। इसके उष्ण और तीव्र होने से यकृत में शोथ होजाती है। जो फिर हटभी जाती है। परन्तु निरन्तर सेवन से यह शोथ निरन्तर बनी रहती है, और अन्त में यकृत् सर्वथा क्षीण हो जाता है। यकृत से आगे मद्य रक्त में प्रवेश होकर हृदयको उत्तेजित करती है। जिससे हृदय तथा नाड़ी की गति बलवती हो जाती है। हृदय के बलवान होने से रक्त सब अंगों में पर्याप्त मात्रा में पहुँचता है और चित्त में स्फूर्ति तथा मांसपेशियों में अधिक शक्ति आती है। मूत्र और स्वेद भी अधिक मात्रा में आते हैं पर यह उत्तेजना की हालत चिरस्थाई नहीं होती और उत्तेजक प्रभाव शान्त होने पर चित्त तथा शरीर पूर्वापेक्षया अधिक मन्द हो जाते हैं। मद्य देने से नाड़ी संस्थान उत्तेजित होता और मनुष्य की बुद्धि तीव्र तथा स्वच्छ हो जाती, बोलने सोचने और शारीरिक श्रम की शक्ति बढ़ जाती है परन्तु इसके बाद नाड़ी संस्थान की शिथिलावस्था आरम्भ होती है। प्रथम तो विचार शक्ति और बुद्धि शिथिल होती पर अब तक रोगी अच्छी तरह बोल और हंस सकता है। कुछ देर बाद उसका बोलना, हंसना भी बन्द हो जाता है पर शारीरिक श्रम की शक्ति बनी रहती है। कुछ देर बाद उसके शिथिल होने से वह अचेत और निश्चेष्ट हो जाता है। त्वचा के लिये उत्तेजक होने से यह स्वेदक है। वृक्कोंके लिये उत्तेजक होने से मूत्रल है।

उपयोग—वनिस्पतिक औषधियों के तत्व जितने

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मद्यसार में विलेय हैं उतने जल में नहीं अतः औषधियों के सार का आकर्षण करने के लिये मद्यसार औषधियोंके आसव रसक्रिया आदि बनाने तथा पानक आदि में उनके न बिगड़ने के लिये मिलाया जाता है। क्षतों को मद्यसार से धो दिया जाय तो उनके जीवाणु नष्ट हो जाते और वे पकते नहीं। तीव्र कफ वाताधिक ज्वरों में हृदय और शरीर की निर्बलता हटाने के लिये मद्य दी जाती है। किसी कारण मूर्छा हो जावे या सर्वाङ्ग के शीत हो जानेपर थोड़ी २ देर बाद मद्य देने से शरीर का रक्त संचार ठीक होने लगता और शरीर में चेतनता तथा गर्मी आने लगती है। दीर्घ ज्वरों में निद्रानाश होने पर रात्रि को अहिफेन के साथ थोड़ी मद्य पिलाने से निद्रा आ जाती है।

विषलक्षण—मद्य अधिक पीने से मूर्छा और निद्रा आती है। निद्रा में रोगी घुर्राटे लेता है। इसके लिये वमन करादें। चिरकाल तक मद्य पीने से प्रारम्भ में अजीर्ण और निद्रानाश के लक्षण होते हैं और अधिक मद्य का निरन्तर सेवन करने से यकृत क्षीण हो जाता, हृदय निर्बल हो जाता है तथा उन्माद, अपस्मार अर्धाङ्ग आदि बात रोग हो जाते हैं। मद्य पीने वाले तीव्र ज्वरों के आक्रमण को देर तक सहन नहीं कर सकते और उनका शीघ्र शिकार हो जाते हैं।

क्लोरोफार्म।

२४ औंस कृमिहर सुधा चूर्ण (ब्लीचिंग पाउडर) में १२ औंस जल मिला कल्क बना एक ७० औंस समाई वाली तिर्यक् पातन यंत्र की कुप्पी में डालें। इसमें ५ औंस शुद्ध मद्यसार (९० %) डाल, बालुकायंत्र पर रख गरम करें। वाष्पों को जमाने वाली शीशी में क्लोरोफार्म के वाष्प जमा हो जाते हैं पर क्लोरोफार्म जल में अविलेय होने से उसके साथ आये जलीय वाष्प अलग कर उसमें थोड़ा चूना डालकर हिलाकर रखने के बाद तिर्यक् पातन करने से क्लोरोफार्म प्राप्त होता है। यह एक पानी का सा उड़नशील, ज्वलनशील द्रव है जिसमें मीठीसी गन्ध आती है। यह २०० गुना जल मद्यसार और तैलों में घुलजाता है इसे अच्छी तरह बन्द कर नीली या ऐसी शीशीमें रखना चाहिये कि जिसमें प्रकाश तथा वायु न जा सके अन्यथा इसमें अन्य विषैली चीजें उत्पन्न हो जाती हैं। कहा जाता है कि थोड़ा बुझा चूना मिलानेसे यह नहीं बिगड़ता मात्रा—१ से ५ बूंद।

योग—"अर्क क्लोरोफार्म" ४० गुना जल में घोलकर बनाया जाता है। मात्रा—आधा से २ औंस।

प्रभाव—जिस स्थान पर क्लोरोफार्म लगाया जाता है उसकी संज्ञा कुछ कुंठित हो जाती है। आमाशय तथा आंतों के लिये मद्य के समान ही दीपक है। क्लोरोफार्म सुँघाया जावे तो तो सूंघने वाला व्यक्ति कुछ काल में ही अचेत हो जाता है। सूंघने के समय रोगी कुछ अवअस्थाओं में गुजरता है। जिसमें पहिली अर्धचेतनावस्था है। जिसमें यदि रोगी से पूछा जावे तो वह ठीक २ उत्तर नहीं देता और उसकी चेतना बहुत कुछ घटी हुई प्रतीत होती है। दूसरी उत्तेजनावस्था है। इसमें रोगी अचेत हो जाता है किन्तु अपनी प्रकृति

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के अनुसार ही गाने चीखने बकने या झगड़ने लगता है। तीसरी अचेतनावस्था है। इसमें रोगी थोड़ी देर झगड़ने के बाद पूर्णतया अचेत हो जाता है। और उसके अंग प्रत्यंग शिथिल हो जाते हैं। पुतली को छूने से भी वह आंख नहीं झपकती श्वास हलका और गहरा हो जाता है इसी अवस्था के आजाने पर शल्य कर्म किया जाता है। इस अवस्था के बाद अधिक क्लोरोफार्म न देना चाहिये। यदि रोगी की पुतली फैल जावे तो यह बात क्लोरोफ़ार्म की अधिकता को सूचित करती है। प्रायः पूर्ण अचेतन करने के लिये १ से ४ ड्राम तक क्लोरोफार्म खर्च होता है।

उपयोग—यदि दांतों में ताम्र शूल हो तो इसमें भीगा फोआ रखने से शूल शान्ति होती है। इसी प्रकार कटि, संधि, पार्श्व, आदि में शूल होने पर क्लोरोफार्म को तेल में मिला कर मलने से आराम आता है। अतिसार अथवा उदर शूल को शान्त करने के लिये अहिफेन, कर्पूर, अजमोदा आदि उपयोगी द्रव्यों के साथ ही अर्क क्लोरोफार्म दिया जाता है। श्वास द्वारा ही इसका मुख्यतः प्रयोग होता है जब कोई शल्य कर्म करना हो अस्थिभंग या सन्धिभंग में अस्थियों का स्थान स्थित करना हो, पित्ताश्मरी वृक्काश्मरी उदर शूल, अलर्कविष आदि में जब रोगी की मर्मान्त वेदना को शान्त करना हो; जब शरीर के किसी भाग में होने वाले तीव्र आक्षेप स्तम्भ के वेगों को हटाना हो प्रसव में गर्भ बाहि आते समय तीव्र वेदना को हटाना हो तो इसको सुंघाया जाता है।

इसके देने से कम से कम ६ घंटे पहिले तक कोई भोजन न देना चाहिये। ग्रीवा और छाती के कपड़ों को ढीला कर देना चाहिये मुख में कृत्रिम दांत हों तो उनको निकाल देना चाहिये। कपड़े की पीक सी बना कर उसमें थोड़ी रुई सीकर, उस रुई पर ३० बूंद इसके डाल पीक को उलटा कर नाक के ऊपर थोड़ी दूर रख कर सुँघाना चाहिये रोगी के पूर्ण अचेत होने पर ही शल्य कर्म आरम्भ करना चाहिये। यदि सुंघाते समय रोगी को वमन हो आवे तो उसका मुख दांये या बांये मोड़ कर निचला जबड़ा नीचे को दबा कर मुंह को खोल देना चाहिये ताकि वमन सुगमता से आजाय और मुंह में न लौट जावे। यदि सुंघाते हुये रोगी का मुख पीला हो जावे तो सिरको मेज से नीचे लटका देना चाहिये। रोगीके श्वास की तरफ ध्यान रखना चाहिये उसके मन्द या बन्द हो जाने पर श्वास जारी करने के लिये उसकी छाती को दोनों ओर से अच्छी तरह मलना चाहिये। और थोड़ी मद्य भी पिलानी चाहिये। सुँघाने के २-३ घंटे बाद तक भी कोई भोजन न दें। फिर उस दिन केवल द्रव भोजन देना चाहिये सुँघाते समय जिह्वा, थूक या वमन द्रव्य के पीछे की तरफ लौट जाने से श्वास रोध होने का भय रहता है। उसका ध्यान रखना चाहिये तथा हृदय रोगी वृद्ध, चिररोगी, मधुमेही, मद्यपी को क्लोरोफार्म सुंघाना उचित नहीं है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विषमज्वरहर द्रव्य.

१–गुडूची नाम हिन्दी—गिलोय या गुलञ्चा। लैटिन Cocculus Cordfolius

प्राप्तितथावर्णन—सर्वत्र होने वाली देहरादून तथा साहरनपुर में बहुत होने वाली, यह एक ऊंची चढ़ने वाली बेल है। इसमें से वायवीयमूल निकलती है। त्वक् भूरी, श्वेत, फटी हुई, पत्ते २ से ४ इंच लम्बे, चौड़े पान के आकार के, नीम के वृक्ष पर चढ़ी गिलोय अच्छी समझी जाती है। औषधियों में इसका ताजातना काम आता है।

विश्लेषण—इसमें एक तिक्त तत्व होता है तथा कुछ अंश एक क्षारीयतत्व (Berberine) का होता है। इनके अतिरिक्त Starch जिसे गिलोय का सत कहते हैं होता है।

योगगुडूचीकषाय—१६ गुना जलमें चौथाई कषाय १ से ४ औंस अमृतासव ५ गुना मद्यसार (६०%) में बनावें आधा से २ ड्राम। गुडूची रसक्रिया कषाय को गाढ़ा कर बनावें। २ से १० यव।

गुडूचीसत—गिलोय के टुकड़ों को पानी में कुछ देर रख मसल कर खंडों को निकाल, पानी को नितार कर नीचे बैठे श्वेत हरे द्रव्य को पानी डाल, हिला २ कर ऊपर का पानी फेकते जावें जब तक नीचे का द्रव्य स्वच्छ, श्वेत न हो जाय श्वेतद्रव्य को धूप में सुखालें मात्रा—५ से २० यव।

शुण्ठीगुडूच्यादिकषाय—शुण्ठी, गुडूची, पिप्पली मूल, समान २ का १६ गुना जल में चौथाई कषाय करें। मात्रा—१ से ४ औंस रोग—वातज्वर। यो० र०

द्राक्षा गुडूच्यादि कषाय—द्राक्षा, गुडूची, मुस्ता कटुकी समान २ का कषाय करें। मात्रा-१ से ४ औंस। रोग-पित्तज्वर। यो० र०

बासा गुडूच्यादि कषाय—वासा, गुडूची, शठी, कटुकी, पटोल, त्रिफला समान २ का कषाय करें। मात्रा-१ से ४ औंस। रोग कफज्वर। यो० र०

क्षुद्रादि पंचतिक्त क्वाथ—क्षुद्रा, पुष्करमूल, किरात तिक्त, गुडूची, शुंठी समान २ का १६ गुणा जल में चौथाई कषाय करें। मात्रा १ से ४ औंस। रोग वात कफ ज्वर। यो० र०

अमृताष्टक—अमृता, निम्ब, कटुकी, मुस्ता, इंद्रयव, शुण्ठी, पटोल, चन्दन समान २ का कषाय करें मात्रा--१ से ४ औंस रोग--पित्त कफ ज्वर।

गुडूची त्रिफला दार्वी क्वाथ—पांचो द्रव्य समान २ का कषाय करें। मात्रा--१ से ४ औंस रोग--विषमज्वर, व प्लीग।

गुडूची त्रिफलादि क्वाथ—गुडूची, चित्रक, निम्ब पटोल समान २ का कषाय करें। मात्रा-१ से ४ औंस। रोग-अम्लपित्त। यो० र०

गुडूची तैल तथा घृत—गुडूची क्वाथ-१६, गुना

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तेल या घृत ४, गुडूची कल्क १, दूध ४ भाग से तेल और घृत बनावें। मात्रा-१ से ४ ड्राम रोग-वातरक्त।

अमृतादि गुग्गुल—गुडूची १६, त्रिफला प्रत्येक १६, जल २५६ भाग में चौथाई कषाय कर छान कर उसकी रस क्रिया करें फिर उसमें गुग्गुल २४, दन्तीबीज, त्रिकटु, विडंग, गुडूची, त्रिफला प्रत्येक आधा, त्रिवृत चौथाई भाग मिला ६ यव की गोलियां बनावें। मात्रा १ से ४ गोली। रोग-वातरक्त, त्वक्‌रोग, दुष्टव्रण, भगन्दर, अर्शस्, आमवात।

गुण—रस-तिक्त कषाय, गुण-लघु, वीर्य-उष्ण, पाक-मधुर, दोष त्रिदोषहर।

प्रभाव—यह अम्ल पित्तहर, यकृत शोधक, त्वच्य, रक्तशोधक, रसायन द्रव्य है।

उपयोग—भिन्न २ ज्वरों में गुडूची के उपयुक्त योगों का बहुत प्रयोग होता है। विषमज्वर में इसका पिप्पली के साथ कुण्ठी में मर्दन कर बनाया शीत कषाय या कुटजत्वक् के साथ बनाया उष्ण कषाय या इन दोनों की रस क्रिया की बनाई गोलियां देनी चाहिये। विषमज्वर जन्य यकृत्, प्लीहा, रोगों में भी इसके उपर्युक्त कषाय कुछ दिन निरन्तर पिलाने चाहिये। कामला के लिये इसके कटुकी त्रिफला आदि के साथ बने कषाय बड़े लाभदायक हैं। अम्ल पित्त के लिये इसके कषाय प्रातःकाल दिये जाते या गुडूची सत थोड़ी मिश्री के साथ प्रातः सायं दिया जाता है। वातरक्त रोग के लिये यह सर्वोत्तम औषधि है। इसके कषाय को शिलाजतु के साथ या इसका कोई उपर्युक्त योग दे सकते हैं। आमवात में इसका शुंठी, देवदारु, हरीतकी, आदि के साथ बनाया कषाय योगराज गुग्गुलु के अनुपान के रूप में दिया जाता है। चिरस्थाई नेत्राभिष्यन्द में गुडूची और त्रिफला का शीत या उष्ण कषाय कुछ दिन देने से नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं। शुक्रमेह रोग की औषधियों में प्रायः गुडूची सत भी डाला जाता है।

२—सिन्कोना नाम हिन्दी—सिन्कोना। इंग्लिश Cinchona लैटिन Cinchona Officinale

प्राप्तितथा वर्णन—नीलगिरि, वर्मा, मध्यभारत तथा सीलोन में इसकी खेती की जाती है। इसकी सूखी हुई त्वक् और छोटी २ शाखायें पृथक करके सुखालीं जाती और उनका चूर्ण कर लिया जाता है। यह चूर्ण कुछ लाल भूरा सा होता है जो निर्गन्ध तथा अति तिक्त होता है।

विश्लेषण—इसमें ५ या ६% चार क्षारीय तत्त्व होते हैं। 1. Quinine, 2. Cinchonine, 3. Quinidine, 4. Cinchonidine क्विनीनप्राप्त करने के लिये सिन्कोनात्वक् चूर्ण में से उद्हरिकाम्ल मिश्रित जल को गुजारा जाता है जिससे नीचे आये हुये जलमें Hydrochlorate of guinine का घोल आ जाता हैं जो एक Solt है। इस द्रव को छान कर इसका रंग उड़ाने के लिये अस्थियों के कोयलों में से गुजारा जाता है फिर उसमें दाहक सोडा डाला जाता है जिससे नीचे एक श्वेत सा द्रव्य निक्षिप्त होता है। इसको नितारण द्वारा अलग करलिया जाता है। यही क्विनीन है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

योग सिन्कोनासव—सिन्कोना चूर्ण १ मद्यसार (७०%) ५ भाग मिलाकर आसव बनावें। मात्रा—आधा से १ ड्राम।

सिन्कोनाफान्ट—सिन्कोना त्वक् चूर्ण ५०, ग्रेन हलका गन्धकाम्ल १२॥ बूंद, उबलता हुआ जल १०००, बूंद मिलाकर बनावें। मात्रा—आधा से १ औंस।

Quinine sulphate—गन्धकाम्ल में किनीन को डाल कर उसके स्फटिक बना लिये जाते हैं। जो रेशमी श्वेत और अति तिक्त होते हैं। ये जल में नहीं घुलते पर किसी पार्थिवाम्ल जैसे लवणाम्ल या गन्धकाम्ल आदि से मिश्रित जल में घुल जाते हैं। मात्रा—१ से १० यव १० यव। को थोड़े से जल में घोल १० बूंद हलके लवणाम्ल या गन्धकाम्ल डाल जल १ औंस तक मिला किनीन मिश्रण बनाया जाता है।

Quinine Hydrochloride—किनीन को लवणाम्ल में डाल बनाया जाता है इसके स्फटिक किनीन सल्फेट के स्फटिको की अपेक्षा कुछ बड़े होते हैं। गर्म जल में घुलजाते हैं। किनीन बाई हाइड्रोक्लोराइड श्वेत सा चूर्ण होता है और जल में सुगमता से घुलजाता है। मात्रा—१ से १० यव।

प्रभाव तथा उपयोग—किनीन उत्तम विषम ज्वर है। विषम ज्वर के कारण प्लीहा, यकृत बढ़े हुये हों या कोई अन्य उपद्रव हों तो कुछ दिन इसके देने से सर्वथा हट जाते हैं। ज्वर के चढ़ने से २ घंटा पूर्व इसे मिश्रण आदि के रूप में दे देने से वेग का आना बन्द हो जाता है। यह गर्भाशय क्षोभक और आर्तव प्रवर्तक है इसलिये गर्भिणी को २ से ५ ग्रेन तक की ही मात्रा में देनी चाहिये। ऐसी स्त्रियों तथा उन पुरुषों को जिनके अन्दर थोड़ी भी मात्रा विकार उत्पन्न कर देती है इसे हलके हाइड्रोब्रोमिक अम्ल के साथ मिलाकर देना चाहिये यदि विषम ज्वर पुराना हो तो इसके मिश्रण में लोमलद्राव (२ से ८ बूंद) मल बन्ध हो तो मैगनीशियम सल्फेट, पांडु, प्लीहा आदि हों तो कसीस, नवसादर आदि मिला करके दे सकते हैं। किनीन को निम्बु के रस में घोल थोड़े सर्जक्षार का जल मिला शुरशुरा कर पिलाने से या बताशे या बाजार में मिलने वाली निशास्ते की डब्बियों (केचेट्ट) में बंद कर खाने से भी कड़वापन नहीं मालूम होता। मिश्रण के पीछे पान खा लेने से मुख बिलकुल कड़वा नहीं होता। यदि मुख से इसे न दिया जा सकता हो तो किनीन बाई हाइड्रोक्लोराइड को ५ से १० यव की मात्रा में मांस या शिरा में सूचीवेध द्वारा भी दिया जा सकता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मूत्रल द्रव्य ।

१—कंकोल नाम-हिन्दी--शीतलचीनी, कबाब-चीनी। इंग्लिश-Cubebs लैटिन Cubeba Officinalis.

प्राप्ति तथा वर्णन—जावा, सुमात्रा में होती तथा सिंगापुर से भारत में आती है। यह फैलने वाली, कठोर, झाड़ी है। फल आकृतिमें काली मिर्च से मिलते हैं परन्तु उनमें एक छोटी डंडी लगी रहती है। कंकोल दो प्रकार की होती है। मोटे बक्कल वाली को कंकोल और पतले बक्कल वाली को शीतलचीनी कहते हैं। इनके फलों को पूरे बढ़ चुकने पर पकने से पहिले ही तोड़ लिया जाता है।

विश्लेषण—इनमें ३ % एक विशेष तत्व होता है एक ५ से १५ % अस्थिर तेल तथा ३ % एक Oleoresin होता है। इसमें एक स्थिर तेल कंकोल की गंध वाला होता है।

योग कंकोलचूर्ण १० से २० यव। कंकोलतैल-५ से १५ बूंद। कंकोलासव-५ गुणा मद्यसार (९०%) में बनावें। आधा से २ ड्राम।

गुण—रस-कटुतिक्त, गुण-लघुतीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण पाक-कटु, दोष-कफ वातहर।

प्रभाव तथा उपयोग—आमाशय, श्वास मार्ग, और मूत्रमार्ग के लिये उत्तेजक है अतः दीपक, कफ, मुंसक और मूत्रल है। पूयमेह में १० यव कंकोल चूर्ण, १० यव शोरक और ५ यव स्फटिकी सूक्ष्मैला और श्वेतजीरक चूर्ण के साथ मिलाकर दूधकी लस्सी के साथ दिन में २-३ बार दिया जाता है। कंकोल के तेल को स्वतंत्र या चन्दन तेल और गंदा विरौजा के तेल के साथ समान २ मिला १० १५ बूंद की मात्रा में बताशे में भर कर दूध की लस्सी के साथ दिया जाता है। इसको गंदाविरौजा, सूक्ष्मैला, चन्दन आदि पूयमेह हर औषधियों के साथ बनी गोलियां भी दी जाती हैं। शुक्रमेह में शीतलचीनी चूर्ण के मिश्री, वंशलोचन, सूक्ष्मैला आदि के साथ दिन में २ बार देने से विशेष लाभ होता है।

२--अपामार्ग नाम हिन्दी—चिरचिटा, लटजीरा, लैटिन Achyranthes Aspera

प्राप्तितथावर्णन—सर्वत्र जंगलों में होने वाला, एक वार्षिक १ से २ फुट ऊंचा क्षुप, शाखायें चौकोन, गांठदार, पत्तेथोड़े, कुछ मोटे, चौड़े अंडाकृति ३ से ५ इंच लम्बे, २ से ३ इंच चौड़े, मूल पर संकुचित और प्रायः गोल से होते हैं, मञ्जरी १८ इंच लम्बी, अनेक उलटे कांटों वाली होती है, पुष्प हरे से श्वेत रंग के होते हैं। लालकी अपेक्षा श्वेत अपामार्ग श्रेष्ठ माना जाता है। पञ्चांग औषधियों में काम आता है।

विश्लेषण—इसमें क्षार (Po. tash) की बहुत अधिक मात्रा होती है।

योग अपामार्गबीज चूर्ण—५ से १० यव। अपामार्गक्षार-५ से १५ यव। अपामार्ग कषाय-१ से २ औंस।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अपामार्गक्षारतैल—अपामार्ग की राख २, जल १६ भाग मिला नितारे हुये जल में तेल ४, अपामार्ग कल्क १ भाग मिला तेल बनावें। रोग—कर्णशोथ, कर्णनाद, कर्णबाधिर्य।

गुण—रस-मधुरतिक्त, गुण-सररूक्ष तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक-मधुर, दोष-वातकफ हर।

प्रभावतथाउपयोग—यह बिषहर, मूत्रल औरगर्भाशयके लिये उत्तेजक है कानोंके मैल तथाशोथ को हटानेके लिये अपामार्ग क्षारतैलडालाजाता है। चूहा, कुत्ता, सांप, बिच्छू, मकड़ी आदि की विष नष्ट करने के लिये दंश स्थान पर अपामार्ग मूल कल्क बांध देते हैं। सांप तथा कुत्ते के विषों को नष्ट करने के लिये प्रति दिन १ तोला अपामार्ग मूल का चूर्ण या कषाय शहद के साथ या चतुर्गुण स्वरस और चतुर्थांश अपामार्ग कल्क से बनाया हुआ घी कुछ दिन तक दिया जाता है। प्रतिश्याय को हटाने तथा नासा कृमियों को निकालने के लिये इसके बीजों के चूर्ण का नस्य लाभदायक है। मूल को सूत में पिरो माला बना गले में पहनने से गण्डमालाहर कहा गया है। अपस्मारी को बीज चूर्ण का नस्य और हरीतकी का सेवन कराने से बड़ा लाभ होता है।

प्रसव कराने के लिये अपामार्ग मूल कषाय गुड़ डालकर १-२ औंस की मात्रा में थोड़ी २ देर में पिलाया जाता तथा वस्ति प्रदेश पर कल्क का लेप किया जाता है। अपामार्ग मूल को स्त्री की कमर पर बांधने से भी प्रसव हो जाता है। प्रसव के बाद इस मूल को शीघ्र ही पृथक कर देना चाहिये। यदि गर्भ मूढ़ हो जावे तो इसका मूल या मूल कल्क की बर्ती योनिमार्ग में रक्खी जाती है जिससे गर्भ और आर्तव शीघ्र बाहर आ जाता है। वृक्करोग जन्य श्वयथुः, जलोदर तथा प्लीहा वृद्धि में मूत्र द्वारा अधिक द्रव भाग निकालने के लिये अपामार्ग कषाय या क्षार बहुत उपयोगी है। मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी में १० से २० ग्रेन की मात्रा में इसका क्षार दिन में ३, ४ बार दिया जावे तो मूत्र खुलकर आता और पथरी नहीं बनती। रक्तार्शस् में २, ३ दिन मरिच के साथ अपामार्ग का कषाय देने से रक्त बन्द हो जाता है। कहा जाता है कि इसकी मूल कटि पर बांधने से अर्शस् अच्छी हो जाती है। इसके क्षार को मधु के साथ दिया जावे तो कास रोग में श्लेष्मा सुगमता से निकलती है १० भाग अपामार्ग मूल में १ भाग मरिच मिलाकर १५ से २० ग्रेन की मात्रा में २, ३ बार प्रतिदिन १ सप्ताह तक दिया जावे तो कहा जाता है कि इससे श्वास रोग में विशेष लाभ होता है। इसके साथ खाने के लिये सिर्फ दूध रोटी और चावल ही देने चाहिये अपामार्ग क्षार भी श्वासरोग हर है।

३ पुनर्नवा *नाम-हिन्दी*—विषखपरा। लैटिन। Boerhauia Diffusa

प्राप्ति तथा वर्णन—वर्षाऋतु में सर्वत्र होने वाला जमीन पर फैला हुआ क्षुप, कांड २ से ३ फुट पतला, लम्बा, फैलता या चढ़ता है। बीच २ में गांठें होती हैं। पत्ते आधे से १॥ इंच लंबे अंडाकार, ऊर्ध्व पृष्ठपर हरे और निम्न पृष्ठ पर श्वेत होते हैं, फूल श्वेत पुनर्नवा के श्वेत

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

और लाल के लाल, मूल मुड़ी हुई, श्वेत, अंगुली जितनी मोटी, स्वाद में कटु होती है। श्वेत पुनर्नवा श्रेष्ठ समझी जाती है। इसका पंचांग विशेषतः मूल काम आती है।

विश्लेषण—इसमें .०१ % एक क्षारीयतत्व का Sulphate होता है जो Punarnavine कहाता है। इसमें Potassium nitrate ६.४१ % होता है इसकी राखमें Sulphates, chlorides तथा कुछ २ nitrates और Chlorates भी होते हैं।

योग—पुनर्नवा मूल चूर्ण—१० से ३० यव। पुनर्नवा क्वाथ-१ से ४ औंस। पुनर्नवामूलासव-५ गुना मद्यसार (६० %) में। आधा से २ ड्राम। पुनर्नवारसक्रिया २ से १० यव।

पुनर्नवाघृत--रस ४, घृत १, कल्क चौथाई भाग मिलाकर घृत बनावें। मात्रा-१ से ४ चमचे रोग-श्वयथुः

पुनर्नवादिघृत-दशमूल कषाय १६, घृत १, पुनर्नवा चित्रमूल, देवदारु, पंचकोल, यवक्षार, हरीतकी समान २ एक भाग मिला घृत बनावें। मात्रा १ से ४ चमचे रोग-श्वयथुः, आमवात।

पुनर्नवाष्टक—पुनर्नवा, निम्ब, पटोल, शुंठी, कटुकी, गुडूची, दार्वी, अभया प्रत्येक समान २, १६ गुणा जल में चौथाई कषाय करें। मात्रा १ से ४ औंस, रोग-सर्वांग श्वयथुः, जलोदर, यकृत प्लीहा रोग, पाण्डु, कामला, त्वग्रोग, अरुचि।

पुनर्नवाद्यरिष्ट चरक--श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, बला, अतिवला, पाठा, दन्ती, गुडूची, चित्र मूल, कंटकारी प्रत्येक ३, जल १०२४ भाग चौथाई कषाय कर गुड़-२०० मधु १६, त्रिजातक, मरिच, नेत्रवाला लोहभस्म, प्रत्येक आधा भाग डाल अरिष्ट बनावें। मात्रा-२ से ८ ड्राम। रोग-श्वयथुः, हृदयरोग, यकृतप्लीहा वृद्धि, पांडु, अरुचि।

पुनर्नवादि लेह—पुनर्नवा, दशमूल, गुडूची, देवदारु प्रत्येक समान २ का सम्मिलित कषाय ६४, आर्द्रकरस १६, गुड़ १००, भाग डाल पानक बनायें। उसमें त्रिकटु, त्रिजातक, चव्य प्रत्येक चौथाई भाग डाल लेह बनावें। मात्रा २ से ८ माशे। रोग-श्वयथु, कास, श्वास, अरुचि। यो० र०

पुनर्नवादि चूर्ण—पुनर्नवा, गुडूची, शुंठी, शतपुष्पा, वृद्धदारु, शटी, मुँडी समान २ चूर्ण करें। मात्रा-१५ से ३० ग्रेन। रोग-आमवात, नाड़ीशूल। भै० र०

पुनर्नवादि लेप—पुनर्नवा, सुरदारु, शुंठी, राजिका, शिग्रुत्वक् समान २ मिला सिरके से लेप करें। रोग-शोथ। शा० ध०

गुण—रस-तिक्त, गुण-रूक्ष, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु; दोष-वात कफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—इसका विशेष प्रभाव वृक्क पर होता है जिससे मूत्र अधिक मात्रा में आता है। यह हृदय की शक्ति को बढ़ाती तथा श्वास मार्ग से कफ को निकालती है। पुनर्नवा शरीर की अन्तः शोथ को हटाती है। नेत्र कंडू, नेत्र स्राव, रात्र्यन्ध, नेत्रपुष्प आदि रोगों में स्त्री दुग्ध से पुनर्नवा मूल चूर्ण की वर्ति बनाकर शहद से घिसकर कुछ दिन आंखों में लगाने से आराम आता है। सूजी हुई ग्रन्थियों, संधियों पर इसके पत्तों की पोल्टीस या पुनर्नवादि चूर्ण का सिरके के साथ गर्म लेप लगाया जाता है। हृदय तथा वृक्क की निर्बलता से उत्पन्न श्वयथुः रोग के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लिये यह उत्तम औषधि है। इसके उपर्युक्त योग या इसके कषाय में १० से १२ ग्रेन शोरक और यवक्षार डालकर दिन में २-३ बार पिलाते हैं। इसके देने से मूत्र की मात्रा बढ़ जाती और हृदय की निर्बलता घट जाती है। हृद्रोग तथा पार्श्वशूल में शरीर से अधिक द्रव निकलने के लिये इसके योग दिये जाते हैं। श्वयथु रोगी को इसका घृत तथा हरी पुनर्नवा का शाक खिलाया जाता है। पूयमेह जन्य सन्धिशोथों, नाड़ी शोथों, श्वास मार्ग की शोथों में पुनर्नवादि चूर्ण, घृत, कषाय आदि लाभ दायक हैं।

६--चायनाम *हिन्दी*--चाय । इंग्लिश Teaplant लैटिन Camellia thea

प्राप्तितथावर्णन--भारत के पर्वतीय प्रदेशों में इसकी खेती की जाती है। यह तीन से ५ फुट ऊंची झाड़ी होती है। पत्र संख्या में बहुत, लम्बे, अंडाकार, दन्तुर स्पष्ट नाड़ियों वाले और आमने सामने नहीं होते, फूल श्वेत से होते हैं, फल ३ कोष्ठों वाले होते हैं जिनमें से प्रत्येक में १ बीज होता है। जिन पत्तों को शीघ्र सुखाकर भूना जाता है उसे हरी चाय और जिनको सुखाने तथा भूनने से पहिले कुछ देर सड़ाया जाता है, उसे काली चाय कहते हैं।

विश्लेषण—पत्तों में ३% एक क्षारीय तत्व जिसे Coffine कहते हैं होता है। यह श्वेत सा चूर्ण होता है। उबलते जल में घुल जाता है मात्रा—१ से ५ ग्रेन। Coffine के घोल को समान निम्बुकाम्ल (Citric acid) में डालकर Coffine citrate बनाया जाता है जो श्वेतसा चूर्ण है :और स्वाद में कुछ कटु होता है। ३२ गुणा जल और समान मद्य सार में घुलजाता है। मात्रा—२ से १० यव

प्रभावतथा उपयोग—चाय तथा केफीन हृदय के लिये उत्तेजक है। इनके देने से हृदय और नाड़ी मन्द तथा बलवान होजाती है पर यदि निरन्तर इसका सेवन किया जावे तो हृदय तथा नाड़ी तीव्र और निर्बल होजाती है। इसके देने से मनुष्य की शारीरिक और मानसिक श्रम करने की शक्ति बढ़ जाती है। मांस पेशियों में कार्य करने की शक्ति बढ़ जाती है। चाय से मूत्र खुलकर आता है। तीव्रज्वरों में जिनमें हृदय निर्बल हो जाता है। चाय या केफ़ीन के देने से हृदय को बल प्राप्त होता और मूत्र खुलकर आता है। पर हृदय रोगों में हृदय को बल देने के लिये डिजिटेलिस, मधुयष्ठी आमलकी इत्यादि औषधियां देनी चाहिये। चाय या केफीन न देनी चाहिये।

४-हृद्यद्रव्य।

डिजिटेलिस नाम हिन्दी—-डिजिटेलिसके पत्ते, लैटिन Digitalis purpurea.

प्राप्ति तथा वर्णन--इसका क्षुप भारत में नहीं होता। यूरोप के भिन्न २ प्रदेशों में होते हैं। इसके पत्तों में एक मन्दसी गन्ध आती है। इनका स्वाद कटु होता है। पत्ते गोल तथा भालाकार, हलके हरे और लोमश होते हैं। पत्ते काम आते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विश्लेषण--इनमें ५ Glucosides होते हैं जो इसके क्रियाशील तत्व हैं। 1. Digitoxin, 2. Digitalin (मात्रा—$\frac{१}{६०}$ से $\frac{१}{३०}$), ३, Digitophyllin, ४, Digitoniun ५, Digitalein

योग डिजिटेलिस पत्रचूर्ण—मात्रा—आधा से २ यव। डिजिटैलिस आसव-पत्रचूर्ण १, मद्यसार (७० %) १० भाग में बनावें। मात्रा--५ से १५ यव। हृदयामृत रस-पारद, गंधक, डिजिटैलिस पत्र, वनपलांडु चूर्ण, धत्तूर पत्र चूर्ण समान २ मिला २, रत्ती की गोलियां बनालें। हृदयनैर्बल्य।

प्रभावतथा उपयोग--डिजिटेलिस के देने से हृदय की तीव्र और निर्बल गति मन्द और बलवती होजाती है। हृदय की मांस पेशी में शक्ति आती है जिससे हृदय का अपूर्ण संकोच पूर्णता से होने लगता है। इसलिये हृदय की निर्बलता में डिजिटेलिस एक उत्तम औषधि है। यदि हृदय का संकोच तीव्र, निर्बल और विषम हो तो इसके देने से मंद बलवान और नियमित होजाता है। हृदय के दोनों वाम और दोनों दक्षिण कोष्ठों के बीच की कपाटियों के रोगों के कारण जब हृदय निर्बल होजाता है तो यह विशेषतः उपयोगी है। श्वास ज्वर, पार्श्वशूल आदि तीव्र ज्वरोंमें हृदय की निर्बलना हटानेके लिये डिजिटेलिस दिया जाता है।

५—*वनपलाण्डु नाम हिन्दी*—जंगली प्याज़। लैटिन। Urginea Indica

वर्णन—बड़े वन पलांडु का छोटा सा क्षुप है जिसमें पत्तों के आने से पूर्व ही फूल लगते हैं। कन्द कुछ छोटा होता है, फूल लम्बी डंडी पर लगते हैं। बड़े वनपलांडु कन्द काम आते हैं। पूर्ण बढ़े हुये पुराने कन्द में असर नहीं होता।

विश्लेषण—इसमें दो Glucosides हैं। १ Scilliloxin जो जल और मद्यसारमें विलेय है। Scillipicrin जो मद्यसार और क्लोरोफार्म में विलेय है।

योग वनपलाण्डुचूर्ण—१ से ५ यव। वनपलांडु सिरका-कन्द १०, सिरकाम्ल १०, शुद्ध जल तथा मधु (मिलित) ३२, भाग मिला बनावें मात्रा--५ से १५ बूंद।

वनपलाण्डुवासव—वनपलांडु १, मद्यसार (६०%) ५ भाग। मात्रा—५ से १५ बूंद।

वनपलाण्डु पानक—वनपलांडु स्वरस या कषाय दुगुनी खांड डालकर बनावें। मात्रा—१० से ३० बूंद।

प्रभाव तथा उपयोग—हृदय पर इसका प्रभाव डिजिटेलिस के समान होता है। यह श्वास नालियों में से श्लेष्मा को बाहर निकालती है तथा वृक्कों को उत्तेजित कर मूत्रल होती है। यह श्वास नालियों, मूत्र मार्ग तथा आंतों के स्रावों के द्वारा शरीर से बाहर निकलती है कास में जब श्लेष्मा श्वास नालियों में बढ़ जाय और उसे निकालना अभीष्ट होता है। तो वनपलांडु का सिरका या आसव बहुत उपयोगी है। पर खांसी की प्रथमावस्था में इसे न देना चाहिये। उस समय देनेसे खांसी अधिक आती है। श्वास नालियों में श्लेष्मा का स्राव बढ़ जाता है। यदि हृदयकी निर्ब-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लता के कारण श्वयथु हो तो वनपलांडु देने से जहां हृदय उत्तेजित होता है वहां मूत्र भी अधिक आता है जिससे शोथ कम होजाती है। श्वास ज्वरादि ज्वरों में निर्बल हृदय को उत्तेजित करने के लिये इसे दिया जाता है।

७--अर्जुन नाम हिन्दी—अर्जुन लैटिन—Treminalia Arjuna

प्राप्तितथा वर्णन—भारत के उत्तर पश्चिम प्रांत में एक बड़ा ६० से ८० फुट ऊंचा वृक्ष, त्वक् चिकनी, श्वेत, ऊपर का छिलका पतले २ फलकों में उतरता है, पत्ते कुछ २ आमने सामने ३ से ६ इंच लम्बे, फूल शाखाके अन्त में लम्बे पुष्प दंडिका पर कई पतले और लम्बे गुच्छों पर लगते हैं, फल १ इंच लम्बा, ५ से सात उभरे हुये किनारों वाला होता है! अन्दर की त्वक् काम आती है।

विश्लेषण—इसमें मुख्यतः एक Glucoside, Tannic acid १५% तथा राखमें Calcium carbonate मुख्यतः होता है।

योग—अर्जुन त्वक् चूर्ण-१० से ६० यव। अर्जुनरस क्रिया-२ से १० यव।

अर्जुनत्वक्षाय—४० गुणा दूध तथा इतने ही जल में जब तक दुध शेष रहे बनावें। मात्रा-२ से ८ औंस। रोग-हृद्रोग, रक्तपित्त।

अर्जुनघृत—स्वरस ४, घृत १, कल्क चौथाई भाग मिला घृत बनावें। मात्रा-१ से ४ ड्राम। रोग-हृद्रोग, रक्तपित्त।

गुण—रस-कषाय, गुण-लघु, वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष-पित्तहर।

प्रभावतथा उपयोग—यह वहिः तथा अन्तः प्रयोग में ग्राही, पित्तप्रकोप शामक है विशेषतः हृदय पर हुये पित्त के प्रकोप को हटाता है। पित्त प्रकोप के कारण शरीर के किसी मार्ग से रुधिर निकलता हो तो उसे बंद करता है। पित्त प्रकोप से हृदय में अन्तः शोथ होकर उत्पन्न हुये हृदय शूल हृत्कम्प आदि रोगों में इसका दूध में बनाया कषाय या बलादि घृत या इसका चूर्ण दिये जाते हैं। हृदय रोगों में निरन्तर कुछ काल इसका प्रयोग किया जाता है। रक्तवमन, रक्तातिसार, रक्तार्शस्, उरःक्षत जन्य रक्तष्ठीवन में इसके दूध के बने कषाय में मिश्री डालकर देने से रक्त बन्द हो जाता है। शुक्रमेह, पूयमेह आदि रोगों में शारीरिक उष्णता को हटाने के लिये चन्दन आदि शीत द्रव्यों के साथ इसका कषाय देना चाहिये। अस्थिभंग जन्य शोथ को हटाने के लिये इसका दूधमें किया हुआ कषाय पिलाया जाता है। इसके पिलाने से शोथ उतर जाती और टूटी हुई अस्थि शीघ्र जुड़ जाती है।

८—वत्सनाभ नाम-हिन्दी—मीठा तेलिया, मीठा विष। इंग्लिश-Monks Hood लैटिन-Aconitum ferox तथा Aconitum Napellus.

प्राप्ति तथा वर्णन—वत्सनाभ के अनेक भेद हैं जो हिमालय के ऊंचे, ठंडे प्रदेशों में मिलते हैं इसकी मूल २ से ५ इंच लम्बी, १ से डेढ़ इंच मोटी ऊपर से काली अन्दरसे श्वेत, भुरभुरी होती और उसपर छोटी पतली २ जड़ों के निशान होते हैं। तना सीधा १२ से ३० इंच ऊंचा, पतला, लोमश, पत्ते दूर २ नरम, निम्न पत्ते बड़े और ऊपर के छोटे, इनके फलक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हस्ताकार तथा इनकी अंगुली के आकारके पत्त छोटे २ पत्तों में फटे होते हैं, फूल ३ से ८ इंच लम्बे, गुच्छों पर लगते हैं यह नीले सुन्दर और वासा के पुष्पों की तरह होते हैं। फलोंके पकने के पीछे निकाली हुई, नरम, भारी, चिकनी और मोटी मूल औषधियों में काम आती है। मूल को गोमूत्र में डालकर ३ दिन कड़ी धूप में रख सुखा लेते हैं गोमूत्र प्रतिदिन बदल देना चाहिये।

विश्लेषण—इसमें एक क्षारीयतत्व होता है जिसे (Aconitine) कहते हैं जो इसका क्रियाशील तत्व है जो उबलते जल में घुल जाता है।

योग वत्सनाभिचूर्ण $\frac{१}{२०}$ से $\frac{१}{१६}$ यव।

वत्सनाभासव—१० गुना मद्यसार (७० %) में। २ से ५ बूंद।

मृत्युञ्जयरस—हिंगुल २, गंधक, वत्सनाभ, मरिच, टंकण, पिप्पली प्रत्येक १ भाग आर्द्रक रस से मर्दन कर १ से २ यवकी गोली बनावें। मात्रा १ से २ गोली। रोग-अतिसार, अजीर्ण युक्त ज्वर।

आनन्द भैरव—मृत्युञ्जयरस के समान है परन्तु हिंगुल १ भाग होता है। रोग-अतिसार तथा अजीर्ण युक्त ज्वर।

कफकेतु—वत्सनाभ, पिप्पली, टंकण, शंखभस्म समान २ शुंठी कषाय से मर्दन कर १ से २ यव की गोलियां बनावें। रोग-प्रतिश्याय, कास गलशोथ, कंठशोथ, कफ ज्वर।

तरुण ज्वरारि रस—पारद, गंधक, वत्सनाभ, दंती बीज प्रत्येक १ भाग कुमारी स्वरस से मर्दन कर १ से २ यव की गोलियां बनावें। अनुपान शीतज जल। रोग-मलबंध युक्त ज्वर।

ज्वर मुरारि—हिंगुल, वत्सनाभ, त्रिकटु, टंकण, हरीतकी, शुंठी, प्रत्येक १ भाग, दन्तीबीज ८ भाग मिला आर्द्रक रस से २ यव की गोलियां बनायें। मात्रा-१ से २ गोली। रोग-मलबंध युक्त ज्वर।

स्वच्छन्द भैरव रसेन्द्र—वत्सनाभ, ताम्रभस्म समान २ मिला धतूर स्वरस से १०० भावना दे $\frac{१}{८}$ से आध यव की गोलियां बनावें। रोग सर्वज्वर।

पञ्चवक्तुरस—पारद, गंधक, टंकण, वत्सनाभ, मरिच समान २ मिला धतूर स्वरस से २ से ४ यव की गोलियां बनावें। रोग-श्लेष्माधिक ज्वर।

स्वच्छन्द भैरव—पारद, गंधक, वत्सनाभ प्रत्येक २, जातिफल १, पिप्पली ३॥ भाग मिला आर्द्रक रस से मर्दन कर १ यव की गोलियां बनावें। रोग-श्लेष्माधिक ज्वर, अतिसार, अजीर्ण युक्त ज्वर।

सूचिकाभरण रस—वत्सनाभ १६, पारद १ भाग मिला मर्दन कर कांच युक्त शराबों में रख संधि बन्धन कर ५ से ६ घंटे कोयलों की मंद अग्नि पर रखें ऊपर के शराव में लगे रस को लेलें। रोग-तीव्र ज्वरों की मूर्च्छा में मस्तक में छेदन कर, थोड़ा रक्त निकाल कर उसमें सुई की नोक के समान रस डालें

कल्पतरुरस—पारद, गंधक, वत्सनाभ, ताम्रभस्म प्रत्येक १ भाग। पांचों पित्तों से १-१ दिन

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भावना दें। निर्गुण्डी स्वरस से ७ दिन, आर्द्रक स्वरससे ३ दिन भावना दें। सर्षपाकार गोलियां बनावें। मात्रा १ से ३गोली। रोग-ज्वरों में गरम जल से देने से स्वेदक है।

वत्सनाभ तैल—१६ गुणा तैल में उबालकर बनावें रोग-शूल, शोथ। प्रभाव शूलहर है।

विषुतैल—वत्सनाभ २, दोनों हरिद्रा, अर्कक्षीर, करवीर मूल, करञ्ज बीज, तगर, कुष्ट, सप्तपर्ण, मञ्जिष्ठा, निर्गुण्डी, रक्तचंदन, वचा, मालती पत्र प्रत्येक १ भाग, तेल १६, गोमूत्र ६४ भाग मिला तेल बनावें। रोग कंडू आदि त्वग्रोग।

गुण—रस-मधुर, गुण-रूक्षतीक्ष्ण लघु, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-बातकफ हर।

प्रभाव—बहिः प्रयोग करने से वत्सनाभ स्थानिक संज्ञा वाहिनियों को आरम्भ में थोड़ा उत्तेजित कर फिर संज्ञा रहित कर देता है। यह पराश्रमी जीवाणु हर भी है। थोड़ी मात्रा में मुख द्वारा दिया जाय तो यह हृदय को बल देता है जिससे निर्बल और तीव्र नाड़ी बलवान और मन्द हो जाती है परन्तु यदि अधिक मात्रा में दिया जावे तो यह हृदय को निर्बल कर देता है जिससे नाड़ी की प्रति मिनट संख्या तथा शक्ति कम हो जाती है। साधारण मात्रा में यह श्वास स्थान को उत्तेजित करता है जिससे श्वास गहरा और तीव्र हो जाता है। अधिक मात्रा में देने से श्वास उथला और मन्द हो जाता है। इसके देने से स्वेद भी आता है। हृदय को मन्द करने तथा स्वेदक होने के कारण ज्वर की अवस्था में शरीर के बढ़े हुये तापमान को घटाता है। यह शरीर की संज्ञा वाहिनियों के शिरों को थोड़े काल के लिये उत्तेजित कर फिर मंद कर देता है जिससे शरीर के किसी भाग में शूल हो तो वह मिट जाती है।

उपयोग—आमवात, वातिक शूलों और त्वग्रोगों पर इसके तेल मले जाते हैं ज्वरों में वत्सनाभ के योग बहुत प्रयुक्त होते हैं। प्रतिश्याय, कास, श्वास, गलशोथ, कंठशोथ, कर्णशोथ युक्त श्लेष्मा ज्वरों, पार्श्व, कटि, पृष्ठ, संधि, मांस नाड़ी में शूल के साथ होने वाले वात ज्वरों तथा आमाशय, आंतों में शोथ, अजीर्ण अतिसार युक्त पित्त ज्वरों में इसके योग भिन्न भिन्न अनुपान से दिये जाते हैं।

विश्लेषण—इसकी विषैली मात्रा खाये जाने के कुछ मिनट बाद मुख, मलप्रणाली और आमाशय में दाह होती, वमन आती, त्वचा पर अति स्वेद आता तथा त्वचा की संज्ञा मंद हो जाती है। नाड़ी निर्बल, मन्द, विषम हो जाती, पुतली फैल जाती, श्वास कठिन हो जाता, रोगी अति निर्बल होकर मूर्छित हो जाता है, मूर्छा के बाद मृत्यु हो जाती है। रोगी की चेतना मृत्यु तक भी बनी रहती है। इसके लिये वमन दें। उत्तेजक औषधियां दें। पैरों और हाथों को गरम रखें, सारे शरीर को अच्छी तरह मलें स्ट्रिक्नीन, एट्रोपीन, डिजिटेलिस आदि के सूचीवेध दें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मेध्य द्रव्य ।

१-ज्योतिष्मती-नाम हिन्दी-मालकंगनी । Latin Celastrus Panioulatas.

प्राप्ति तथा वर्णन—पञ्जाब तथा उसके समीपस्थ पर्वतीय प्रान्तों में एक लताकार वृक्ष, पत्ते क्रमिक २ से ४ इंच लम्बे, डेढ़ से ३ इंच चौड़े नोकीले, अंडाकर और कोमल फूल, आधा इंच के पीले हरेसे रंग के, फल आध इंच व्यास का गोल, बीज आध इंच के भूरे काले से होते हैं। बीज तथा बीजों का तेल काम आते हैं।

विश्लेषण—बीजों में एक तेल होता है जो ज्योतिष्मती तैल (Oleum Nigrum) कहा जाता है। एक गोंद के सदृश तिक्त तत्व होता है।

योग—ज्योतिष्मती तैल-बहिः प्रयोग में उत्तेजक अन्तः प्रयोग १ से ४ बूंद।

ज्योतिष्मती बीज कषाय—(१६ गुणा जल में चौथाई) आधा से २ औंस।

ज्योतिष्मत्यादि तैल—ज्योतिष्मती बीज, गुञ्जाबीज, अश्वगन्धा मूल, लशुन, कौंचबीज, अकारकरभ समान २, चार गुने तेल में पकाकर तेल बनावें। रोग-क्लीबरोग में लिंग पर लेप करें, आमबात।

गुण—रस-कटु, तिक्त, गुण-तीक्ष्ण, वीर्य उष्ण, पाक-कटु, दोष-बात कफ हर।

प्रभाव तथा उपयोग—इसके बीज उष्ण, स्फोटक होते हैं अतः गहरी शोथ और शूल को हटाते हैं। अन्तः प्रयोग में सर्वाङ्ग के लिये विशेषतः नाड़ियों के लिये उत्तेजक होते हैं। गठिया आदि सन्धि शोथों पर इसके बीजों की पुलटिस बांधी जाती तथा ज्योतिष्मती बीज तैलको तिल तैल या वैसलीन में मिलाकर मलते हैं। क्लीबरोगमें प्रयुक्त होने वाले लिंग लेपोंमें ज्योतिष्मती बीज या उसका तैल उत्तेजक होने से डाला जाता है। मन्द बुद्धि पुरुषोंकी बुद्धिको उत्तेजक करने के लिये तैल को ८ भाग तिल तेल या सुगंधित वैसलीन में डालकर मस्तक और शिरपर मलते हैं। आमबात आदि सन्धि शोथों में देवदारु, गुडूची आदि के साथ बना इसका कषाय पिलाने से स्वेद आता है और शोथ उतरती है।

बेरिबेरि नामक रोग के लिये इसके तैलको १० से १५ बूंद तक दिन में २ चार बार बताशे में डालकर दें तो विशेष लाभ होता है इससे रोगी की निर्बल नाड़ियां उत्तेजित होतीं और उसके मूत्र की मात्रा भी बढ़ने से शोथ उतर जाती है। बुद्धिमान्द्य रोग में इसके तैल की १, २ बूंद या एक दो बीजों का चूर्ण बताशे या खांड में डालकर बच्चे को खिलाते हैं।

२--ब्राह्मीनाम हिन्दी—ब्राह्मी लैटिन-Herperestis monniera

प्राप्तितथा वर्णन—जलीय प्रदेशों में होती है। इसका कांड भूमि पर फैला रहता है, प्रत्येक गांठ पर नीचे मूल ऊपर फूल और पत्ते नि:

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कलते हैं। पत्ते का व्यास १ से २ इंच और वृक्काकार होता है। प्रत्येक गांठ से १ या २ पत्ते निकलते हैं। फूल २,३ छोटे, गहरे गुलाबी रंग के होते हैं इसके पंचांग को छाया में सुखा उपयोग में लाया जाता है।

विश्लेषण—इसमें दो Pesins एक क्षारीय तत्व के समान द्रव्य तथा एक विशेष तेल सा जो मद्यसार में घुल जाता है होता है। यह तेल सा उड़नशील द्रव्य इसका विशेष तत्व प्रतीत होता है इसी लिये ब्राह्मी पत्र या स्वरस ही अधिकतया उपयुक्त होते हैं।

योग ब्राह्मीचूर्ण—५ से १५ ग्रेन।

ब्राह्मीआसव—१० प्र० श० मद्यसार ५ भाग में १ भाग डालकर बनावें। मात्रा—आधा से १ चमचा।

ब्राह्मीघृत—ब्राह्मी स्वरस ४, घृत १, वचा, कुष्ठ शंखपुष्पी मिलित चौथाई भाग मिला घृत बनावें। मात्रा—१ से ४ चमचे। रोग—अपस्मार, उन्माद, योषापस्मार।

सारस्वतघृत—ब्राह्मीरस ६४, घृत १६, हरिद्रा, आमलकी, कुष्ठ, त्रिवृत्त, हरीतकी प्रत्येक १, पिप्पली विडंग, सैन्धव, शर्करा वचा प्रत्येक चौथाई मिला घृत बनावें। रोग—बुद्धिमान्द्य, स्मृतिमान्द्य, स्वरभंग, त्वग्रोग, अपस्मार, मात्रा—१ से ४ चमचे।

सारस्वतचूर्ण—कुष्ठ, अश्वगंधा, अजमोदा, दोनोजीरक, त्रिकटु, सैन्धव, शंखपुष्पी, पाठा प्रत्येक १, वचा ११ भाग मिला ब्राह्मीस्वरस से ३ भावना दे सुखा चूर्ण बनावें। मात्रा—५ से २० यव। रोग—स्मृतिमान्द्य, बुद्धिमांद्य अपस्मार, योषापस्मार।

सारस्वतारिष्ट—ब्राह्मी ८०, शतावरी, विदारी, हरीतकीत्वक, उशीर, प्रत्येक २०, आर्द्रक, शतपुष्पा प्रत्येक १०, जल, १००० भाग में चौथाई कषाय कर मधु ४०, शर्करा १००, धातकी २०, पिप्पली, लवंग, वचा, कुष्ठ, अश्वगंधा, गुडूची, एला, विडंग, सुवर्णपत्र, प्रत्येक १ भाग डाल आसव बनावें। मात्रा—२ से ८ ड्राम। रोग—अपस्मार, योषापस्मार बुद्धिमान्द्य।

ब्राह्मीपानक—(स्वरस में खांड डाल पानक बनावें) स्मृतिमांद्य। उपरोक्त आसव में पानक डालकर बनाना अधिक उपयुक्त है।

ब्राह्म्यादि चूर्ण—ब्राह्मी, मुण्डी, वचा, शुण्ठी, पिप्पली समान २ मिला चूर्ण बनावें। मात्रा-५ से १५ ग्रेन, रोग-स्वरभंग, अनुपान-मधु।

ब्राह्मी तैल—ब्राह्मीरस २, तिलतैल १ भाग मिला तैल बनावें फिर धान्यक, शैलेप, उशीर, जटामांसी, चन्दन, सुगंधबाला, मुस्ता प्रत्येक $\frac{१}{८०}$ बादाम तैल $\frac{१}{१६}$ भाग डाल कुछ दिन धूप में रख छान लें। रोग-स्मृति नैर्बल्य।

गुण—रस-तिक्त, गुण-लघु, वीर्यशीत, पाक-मधुर, दोष-त्रिदोषहर।

प्रभाव तथा उपयोग—आमाशय में अग्नि को दीप्त करती है। त्वचा के रक्त संचार को उत्तेजित करती है, अतः त्वच्य है। इसका विशेष प्रभाव मस्तिष्क पर होता है यह उत्तम मेध्य, स्मृति वर्धक द्रव्य है। वृक्कों को उत्तेजित करके मूत्र की मात्रा को भी बढ़ाती है। अपस्मार, उन्माद, स्मृतिमांद्य, योषापस्मार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आदि मानस रोगों में ब्राह्मी स्वरस का मधु के साथ या इसके योगों का कुछ काल सेवन करना चाहिये। हरीतकी तथा खरबूजे तरबूज़ आदि की गिरियों के साथ इसे कूण्डी में पीसकर भी पिलाया जाता है जिससे मलमूत्र आते रहते और मस्तिष्क ठीक रहता है। गर्मियों की ऋतु में इसके कुछ पत्तों को बादाम की सरदाई के साथ घोटकर पिला दिया जाता है। ब्राह्मी के देने से त्वचा पर होने वाले छिलकों वाले रोग हट जाते हैं, त्वचा स्वच्छ हो जाती है। स्वरभंग में घी में भुने हुये ब्राह्मी के पत्तों का चूर्ण मधु के साथ चटाने से स्वर ठीक हो जाती है।

३ शंखपुष्पी नाम-हिन्दी—शंखाहूली। लैटिन Evolvulus alsinoides.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र वर्षाऋतुमें होने वाला, बहुत शाखाओं वाला, १ फुट ऊंचा वार्षिक क्षुप, पत्ते छोटे, चौथाई इंच लम्बे, अंडाकार मूल पर संकुचित, श्वेत रेशम जैसे लोमों से ढके हुये, छोटे पत्रनाल वाले, फूल श्वेत, छोटे छोटे, फूल की हरी पत्तियों पर रेशमी लोम, फलियां $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{5}$ इंच व्यास वालीं। पंचांग काम आता है।

विश्लेषण—इसमें एक क्षारीय तत्व, एक Organic acid, fat, एक Saline substance होता है।

योग-शंखपुष्पी चूर्ण—१० से ३० यव।

शंखपुष्पीकिषाय—(१६ गुना जलमें चौथाई) १ से २ औंस।

शंखपुष्प्यादि चूर्ण—शंखपुष्पी, विडंग, शतावरी, वचा, अभया, कुष्ठ समान २ मिला चूर्ण बनावें। मात्रा १० से ३० यव।

रोग-मानस रोग।

शंखपुष्पी तैल—शंखपुष्पी, महानिम्ब, वासा, अर्जुन, प्रत्येक का कषाय ४, मस्तु, काञ्जिक, लाक्षा जल प्रत्येक ४, दाडिमत्वक्, सुरदारु, दोनों हरिद्रा, रसाञ्जन, त्रिफला, दोनों चंदन, उशीर, वालक, मधुयष्ठी, मुस्ता, शैवाल, शेफालिका, श्यामा, रक्तोत्पल, सम्मिलित १ भाग मिला तेल बनावें। फिर गंधद्रव्य डालें। रोग-बालकों के त्वग्रोग; कृशता। भै० र०

गुण—रस-तिक्त, गुण-तीक्ष्ण, पाक-कटु, वीर्य-उष्ण, दोष-कफ वातहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह मेध्य, रसायन, त्वच्य है। ब्राह्मी के समान ही मानस रोगों तथा त्वग्रोगों में इसका उपयोग होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्वच्य द्रव्य ।

१—करञ्जनाम हिन्दी—करञ्जुआ। लैटिन Pongamia Glabra.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र होने वाली, यह बेल की तरह, मध्यमाकार, कंटीली झाड़ी है। पत्ता ६ इंच से ८ इंच लम्बा, ६ से ८ पत्तों में फटा, पत्त ३ से ८ इंच लम्बा, पत्त पर छोटी २ पत्तियों की ६ से १० जोड़ी, मंजरी पीले से फूलों की, फलियां २ से ३ इंच लम्बीं, १॥ से २ इंच चौड़ी और चारों ओर तेज कांटों से घिरी होती है। १ फली में २ से ३ तक श्वेत भूरे रंगके बीज होते हैं। इस झाड़ी के अनेक भेद होते हैं। बीजों की मज्जा तथा पत्र काम आते हैं।

विश्लेषण—इसके बीजों में एक स्थिर तैल २७% होता है और त्वक् में एक क्षारीय तत्व होता है।

योग करञ्जबीज चूर्ण—१० से ३० यव।

करञ्जमूल त्वक् चूर्ण—१५ से ३० ग्रेन।

पृथ्वीसारतैल—चित्रक, निर्गुण्डी, करवीर मूल, नाराचबीज (सिंथिन) विष प्रत्येक १ भागका काञ्जिकसे मर्दनकर करञ्जबीज तेल ८ भाग में डाल काञ्जिक १ भाग डाल धूप में तब तक रखें जब तक जल भाग उड़ जाय, छान लें। रोग—त्वग्रोग, व्रण।

करञ्जादि घृत—करंजपत्र, करंजबीज, मालतीपत्र, पटोज, निम्बपत्र, दोनों हरिद्रा, मधुयष्ठी, कटुकी, मंजिष्ठा, चंदन, उशीर, उत्पल, दोनों सारिवा, त्रिवृत्त, मधूच्छिष्ट प्रत्येक १, घृत, ६४ भाग मिला घृत बनावें। रोग—दुष्ट व्रण नाड़ी व्रण, उपदंश व्रण पर लगावें।

करञ्जपत्रादि फाण्ट—करंज, निम्ब, निर्गुण्डी, पत्रोंको समान मिला चूर्णित कर १० गुणा उबलते जल में डाल फाँट बनालें। व्रण तथा पामा आदि त्वग्रोगों को धोने के लिये।

करंजबीजादिलेप—करंजबीज, चक्रमर्दबीज, कुष्ठ समान २ मिला थोड़े घृत में मिलावे।
रोग—पामा व्रण, स्फोट, दद्रु।

गुण—रस-तिक्त, गुण-तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-कफ वात हर।

प्रभावतथा उपयोग—करंजबीज, तथा करजबीजों में से निकला तैल उत्तम त्वच्य है। त्वग्रोगों तथा व्रणों के जीवाणुओं को नष्ट करते हैं। करंजबीज चूर्ण मुखद्वारा देनेसे कुष्टहर तथा विषमज्वर हर है।

कंडू, कच्छू, स्फोट, पामा, छिलके वाले त्वग् रोगों तथा व्रणों पर इसके तेल, घृत, लेप लगाने से शीघ्र लाभ होता है। अनेक त्वग्रोग हर तेलों और घृतों में इसका प्रयोग होता और मुख द्वारा भी दिया जाता है विषमज्वर रोगी को १० से २० ग्रेन की मात्रा में थोड़े मरिच चूर्ण के साथ इसे दिन में दो तीन बार दे दिया जाय तो उसके ज्वरके वेग रुक जाते

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हैं। २ से १० ग्रेन की मात्रा में इसे काली खांसी के लिये भी लाभ दायक कहा जाता है पिप्पली और तुलसी पत्र के साथ मिलाकर बनाई गोलियां विषमज्वर में देनी चाहिये। या इसके चूर्ण में हरताल भस्म स्फटिकी को खील पिप्पली प्रत्येक आधाभाग मिला चूर्ण या गोली के रूप में तुलसी फाण्ड के अनुपान से दे सकते हैं।

२-*चोपचीनी-नाम हिन्दी*—चोपचीनी इंगलिश China root. लैटिन Smilax chinesis

प्राप्तितथा वर्णन—यह चीन जापान से आती है और सब बाजारों मे मिलती है। बंगाल में भी ऐसे पौधे होते हैं जिनको बड़ी चोपचीनी कहते हैं। यह चढ़ने वाली झाड़ी होती है जिसकी शाखाएं चिकनी पतली और उप शाखाओं से रहित होती हैं। पत्ते क्रमिक होते हैं, एक पत्ते में तीन मध्य नाड़ियां होती हैं पत्ते की डंठल की जड़ में छोटे डंठल पर लगी हुई १० से १२ डंडियों पर छोटे २ श्वेत फूल लगते हैं इसकी मूल में गांठें होती हैं। बाजार में जो मूल भारी कुछ गुलाबी रंग की और बिना घुन लगी बिना गांठ की हों वह उत्तम समझी जाती है।

विश्लेषण-एक Glucoside होता है इसके अतिरिक्त इसमें Fat, sugar, Gnm, starch होते हैं।

योग चोपचीनी चूर्ण—१० से ६० यव, चोपचीनी कषाय १४ औंस।

• *चोपचनीपाक*—चोपचीनी ४८, त्रिकटु, पिप्पलीमूल, त्वक, अकारकरभ, लवंग प्रत्येक १, शर्करा इन सबको समान ले पानक बना चूर्ण डाल थोड़ा घृत मधु मिला दें। मात्रा—आधा से १ तोला, रोग—फिरंग त्वग्रोग, भगन्दर, नैर्बल्य, वात रोग।

गुण—रस-तिक्त मधुर, गुण-गुरु, वीर्य-ऊष्ण, पाक-कटु, दोष-वातहर।

प्रभावतथा उपयागे—चोपचीनी रक्त विकारों को शान्त करती विशेषतः फिरंग हर है। फिरंग के व्रण आदि अनेक उपद्रवों के लिये सारिवा के समान चोपचीनी का प्रयोग किया जाता है। फिरंगरोग, आमवात, सन्धिशूल, और वातिक निर्वलताओं में चोपचीनी तथा कुछ त्वक और बड़ी इलायची डाल कर उबाला हुआ दूध पिलाने से लाभ होता है। यह चहरे और त्वचा के रंग को भी स्वस्छ करती है। उष्ण तीक्ष्ण द्रव्य इसके सेवन काल में अपथ्य है।

३ *स्वर्णक्षीरी नाम-हिन्दी*—सत्यानासी, पीला धतूरा। लैटिन Argemone mexicana.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र मिलता है। सीधा, कंटीला, २ से ३ फुट ऊंचा, वार्षिक क्षुप है। इसके प्रत्येक अंग से पीला सा रस निकलता प्रत्येक अंग पर काँटे होते हैं। पत्र ६ से ७ इंच लम्बे, तने से आसक्त रहते हैं, वे झालरदार, कई पत्तो में फटे हुये और किनारे पर कांटेदार होते हैं, फूल की रंगीन पत्तियां पीली संख्या में चार होती हैं, फलियां पौन से १॥ इंच लम्बी, कांटेवाली होती हैं। इनमें एक ही कोष्ठ होता है जिसमें छोटे २ गोल, काले बीज भरे होते हैं। स्वर्णक्षीरी की जड़ को

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चोक कहते हैं। इसके स्वरस, बीज, मूल काम आते हैं।

विश्लेषण—इसके पत्ते तथा फलियों में (Morphine) के समान गुण एक क्षारीय तत्व होता है, इसके बीजों में एक स्थिर तेल ३६% होता है।

योग-स्वर्णक्षीरी मूलचूर्ण—५ से २० ग्रेन।

स्वर्णक्षीरी रसक्रिया—(रस को गाढ़ा कर बनावें) मात्रा १ से ५ यव।

स्वर्णक्षीरी घृत—स्वरस को ४ गुना घृत में डालकर बनावें। मात्रा १ से ४ चमचे। रोग-फिरंगव्रण।

स्वर्णक्षीरी स्वरस तैल—स्वर्णक्षीरी स्वरस १, तैल १, तुत्थ $\frac{1}{80}$ भाग मिला तेल बनावें। तुत्थ चूर्ण थोड़ा २ करके मिलावें। इस तेल में $\frac{1}{5}$ शुद्ध मधूच्छिष्ट डालकर मरहम भी बना सकते हैं। रोग-व्रण, दुष्टव्रण, क्लीवरोग।

स्वर्णक्षीरी अंजन—स्वर्णक्षीरी स्वरस ४, घृत १ भाग मिला अग्नि पर रखकर घृत बनावें, फिर उसमें भीमसेनी कर्पूर $\frac{1}{20}$ भाग मिला दें और श्वेताञ्जन $\frac{1}{10}$ भाग कांसी के पात्र में मिला रगड़ कर लेप सा बनावें।
रोग-नेत्ररोग।

स्वर्णक्षीरी आसव—स्वर्णक्षीरी स्वरस ५, मिश्री १॥ सेर, मुनक्का, अनन्तमूल- उशवा, चोबचीनी, बकुलत्वक्, धातकीपुष्प प्रत्येक २ छटांक मिला आसव बनावें। मात्रा-१ से ४ ड्राम। रोग-त्वग्रोग, फिरंग रोग।

स्वर्णक्षीरी गुटिका—पुराने गुड़ को स्वर्णक्षीरी स्वरस की ७ भावना देकर ४-४ यव की गोलियां बनावें। मात्रा-१ गोली दूध से रोग-फिरंग जन्य त्वग्रोग।

स्वर्णक्षीरी बीज तैल—(बीजों को पीसकर निकाला जाता है) मात्रा ५ से ३० बूँद।

गुण—रस-तिक्त, गुण-तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-पित्तकफहर।

प्रभावतथा उपयोग—स्वर्णक्षीरी स्वरस, मूल, बीज तथा बीजों का तेल बहिः तथा अन्तः प्रयोग में त्वच्य, कुष्टहर, फिरंगहर होता है। बीजों का तेल और इसका मूल रेचक और कुछ वामक हैं। फिरंग रोग के स्फोटों व्रणों तथा अन्य दुष्ट व्रणों पर स्वर्णक्षीरी स्वरस तैल या मरहम बड़े लाभदायक हैं। भिन्न २ त्वग्रोगों, स्फोटो तथा श्वित्र रोग पर बाकुची बीज के तेल के साथ इसके बीजों का तेल मिलाकर लगाने से शीघ्र लाभ होता है। विद्रधि के दारण के लिये स्वर्णक्षीरी मूल का लेप करते हैं या उसे आटे में मिला पुलटिस बना बांधते हैं। चोक, देशी साबुन और गुड़ की वर्ति बना लाहोर सोर पर पीसकर लगायें। नेत्र की कंडू, कुकेर आदि अनेक रोग इसके अंजन और लेप लगाने से अच्छे हो जाते हैं।

फिरंग तथा कुष्टरोगों में इसके मूल चूर्ण की १५ ग्रेन की मात्रा प्रातः दूध के साथ देने से विरेचन होते और रक्त शुद्ध हो जाता है। इसकी उपरोक्त गुटिका, आसव, घृत, रसक्रिया आदि इन रोगों के लिये बड़े लाभ-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दायक हैं। इसके स्वरस से अनेक भावनायें देकर सोमल को ऊर्ध्वपातित करें तो वह इन रोगों के लिये बड़ा लाभदायक हो जाता है। फिरंग तथा कुष्ट रोगों में इसके बीजों के तेल की ५ बूँद बताशे या खांड़ में कुछ दिन तक दी जाती है। इस तेल की १० से ३० बूँद कभी २ देकर विरेचन दिया जाय तो इन रोगों में विशेष लाभ होता है।

४ *वाकुची नाम हिन्दी*—बावची। इंग्लिश Babchi seeds लैटिन Psoralea Corylifolia

प्राप्ति तथा वर्णन—बंगाल में विशेषतः और भारत में सर्वत्र होने वाला एक से तीन फुट ऊंचा वार्षिक क्षुप है। रक्षा करने से साल भर भी रह सकता है। तब यह कुछ ऊंचा होजाता है। पत्र गोलाकार, दन्तुर, एक से ३ इंच लम्बे, दोनों पृष्ठों पर काले दागों वाले, पुष्प लम्बे, डंठल के शिरों पर गुच्छों में लगते हैं, इनकी रंगीन पत्तियां पीली, बीज छोटे २, काले, गोल और विशेष गंध से युक्त होते हैं। बीज काम आते हैं।

विश्लेषण—बीजों में १५ से २०./' तक लाल भूरा स्थिर तैल होता है जो ईथर में घुलता है।

योग-वाकुची चूर्ण—१० से ६० यव।

वाकुची आसव—५ गुना (६० %) Alchonal में बनायें। मात्रा-आधे से एक ड्राम।

वाकुची रसक्रिया—मद्यसार (६० %) में बनायें। मात्रा २ से ८ ग्रेन। रोग-श्वित्र।

वाकुची तैल-दबाकर पातालयंत्र अथवा ईथर द्वारा निकालते हैं।

सोमराजी तैल—वाकुची, दोनों हरिद्रा, सर्षप, आरग्वध पत्र, कुष्ठ, करंजबीज, चक्रमर्द-बीज समान २ मिलित १, तेल ४, जल १६ भाग मिला तेल बनावें। रोग-दुष्टव्रण, नाड़ी व्रण, वातरक्त, कंडू, कच्छू, दद्रु, पामा, व्यंग, पिडिका, स्फोट आदि त्वग्रोग।

सोमराजीघृत—वाकुची ४, खदिरसार १, त्रिफला, पटोलमूल, दुरालभा, कटुकी, त्रायमाणा प्रत्येक चौथाई, गुग्गुल २, घृत ३२ भाग मिला घृत बनावें। मात्रा—१ से ४ ड्राम। रोग-श्वित्र तथा त्वग्रोग।

वाकुच्यादिलेप—वाकुची की मद्यसार द्वारा प्राप्त रसक्रिया १ भाग और शालमुग्र तैल १ सुगंधित वैसलीन २ भाग मिला कर बनावें। रोग—श्वित्र। इसमें १ भाग स्वर्णक्षीरी तेल भी मिला सकते हैं।

वाकुच्यादिवर्ति—वाकुची बीज चूर्ण १, कासीस आधा, हरिताल चौथाई भाग मिला गो पित्त, भृंगराज स्वरस, गो मूत्र किसी से मर्दन कर बर्तियां बनावें। रोग—श्वित्र पर लेप करें। (इसमें चित्रक का कुछ अंश भी मिला सकते हैं)।

गुण—रस-तिक्त मधुर, गुण-गुरुरूक्ष, वीर्य-उष्ण पाक- कटु दोष-कफ पित्तहर।

प्रभावतथा उपयोग—बाकुची त्वच्य है विशेषतः श्वित्रहर है। श्वित्र में इसका आधा ड्राम चूर्ण या रस क्रिया की गोली या इसका घृत निरन्तर कुछ मास तक देना चाहिये। रोग बहुत पुराना न हो तो इससे अवश्य लाभ हो

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जाता है। बाकुच्यादि लेप, वर्ति या बाकुची चित्रक चूर्ण का दिन में १, २ बार लेप करना चाहिये। इनके लगाने से श्वेत दाग धीरे २ काले धब्बों से भर जाते हैं जिससे दाग कुछ काल बाद रंग में त्वचा के समान हो जाते हैं अन्य त्वग्रोगों में भी इसके योगों के खाने तथा लगाने से बड़ा लाभ होता है। बाकुची दारु हरिद्रा, और चक्रमर्द बीज का बना हुआ चूर्ण लवण रहित भोजनके साथ देना चाहिये

५--चक्रमर्द *नामहिन्दी*—पंवाड़। लैटिन Cassia, Tora.

प्राप्तितथा वर्णन—सर्वत्रप्राप्त होता है। ३-४ फुट ऊंचा, वार्षिक क्षुप है। १-२ फुट लम्बे पत्ते पर ८-१२ पत्तियों की जोड़ियां लगती हैं। प्रत्येक पत्ती आगे से गोल और मूल पर तंग होती है, रातको बन्द हो जाती है, फूलकी रंगीन पत्तियां चमकीली, पीली, फलियां लम्बी, पतली, फली में ५० या अधिक बीज होते हैं। यह लम्बे, रंग में भूरे, कठोर होते हैं। बीज, पत्र काम आते हैं।

विश्लेषण—पत्तों तथा बीजों में पीले रंग का एक Glucoside होता है जो जलमें अविलेय और मद्यसार में विलेय है। यह स्वभाव में Chry Sophnic acid से मिलता है।

योग एडगजादि लेप—चक्रमर्द बीज, कुष्ठ, सैन्धव, सर्षप, विडंग समान २ सिरके से पीस वर्ति बनालें। सिरके से लेप दें। रोग—दद्रु, सिध्म, मंडल कुष्ट, कंडू।

गुण—रस-मधुर, गुण-लघुरूक्ष, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-वातकफहर।

प्रभावतथा उपयोग—चक्रमर्द के बीज दद्रुआदि के कृमियों के लिये घातक हैं अतः यह उत्तम दद्रुहर है और त्वच्य है। दद्रु, पामा, कंडू, सिध्म मंडल, कुष्ट आदि त्वग्रोगों में इसके बीज चूर्ण को सिरके, निम्बूरस, कांजिक या गोमूत्र से पीसकर लेप दिया जायतो खुजली शीघ्र हट जाती है। यदि बीजों को ३-४ दिन स्नुहीक्षीर में डुबो कर, सुखा, फिर सिरके में पीस कर बर्ति बनाकर दद्रु आदि पर लगाया जावे तो अधिक लाभ होता है। एडगजादि लेप भी बड़ा उपयोगी है अनेक त्वग्रोग हर तैलों में चक्रमर्द डाला जाता है।

६-हरिद्रा *नाम-हिन्दी*—हल्दी। इंग्लिश Turmuric लैटिन Curcuma longa.

प्राप्ति तथा वर्णन--सर्वत्र बोई जाती है। यह एक वार्षिक क्षुप है। मुख्य मूल लम्बा, बड़ा, गोल तथा उपमूल नलकाकार, अंदर से गूढे पीले होते हैं, पत्र बड़ा भालाकार, १ से डेढ़ फुट लम्बा, ४ से ८ इंच चौड़ा, पुष्पदंड आधा फुट लम्बा, पत्र नाल से ढका रहता है। फूल की रंगीन पत्तियां फीकी पीली होती हैं। मूल काम आती है।

विश्लेषण—इसमें एक अस्थिर तेल १ % होता है। एक स्थिर तेल भी होता है। एक विशेष पीला तत्व होता है जो Curcumin कहाता है। एक Resin भी होता है।

योग-हरिद्रा खण्ड—हरिद्रा ८, घृत ६, क्षीर ६४, खाण्ड ५० भाग मिट्टी के वर्तन में पकावें। पाक होने पर त्रिकटु, चतुर्जातक, विडंग, त्रिवृत, त्रिफला, मुस्ता, लोहभस्म प्रत्येक १

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भाग डाल अवलेह बनावें। मात्रा-आधा से १ तोला गरम जल से। रोग-कंडू, बिस्फोट, शीतपित्त, उदर्द, कोठ।

निशालोह—दोनों हरिद्रा, त्रिफला, कटुकी, लोहभस्म समान २ चूर्ण बनायें। मात्रा-५ से २० यव। रोग-पांडु, कामला।

हरिद्रादि तैल—दोनों हरिद्रा, मधुयष्ठी, कालीयक, कुचन्दन, पुण्डरीक, मंजिष्ठा, नीलोत्पल, पद्मकेशर, कुंकुम, कपित्थ, तिन्दुक, प्लक्ष, वट इनके पत्ते समान २ मिलित १, तेल ४, दूध १६, भाग मिला तेल बनावें। रोग-मुख व्यङ्ग, नीलक, तिल मुख दूषिका।

द्विहरिद्रादि तैल-दोनों हरिद्रा, किराततिक्ता त्रिफला, निम्ब, चन्दन, समान २ मिलित १, तेल ४, जल १६ भाग तेल बनावें। रोग-शिरः स्फोट, पामा, स्फोट।

निशादि तैल—हरिद्रा, गन्धक प्रत्येक १, तेल ८, धत्तूररस ३२ भाग मिला तेल बनायें। रोग-कर्णव्रण, कर्णशोथ, कर्णनाड़ी व्रण।

गुण—रस-कटु तिक्त, गुण-रूक्ष, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-त्रिदोष हर।

प्रभावतथा उपयोग—वहिः प्रयोग में यह शोथहर जीवाणुहर, और त्वच्य है। अन्तः प्रयोगों में दीपक, आध्मानहर, यकृच्छोधक, रक्तशोधक है। हरिद्रा त्वचा की शोथों को हटाती है। आघातजन्यशोथ, अंगविवर्त से उत्पन्न मचकोड़ आदि में हरिद्रा चूर्ण में थोड़ासा चूना मिला जल डाल गरम करके कपड़े पर लगा कर गरम २ बांध दिया जाता है। क्षत तथा सद्योव्रण की शोथ पर हरिद्रा चूर्ण में थोड़ा घृत मिला गरम कर स्वच्छ वस्त्र पर लगाकर बांध दिया जाता है। पीड़ा हो तो उसे शांत करने के लिये इसमें लशुन स्वरस भी मिला देते हैं। नेत्र शोथ को हटाने के लिये २० गुणा जलमें बने हरिद्रा के हलके गरम कषाय में भीगे हुये रुई के फोये या स्वच्छ वस्त्र से सेक दिया जाता है। कर्णशूल में हरिद्रा को तेल में गरम कर उस तेलकी या उपरोक्त निशादि तेल की कुछ बूंदें डालने से आराम पड़ जाता है। नासा शोथ या प्रतिश्याय में जलते कोयलों पर हरिद्रा रख कर नाशा द्वारा धूमलिया जाता है जिससे नाकसे बहुत सा द्रव निकल कर शोथ हट जाती है। इसके पीछे कुछ घंटों तक कोई द्रव नहीं पीना चाहिये। गुद शोथ पर हरिद्रा चूर्ण और आटे में लशुन स्वरस और अलसी का तैल मिलाकर पुलटिस बनाकर गुदा पर बांध देते हैं अर्शस् के अंकुरों पर हरिद्राका धुंवां देने से शोथ हटती है। त्वचा और सिर पर होने वाले स्फोट तथा कंडू युक्त त्वग्रोगोंपर हरिद्रा को पीस कर लगाने या द्विहरिद्रादि तैल लगाते हैं। मुख पर के मुहांसे, तिल, व्यंगादि रोगों को हटाने के लिये हरिद्रादितेल मलना चाहिये। चिपकी हुई जलौका को हटाने के लिये भी हरिद्रा चूर्ण छिड़का जाता है जिससे वह हटजाती और उससे हुआ व्रणभी ठीक हो जाता है।

रक्तशोधक होने से त्वग्रोगों में हरिद्रा का अन्तः प्रयोग लाभ दायक है। स्फोट कोठ कंडू युक्त त्वग्रोगों में हरिद्राखंड बड़ा उपयोगी है। कहा जाता है कि मसूरिका के दिनों

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में हरिद्राका विशेष उपयोग करते रहनेसे इस रोग का भय नहीं रहता। हरिद्रा के यकृच्छोधक होने के कारण पांडु कामला में निशालोह के रूपमें इसका उपयोग होता है। सम्भवतः यकृत् के द्वारा ही मधुमेह रोग पर भी इसका प्रभाव होता है। त्रिफला के समान हरिद्राका भी सेवन करने से इस रोग में विशेष लाभ होता है। हरिद्रा का सेवन करने वालों में यह रोग अपेक्षया न्यून देखा जाता है।

७-*दारुहारिद्रा-नामहिन्दी*—दारुहल्दी, इंग्लिश Berberis लैटिन Berberis Aristata.

प्राप्तितथावर्णन—हिमालय पर भूटान से पश्चिम की ओर टिहरी, गढ़वाल, शिमला के पहाड़ों तथा नीलगिरि की पर्वत श्रेणियों में होता है। सीधा कांटेदार, १०-१२ फुट ऊंचा, छोटा वृक्ष होता है। पत्र पत्रनाल रहित, आगे गोल मूल में संकुचित चौड़े, मालाकार, २-३ इञ्च लम्बे, पूर्णधार या कुछ २ दन्तुर होते हैं, फूल गूढ़े, सुनहरी; पीले, पत्तों से आगे निकले रहते हैं, मूल पीले रंग की काष्ठमय होती है। इसका काष्ठ तथा मूल काम आती है।

विश्लेषण—इसके मूल तथा काष्ठ में Berberine नामक एक पीला क्षारीय तत्व होता है जो Acids के साथ मिलकर Solts बनाता है।

योग-*दारुहरिद्रा फाण्ट*—१२ गुना जल में बनावें मात्रा-१-२ औंस।

दारुहरिद्रा आसव—(१० गुना मद्यसार (६० %) में १-२ ड्राम।

दारुहरिद्रा रसक्रिया—काष्ठ के फाण्ट या कषाय को छान समान दूध मिला गाढ़ा कर लें, या जो रसौत बाजार में मिलती है उससे जल में घोल द्रव भाग को छानकर अग्नि पर गाढ़ा कर लें। मात्रा-२ से ८ यव।

दार्व्यादि रसक्रिया—दारवी पटोल, मधुयष्ठी, निम्बत्वक्, पद्मक, नीलोत्पल, पुण्डरीक सम-भाग मिलित एक भाग, जल ४ भाग, चौथाई कषाय कर, छान, रसक्रिया कर, इसका चौथाई भाग मधु मिलावें।

रोग-नेत्ररोग, दाह।

रसाञ्जन नेत्रलेप या रसाञ्जन नेत्रबिन्दु—शुद्ध रसाञ्जन १, अहिफेन, सैन्धव, स्फटिकी प्रत्येक $\frac{1}{8}$ भाग लेप बनावें। पलकों को उलटा कर लेप करें। रोग-अभिष्यन्द, नेत्र शोथ नेत्र कंडू, २ औंस गुलाब जल में रसाञ्जन ६ मा० अहिफेन, कर्पूर, स्फटिकी १-१ मा०, तुत्थ ४ र०, मिला छानकर नेत्रबिंदु बनायें।

रसाञ्जनादि प्रलेप—रसाञ्जन, दोनों हरिद्रा, निम्बपत्र, मञ्जिष्ठा, त्रिवृत, तेजोवती, दन्ती बीज समभाग चूर्णकर इसमें थोड़ासा घृत या वेजलीन मिलायें। रोग-नाड़ी, व्रण दुष्टव्रण।

रसांजनादि प्रलेप—निम्ब बीजों को समान तेल में पका उसी में अच्छी तरह मर्दन कर बीजों के समान रसांजन मिला थोड़ी तुत्थ मिला मरहम बनायें। रोग-अर्शस के अंकुरों को सुखाने के लिये लेप दें।

दार्व्यादितैल—दार्वी कषाय, दशमूल (मिलित) कषाय, मधुयष्ठी कषाय, कदलीस्वरस

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तेल प्रत्येक-१, कुष्ठ, वचा, शिग्रु, शतपुष्पा, रसाञ्जन, देवदारु, यवक्षार, सर्जक्षार, सैन्धव और विड़ समभाग मिश्रित चौथाई भाग मिला तेल बनायें। रोग-कर्ण-शोथ, शूल, स्राव, स्फोट, कण्डू और वाधिर्य।

दार्व्यादि कषाय—दार्वी, रसाञ्जन, वासा, मुस्ता, किराततिक्ता, विल्व, भल्लातक प्रत्येक एक भाग मिला चतुर्थांश कषाय करें। मात्रा-आधा--२ औंस। मधु डाल कर दें। रोग--प्रदर।

रसाञ्जनादि चूर्ण—रसाञ्जन, अतिविषा, कुटज त्वक्, कुटज बीज, शुण्ठी, धातकी समभाग मिलाकर बनावें। मात्रा--१०--३० यव। रोग--पित्त ग्रहणी रोग, प्रवाहिका, रक्तार्श, रक्त-पित्त, अतिसार, विषम ज्वर।

गुण—रस-कटुतिक्त, गुण-रुक्ष, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-पित्त कफहर।

प्रभाव तथा उपयोग—दारुहरिद्रा वहिःप्रयोग में व्रण हर, स्फोटहर, शोथहर, तथा त्वच्य है। अन्तः प्रयोग में विषमज्वरहर, यकृत प्लीहा शोधक, रक्तशोधक और रक्तपित्तहर है।

नेत्रशोथ, स्राव, स्फोट आदि उपद्रवों में पलकों के बाहर तथा अन्दर रसाञ्जन के लेप लगाये जाते हैं। कर्णव्रणों, स्फोटों के लिए इसके तेल डाले जाते तथा मुख व्रणों और स्फोटों के लिए रसाञ्जन का जल मिला, मधु मिला गण्डूष दिये जाते हैं। त्वचा के स्फोट, व्रण, पिडिका आदि पर रसाञ्जन को घिस कर लगाएँ तो वे सूख जाते हैं। प्रायः त्वग्रोग हर तेलों में दारुहरिद्रा का प्रयोग होता है। दुष्टव्रण तथा नाड़ी व्रण जो साधारण चिकित्सा से ठीक नहीं होते, रसाञ्जनके लगाने से अच्छे होने लगते हैं। विषमज्वर में इसका फाण्ट या आसव आदि दिन में तीन चार बार दें तो क्वीनीन के समान ही लाभ होता है। यकृत और प्लीहा बढ़े हुए हों तो वे भी ठीक हो जाते हैं। कामला में दारुहरिद्रा कषाय या इसका चूर्ण देने से आराम हो जाता है। रक्तार्श के लिए बहुत सा मूली स्वरस खपाकर बनाई हुई रसाञ्जन और उसारेरेवन्द की गोलियां या रसाञ्जन में आधा या तिहाई भाग निम्बबीज मिलाकर बनाई हुई गोलियां दी जाती हैं और रसाञ्जन का मूली स्वरस आदि के साथ बनाया लेप लगाया जाता है केवल रसाञ्जन की गोलियां भी रक्तरोधक तथा रक्तशोधक हैं। रक्तप्रदर में दारुहरिद्रा के उपरोक्त योग बहुत बर्ते जाते हैं। रक्तातिसार या प्रवाहिका के लिए भी रसाञ्जन या रसाञ्जनादि चूर्ण बड़ा उपयोगी है। १०० भाग जल में रसाञ्जन स्फटिकी खदिरसार १०-१० भाग, तुत्थ १ भाग मिला छान पूयमेह में वस्ति दें।

शाल-नाम-हिन्दी—साल। इंग्लिश Sal tree लैटिन Shorea robusta.

प्राप्ति तथा वर्णन—हिमालय के समीपस्थ प्रदेशों में आसाम से सतलुज़ तक मिलता है। एक बड़ा वृक्ष है, सब पत्ते कभी नहीं गिरते, पत्ते ६-१० इंच लम्बे, ४-६ इंच चौड़े, पत्रनाल $\frac{3}{4}$-१ इंच लम्बा, फूल बड़ी बड़ी डालियों के शिरों पर गुच्छों में लगते हैं, रंगीन पत्तियां फीकी पीली, फल--आध इंच व्यास, अंडाकार गूदेदार। वृक्ष या काण्डपर काटने से श्वेत,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निर्गन्ध, निःस्वाद, अपारदर्शक निर्यास निकलता है जिसे 'राल' कहते हैं। यह तेलों में घुल जाती है। निर्यास काम आता है।

विश्लेषण-वृक्ष की त्वक् में Tannin मुख्यतः होता है। त्वक् को उबाल कर खदिरसार के समान ही एक ग्राही रसक्रिया बना सकते हैं।

योग—*रालप्रलेप*—१ भाग रालको १ भाग तिल तेल या नीम या निर्गुंणी से बनाये हुए तेल में मर्दनकर, खदिरसार-आधा, तुत्थ--चालीसवाँ भाग मिला अनेक बार जल से धोये। रोग-जीर्ण व्रण, दुष्ट व्रण [इसमें मुर्दा संग $\frac{1}{4}$ भाग भी मिला सकते हैं]

रालप्रलेप—नारियल के तेल में मधूच्छिष्ट डाल कर बनाई हुई बैसलीन--२ भाग में राल--१ भाग मिलाकर बनावें रोग--व्रण, दग्ध-व्रण।

गुण—रस—मधुर कषाय, गुण-स्निग्ध, वीर्य—शीत, पाक—कटु, दोष—वातपित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—राल ग्राही तथा उत्तम व्रण हर द्रव्य है। जीर्णव्रण, दुष्टव्रण के लिये राल प्रलेप बहुत लाभदायक हैं। इनमें तुत्थ के स्थान पर सिन्दूर, मुद्दारश्रृङ्ग रसकपूर कपूर आदि में से कोई द्रव्य भी मिला सकते हैं। रोगी गृहों की वायु शुद्ध करने के लिये जलते कोयलों पर राल डाल कर उसका धूम दिया जाता है। कभी कभी राल का अन्तः प्रयोग भी होता है। प्रवाहिका के लिये मधु के साथ २० यव, रात दिनमें दो तीन बार देने से आराम मालूम होता है। करीब रोग की निर्बलता हटाने के लिये दूध के साथ राल ८० ग्रेन प्रतिदिन प्रातः पिलाई जाती है।

सारिवा नाम – *हिन्दी*—अनन्तमूल, कालीसर, गोरीशर, हिन्दी सालसा। इंग्लिश Indian sarsaporilla लैटिन Hemi desmus Indicus.

प्राप्ति तथा वर्णन—उत्तरीय भारत तथा बंगाल में ऊपर चढ़ने वाली, पतली, बेल, पत्ते आमने सामने निम्न, पृष्ट लोमश, आकार में कुछ भिन्न २ होते हैं, कभी अन्डाकृति कभी लम्बे भी होते हैं प्रायः ३,४ इंच लम्बे और १ इंच चौड़े होते हैं, फूल छोटे, बाहर की तरफ हरे, अन्दर कुछ लाल, फलियां बारीक, लम्बी, आमने सामने तथा कुछ कपास युक्त होतीहै; बीज $\frac{1}{5}$ इंच लम्बे, मूल $\frac{1}{4}$-$\frac{3}{4}$ इञ्च मोटी, लम्बी, सुगंधित, कुछ मीठी कड़वी होती है। बाजार में गट्ठों में बिकती है यही उपयुक्त होती है। श्वेत और कृष्ण दो प्रकार की होती है।

विश्लेषण—इसमें एक स्फटिकीय तत्व होता है जिसे Hemedesmin कहते हैं। दूसरा एक तत्व जिसके कारण इसकी विशेष गंध और स्वाद है coumarin कहाता है।

योग—*सारिवाफाण्ट*—(८ गुणा जल में) १-४ औंस।

सारिवादिपानक--सारिवा=१, मञ्जिष्ठा=$\frac{1}{2}$ भाग का फाण्ट या कषाय बना द्विगुण मिश्री मिला पानक बनायें। *मात्रा*—२--८ ड्राम। *रोग*—रक्त बिकार, फिरंगव्रण।

सारिवादि अवलेह-सारिवा-१००, जल २५६ भाग $\frac{1}{4}$ कषाय कर खाण्ड-१०० भाग डाल पानक:

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बनायें। गुडूची, शतावरी, विदारी, अष्टवर्ग, त्रिवृत्त, मुण्डी, त्रिफला, एला, चोपचीनी प्रत्येक–॥ भाग, मधु–८ भाग डाल लेह बनायें।

मात्रा—६ मासा, । रोग— फिरंगव्रण, रक्त-विकार, मूत्रकृच्छ्र।

सारिवाद्यारिष्ट—अनन्तमूल, द्राक्षा प्रत्येक-१००, जल--१६०० भाग चौथाई कषाय करें। खाण्ड २४० भाग, आमलकी, हरीतकी, मधुयष्टी प्रत्येक-५, पिप्पली-१॥, लवंग, त्वक्, मरिच प्रत्येक-१ भाग मिला अरिष्ट बनावें।

मात्रा-.२-८ ड्राम। रोग-रक्तरोग, फिरंगरोग।

अनन्त घृत—अनन्तमूलक्काथ-६४, घृत-१६, अनन्त मूल, आमलकी, द्राक्षा, दोनों काकोली, शतावरी, दोनों एला, विदारी, महुआ, मधुयष्टी, मुरा, त्रिफला, सुवर्णपत्री, गोक्षुरु, दशमूल, (मिलित), मुशली, इन्द्रवारुणी, त्रिवृत्त, नीलनी, क्रौंचबीज प्रत्येक समभाग मिलित-४ भाग घृत बनायें। मात्रा—॥ तोला।

रोग-फिरंग, उपदंश, रक्तरोग, क्लीवरोग।

गुण – रस-मधुर तिक्त, गुण—स्निग्धगुरु, वीर्य-शीत, पाक-मधुर, दोष-त्रिदोषहर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह उत्तम बल्य द्रव्य है। निर्बलता से उत्पन्न मन्दाग्नि को हटा भूख बढ़ाती, मूत्र अधिक मात्रा में लाती और रुधिर जन्य बिकारों को हटाती है। फिरंग जन्य व्रणों, स्फोटों आदि के लिए इसके योग विशेषतः प्रयुक्त होते हैं। पूयमेह में इसके पानक के देने से मूत्र खुलकर आता और जलन शान्ति होती है। शरीर की सामान्य निर्बलता जिसमें भूख कम लगती, पुंस्त्व सम्बन्धी शक्ति निर्बल होजाती, तब इसके लेह तथा घृत देने चाहिए। सारिवामूल ८०, मंजिष्ठा, कुटकी किराततिक्ता, गुडूची, प्रत्येक २० भाग का अष्ट गुण जलमें कषायकर उसमें त्रिफला ऐन्द्रीमूल खदिरसार-चोवचीनी,बाकुची,निम्ब त्वक्,दारु हरिद्रा २-२ भाग मिला गुड़ और मधु सारिवा से दुगुणी मात्रा में मिला आसव बना सकते हैं यह सर्व त्वग्रोग हर है।

सप्तपर्ण नाम-हिन्दी--छतिवन। इंग्लिश-Dita bark. लैटिन Alstonia scholaris.

प्राप्ति तथा वर्णन--हिमालय पर यमुना से पूर्व की ओर आसाम तक एक बड़ा, सदाहरा वृक्ष, ६० फुट ऊंचा, त्वक् मोटी, कड़वी, काटने से उसमें से दूध निकलता है, पत्ते ४-७ तक, डंडी के चारों ओर घेरे में होते हैं, पत्ते ४-८ इंच लम्बा, १-१½ इंच चौड़ा, मृदु, ऊपर चमकीला, नीचे फीका, शाल्मली के पत्ते की तरह होते हैं, मुख्य नाडी से निकलने वाली नाडियाँ अनेक सीधी लेटी हुई, पत्र की सीमा स्थित नाडी में समाप्त होती हैं। फूल हरेसे श्वेत, पुष्पनाल के सिरे पर छत्राकार गुच्छों में लगते हैं। त्वक् उपयुक्त होती है।

विश्लेषण इसमें Dilamine नामक क्षारीयतत्व होता है।

योग—सप्तपर्ण त्वक् चूर्ण-५ से ३० यव।

सप्तपर्ण फाण्ट तथा कषाय-२ से ४ औंस।

सप्तपर्ण रसक्रिया-२ से ८ यव।

सप्तपर्णासव-(५ गुणा मद्यसार ५०% में)आधे से १ ड्राम।

सप्तच्छदादि क्वाथ-सप्तपर्ण, गुडूची, निम्बत्वक् तिन्दुक त्वक् समान भाग इनसे १६ गुणा जल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में चौथाई कषाय करें। मात्रा-१-४ औंस। रोग-विषमज्वर, कफज्वर। भै० र०।

सप्तच्छदादि कषाय-सप्तपर्ण, उशीर, पटोल, मुस्ता, हरीतकी, कटुकी, मधुयष्ठी, आरग्वध चन्दन समान भाग इनसे १६ गुणा जल में चौथाई कषाय करें। मात्रा १-४ औंस। रोग-मुखपाक, मुख स्फोट। भै० र०।

सप्तच्छदादितैल-सप्तपर्ण, वासा, निम्ब सम भाग का कषाय-४, तैल-१, गोमूत्र-४, दोनों हरिद्रा, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रयव, मञ्जिष्ठा, खदिर, दोनोंक्षार, सैन्धव समभाग मिश्रित चौथाई भाग मिला तेल बनावें। रोग-त्वग् रोग, मुख के त्वग्रोग, नखरोग।

गुण—रस-तिक्त कषाय, गुण-स्निग्ध, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-त्रिदोष हर।

प्रभाव तथा उपयोग—यह निम्ब के समान विषम ज्वर हर, रक्तशोधक, स्तन्य शोधक, आंत्र कृमिहर तथा त्वच्य है। विषम ज्वर में इसकी रसक्रिया या उपरोक्त कषाय दिन में दो तीन बार देना चाहिए। विशेषतः कफ, पित्त, ज्वरों के लिए ये कषाय लाभदायक हैं। ज्वरों के पीछे की निर्बलता के लिए भी ये कषाय दिए जाते हैं। रक्तशोधक होने के कारण मुख के अन्दर के पाक, स्फोट, अम्ल-पित्त तथा त्वचा के ऊपर होने वाले स्फोट व्रण, दद्रु, कण्डू आदि के लिए इसके कषाय पिलाना चाहिए और इसका उपरोक्त तेल लगाना चाहिए। इसके पत्तों की पोल्टीस बांधने से व्रण स्वच्छ हो जाते हैं।

निर्गुण्डी नाम-हिन्दी—सम्भालु। लैटिन Vitex negundo.

प्राप्ति तथा वर्णन—सर्वत्र होने वाला एक छोटा सा वृक्ष होता है, शाखाएँ, पतली, शाखा में तीन तीन पत्ते जिनमें अगला बड़ा, पिछले छोटे, पत्तियां भालाकार, आगे से नोकीली, निम्न पृष्ट पर सफेद हरी, २-४ इञ्च लम्बी, अगली पत्ती १ इञ्च पत्रनाल युक्त, पिछली पत्तियां छोटी नाल वाली होती है। निर्गुण्डी के पत्ते पतले तथा इसके दूसरे भेद सिंधुवार के पत्ते चौड़े होते हैं, फूल शाखा के प्रान्त भाग पर लगे छोटी छोटी डालियों पर अनेक सिंधुवार का सफेद, नीला तथा निर्गुण्डी का गाढ़ा, नीला होता है। पत्र, मूल उपयुक्त होते हैं।

विश्लेषण—पत्तों में एक स्थिर तैल होता है जो इसकी गंध का कारण है। एक Resin भी होता है जो क्षारीय जल में घुल जाता है।

योग—निर्गुण्डी तैल-निर्गुण्डीस्वरस ४, तैल १, कल्क $\frac{1}{4}$ भाग मिला तेल बनावें।

रोग—व्रण, नाडी व्रण त्वग् रोग, पामा।

निर्गुण्डी तैल—उपरोक्त तेल में निर्गुण्डी कल्क की जगह कलिहारी मूल कल्क-$\frac{1}{4}$ भाग मिला कर बनावें। रोग-गण्डमाला व्रणों में लेप तथा नस्य।

निर्गुण्डीकषाय-२ से ४ औंस।

गुण—रस-तिक्त कषाय गुण-लघुरुक्ष वीर्य-उष्ण पाक-कटु दोष-वात कफ हर।

प्रभाव तथा उपयोग—बहिः प्रयोगों में यह उत्तम शोथहर, पराश्रयी कृमिहर और त्वच्य है। अन्तः प्रयोग में आमवात हर है। सन्धि शोथ हर है। सन्धिशोथ, आमवात, आघात

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जन्य शोथ में इसके फाण्ट या कषाय में भीगे कपड़े से स्वेद देने या गरम पत्तों के बांधने से शोथ बैठ जाती है। ग्रंथि शोथ, अण्ड शोथ में इसका स्वेद या पत्तों के कल्क का बांधना लाभदायक है। गण्डमाला ग्रंथियों की शोथपर इसके तैलको लगाया जाता, नस्य दिया जाता और शिरपर मला जाता है। कुछ मास इस प्रकार चिकित्सा करने से लाभ होता है। अशुद्ध कृमि युक्त व्रणों या नाड़ी व्रणों पर इसके तैल में भीगा कपड़ा रखने से व्रण स्वच्छ हो जाता है। कर्णव्रणों के लिये भी इसका तैल डालते हैं। कान या नासिका में कृमि चले गये हों या उत्पन्न हो गये हों तो तैल या स्वरस डालने से मर जाते हैं। कण्डू दद्रु आदि पराश्रयी कृमि जन्य रोगों के लिये तैल लाभदायक है। जिस वस्तु में इसके पत्ते रख दिये जावें उसे कीड़ा नहीं लगता। आमवात रोग में शुण्ठी निर्गुण्डी ४ गुणा जल में चतुर्थांश किया कषाय पिलाने अथवा निर्गुंडी स्वरस से अनेक बार भावना दिये अजमोदा-चूर्ण के खिलाने से आराम हो जाता है। कफज्वरों में निर्गुंडी इससे कई बार भावना दिया त्रिकटु चूर्ण अधिक लाभदायक होता है।

कलिहारी नाम हिन्दी—कलिहारी। लैटिन नाम Glorisa Superba.

प्राप्ति तथा वर्णन— वर्षा ऋतु में सर्वत्र होने वाला, सुंदर फूलों वाला, एक कोमल लताकार क्षुप है। मूल हलके आकार की होती है तना इस मूल के संधि स्थान से निकल कर ऊपर आता है; पत्ते ६-८ इञ्चलम्बे, मूल पर तनेसे आसक्त होते हैं, फूलका व्यास ३,४इंच होता है, पहिले हरे, फिर लाल पीले और अंत में लाल किरमिजी हो जाते हैं। जिस क्षुप की मूल हलाकार होती वह नर क्षुप और सीधी रहती हो वह मादा क्षुपहोता है। मूल उपयुक्त होता है। इसे लवण मिश्रित तक्र में रात को डाल दिन में सुखा लिया जाता है। ऐसा ४-५ दिन किया जाता है।

विश्लेषण--इसमें एक तिक्त तत्व होता है जिसे Superbin कहते हैं और दो Resins होते हैं।

गुण-रस-तिक्त कषाय, गुण-तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक--कटु, दोष--कफवातहर।

प्रभाव तथा उपयोग--यह पराश्रयी जीवाणुहर, शल्यहर, त्वच्य है। गर्भ को सुगमता से निकालने के लिए पेडू पर इसके कल्क का लेप करते हैं। या कमर में इसे बांध देते हैं गर्भ आने के बाद अपरापातन के लिये हाथ पैर की नलियों पर इसके कल्क का लेप करते हैं। व्रणों के कृमि नष्ट करने के लिए व्रणों पर इसका चूर्ण छिड़कते हैं। पशुओं के व्रणों पर तो प्रायः इसका प्रयोग होता है। कण्डू, कच्छू आदि पराश्रयी जीवाणु जन्य त्वग्रोगों पर 'कच्छूराक्षस' आदि तैलों में इसका प्रयोग होता है। इसे १५ से ६० ग्रेन की मात्रा में सर्प विष का प्रतिविष भी कहा जाता है।

करवीर नाम-हिन्दी--कनेर। इंगलिशOleander लैटिन Nerium odorum.

प्राप्ति तथा वर्णन--सर्वत्र बागों में बोया जाता है। एक बड़ा, सदा हरा पौदा है, तना ६-८

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

फुट, कठोर है, पत्ते तंग, भालाकर, ४ से ६ इंच लम्बे, नोकीले, पूर्णधार, मध्यनाड़ी दृढ़, पार्श्वीय नाडियाँ अनेक पतली, दिगन्तसम, समानान्तर, पत्रनाल छोटा, फूल सुन्दर, सुगन्धित, विचित्र रंगों के, १॥ इंच व्यास के तथा फलियां ६-१२ इंच लम्बी होती हैं। श्वेत करवीर मूल उपयुक्त होता है।

विश्लेषण—इसको मूल में दो तिक्त तत्व होते हैं। दोनों ही तीव्र विष हैं। क्लोरोफार्म में विलेय जल में अविलेय तथा Neriodorin दूसरा जल में विलेय, तथा Neriodorein कहाता है। एक Glucoside होता है जिसे Rosaginin कहते हैं। एक अस्थिर तैल होता है। पत्तों में एक क्षारीयतत्व होता है जो Oleandnine कहाता है।

योग--करवीरादि तैल—श्वेत करवीर रस या कषाय ४, तैल--४, गोमूत्र--४, चित्रक, विडंगसम भाग मिलित--१ भाग। रोग-त्वग्रोग,इन्द्रलुप्त, क्लीवरोग।

करवीरादितैल—करबीरमूल, वत्सनाभ समान भाग चौथाई, तैल--१, गोमूत्र--४ भाग मिला तैल बनायें। रोग--सिध्म, पामा, विस्फोट, त्वग्रोग।

करवीरादि लेप—करवीरमूल त्वक,गुञ्जा, अकारकरभ प्रत्येक--५, हरताल, कारस्कर, प्रत्येक २॥, सोमल--$\frac{1}{2}$ अर्क दुग्ध-१० भाग को ४ गुणा दूध और ४ गुणा जल में डाल, पका, दूध मात्र शेष रख, जमा, घृत निकाल लें। रोग--क्लीवरोग में लेप करें।

गुण—रस-तिक्त, गुण-तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, पाक-कटु, दोष-कफहर।

प्रभाव तथा उपयोग यह लेप करने से सब प्रकार की शोथ को हटाता है। शोथयुक्त त्वग्रोगों को भी शांत करता है। एवं यह शोथहर और त्वच्य है। शोथयुक्त त्वग्रोगों पर इसके तेल लगाए जाते हैं। क्लीवरोग में शिश्न के अन्दर की शोथ हटाने के लिए करवीरादि लेप लगा ऊपर सेक दिया जाता है।

मञ्जिष्ठा-नाम-हिन्दी—मजीठ। लैटिन Rubia cordifolia.

प्राप्ति तथा वर्णन—भारत के सभी पर्वतीय प्रदेशों में मिलती है। एक फैलने वाली बेल है जड़ बहुवार्षिक, लम्बी, गोल, मोटे छिलके वाली, तने बड़े, लम्बे मूलपर काष्ठमय, पत्ते १ घेरे में चार, $\frac{3}{4}$ से $1\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बे अण्डाकार पत्रनाल पत्तों से दुगना लम्बा, फल $\frac{1}{8}$ इंच, चिकना, चमकीला, लाल काला होता है। मूल उपयुक्त होती है।

विश्लेषण - इसमें एक लाल तत्व होता है जिसे Purpurin कहते हैं। एक पीलासा रञ्जक द्रव्य होता है जिसे Manijistin कहते हैं।

योग—लघुमञ्जिष्ठादि क्वाथ-मञ्जिष्ठा, त्रिफला, निम्बत्वक्, वचा, कटुरोहिणी, गुडुची, दारुहरिद्रा समभाग। १६ गुणा जल में चौथाई कषाय करें। मात्रा १-४ औंस। रोग-वातरक्त, कण्डू, पामा, मण्डल, दद्रु, विस्फोट, विसर्प।

मञ्जिष्ठादि तैल—मञ्जिष्ठा, लाक्षा, मातुलुंगमूल प्रत्येक-१, मधुयष्टी-२, तैल १६, अजादुग्ध ३२ मिला तेल बनावें। रोग-मुखव्यंग, नीलिका; मुख पिड़िका, स्फोट।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पिण्डतैल—मञ्जिष्ठा, सारिवा, राल, मधुयष्ठी, मधूच्छिष्ट समभाग मिलित १, तैल ४, जल १६ भाग मिला तेल बना गर्म गर्म छान लें। रोग-वातरक्त, दग्धव्रण, पामा, स्फोट।

आदित्य पाक तैल—मञ्जिष्ठा, त्रिफला, लाक्षा हरिद्रा, मनःशिला, हरताल, गन्धक समभाग, सबके तुल्य तेल तथा जलमें डालकर जब तक जल भाग उड़ जाय धूप में रख छान लें। रोग-पामा, मण्डल, दद्रु, त्वग्रोग।

गुण—रस-मधुर कषाय, गुण-गुरु, वीर्य-शीत, पाक-कटु, दोष-पित्तहर।

प्रभाव तथा उपयोग—बहिः तथा अन्तप्रयोग में यह रञ्जक, शोथहर, और त्वच्य द्रव्य है। इसके निरन्तर देने से रक्त और मूत्र लाल हो जाते हैं। तैलों को लाल रंग के लिए मञ्जिष्ठा डाल कर उन्हें गर्म किया जाता है।

मुख तथा शरीरकी त्वचा परके शोथ, दाहयुक्त त्वग्रोगों पर इसके उपरोक्त तेल लगाये जाते हैं। त्वचा पर होने वाले शोथ युक्त वातरक्त रोगों में लघुमञ्जिष्ठादि कषाय लगातार कुछ दिन देना चाहिए। इनके लिये मञ्जिष्ठा, सारिवा का बना पानक भी लाभदायक है।

तुवरक नाम-हिन्दी-शालमुग्रा। इंगलिश Chaulmoogra लैटिन Taraktogenos kurzii तथा Hydnocarpus Inebrians.

प्राप्ति तथा वर्णन-ये सिलहट, चिटगांव आदि के जंगलों में मिलते हैं। सदा हरे ४० से ५० फुट ऊंचे वृक्ष होते हैं। इनके पत्ते ७ से १२ इंच लम्बे, भालाकार, फल सनारे के आकार के, गूदे में अनेक बीज, बीज १ से १। इंच लम्बे, कठोर।

विश्लेषण-इनके बीजों में ३० % एक स्थिर तैल होता है जो दबाकर निकाला जाता है उसे शालमुग्रा तैल कहते हैं। यह रंग में भूरा पीला और विशेषगंध वाला होता हैं जो ईथर और क्लोरोफार्म में घुल जाता है। इसमें एक अम्ल होता है जो Chaulmoogric acid या Hydnocarpic acid. कहा जाता है। यही इसका क्रियाशील तत्व है। तेल की मात्रा—५ से १० बूंद (दूधको साथ) धीरे २ बढ़ाकर ३० बूंद तक।

प्रभाव तथा उपयोग-तुवरक बीजों का तेल उत्तम कुष्ठहर तथा त्वच्य द्रव्य है। कोठ, व्रण, निस्संज्ञता आदि से युक्त कुष्ट रोग में तथा अन्य कष्ट साध्य पुराने कच्छू, कण्डू, दद्रु, पामा-मण्डल, वातरक्त आदि त्वग्रोगों में इसके तेल को समान वैसलीन में मिलाकर दिन में २ वार लगाना चाहिये इसमें निम्ब का या बाकुर्ची का तेल भी मिला सकते हैं। दोनों समय भोजन के पीछे इसकी ५ बूंद दूध में डाल पिला देनी चाहिये। दो तीन दिन के पीछे दो २ बूंद बढ़ाकर ३०-४० बूंद तक की खुराक पिलादें। कुछ दिन यह मात्रा जारी रखने से इन भयंकर रोगों में बड़ा लाभ होता है। तैल के साथ रोगी को लवण, अम्ल, गरम मसाले, खाण्ड, गुड़ आदि बन्द कर घी मक्खन, मलाई, रोटी, चावल, दूध आदि देना चाहिये। खाण्ड के बिना रहना कठिन

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हो तो थोड़ी मिश्री दे सकते है। औषधि प्रारम्भ करने से पहिले दो तीन दिन रेचन देकर कोष्ठ स्वच्छ कर देना चाहिये। तुवरक मल को भी चौथाई ग्रेन की मात्रा से आरंभ कर २ ग्रेनतक इसी प्रकार गोलीके रूपमें दिया जाता है। तैल तथा अम्ल के साथ सोमल, हरताल आदि के योगों के देने से शीघ्र लाभ होता है।

शेष दूसरे भाग में देखना।

Vaidyaraj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No.....................
Book No.
Acc. No. 000062

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

All India Ayurvedic Congress
"Dhanwantari Bhavan,"
Road 66, Punjabi Bagh; New Delhi-1100

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित,

ग्रन्थरत्न ।

सिद्धौषधि प्रकाश ।

यह अपूर्व पुस्तक आयुर्वेद चिकित्सा के प्रचार करने के लिए प्रकाशित हुई है। इसमें सिर से लेकर पैर तक के होने वाले स्त्री पुरुष और बालकों के रोगों को दूर करने के लिए सिद्ध योग प्रकाशित किए गए हैं। पुस्तक प्रत्येक घर में रहने के योग्य है। २५० पृष्ट की सुन्दर पुस्तक है, इसकी उपयोगिता का सच्चा प्रमाण यही है कि थोड़े समय में तीसरा संस्करण छपगया, और पुस्तक धड़ाधड़ बिक रही है। मू० लागत मात्र १॥) है।

वैद्यक शब्द-कोष।

यह कोष आकारादि क्रम से संस्कृत दवाइयों के नाम सरल हिन्दी भाषा में बतलाने के लिए किया गया है। अबतक ऐसा कोष आयुर्वेदीय साहित्य में प्रकाशित न था। थोड़ा हिन्दी जानने वाला इससे लाभ उठा सकता है। इसका भी दूसरा संस्करण छप कर तैयार है। मू० सिर्फ़ ।)

स्त्रीरोग चिकित्सा।

यह एक दम नई और विशेष उपयोगी विषय युक्त, ११४ पृष्ठों में समाप्त हुई है। स्त्री रोग कैसे पैदा होते हैं, और कैसे दूर होते हैं। इसमें स्त्रियों के गुप्त रोगों पर शतशोऽनुभूत नुस्खे लिखे गए हैं जो बाजी मार कर स्त्री रोग हटा सकते हैं। यह पुस्तक पास होने से दुष्ट रोगों से जल्दी छुटकारा मिलेगा। मू० सिर्फ ॥) आना।

प्लीहा।

प्लीहा नाशकरने के अनुभूत योग लिखे हैं। प्लीहा किन किन कारणों से होती है। रोग के लक्षण निदान चिकित्सा का वर्णन अच्छे ढंग से,किया गया है। पृष्ठ संख्या ४० मू० ।-) आ०।

राजयक्ष्मा।

यह पुस्तक पं० विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज सम्पादक अनुभूत योगमाला के करकमलों द्वारा लिखी गई है। जो ग्वालियर वैद्य सम्मेलन द्वारा स्वर्णपदक प्राप्त है। और बड़े बड़े विद्वानों ने प्रशंसा पत्र दिए हैं। पुस्तक इस विषयपरअद्वितीय है। एक बार परीक्षा कर लाभ उठाइए। इसमें क्षय का पूर्ण निदान तथा चिकित्सा अति उत्तम ढंग से लिखी गई है। मू० ।) आना।

दमा (श्वास)

जो लोग कहते हैं कि दमा जाता ही नहीं वह देखेंगे कि इस पुस्तक ने इस कहावत को जड़ से मिटा दिया। इसमें वही नुस्खे लिखे गए हैं, जो शतशोऽनुभूत है। इस पर लाला रूपलाल वैश्य क्लर्क लोकोसुपरिन्टैन्ट आफिस बनारस केन्ट से लिखते हैं कि दमा के कारण मैंने समझ लिया था कि अब जीवन लीला समाप्त होने पर है, परन्तु आपकी पुस्तक के योगों (पृष्ट २२ पर नं० ३ और पृष्ट २७ पर नं० ६) से मेरा ३ वर्ष का पुराना दमा दूर हो जीवन मिला,इस पुस्तक को प्रत्येक के पास रखना जरूरी है। मू० केवल ।) है।

मैनेजर—श्रीहरिहर ग्रन्थमाला ऑफ़िस,

बरालोकपुर-इटावा (यू० पी०)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection